माध्यम IAS
'way to achieve your dream'

इन्दिरा गांधी राष्ट्रीय मुक्त विश्वविद्यालय

नई दिल्ली

अंतर–विषयक एवं परा–विषयक अध्ययन विद्यापीठ **बीपीवाईसी–132**

नीतिशास्त्र

MAADHYAM IAS
'way to achieve your dream'

अंतर–विषयक एवं परा–विषयक अध्ययन विद्यापीठ

इन्दिरा गाँधी राष्ट्रीय मुक्त विश्वविद्यालय

नई दिल्ली

विशेषज्ञ समिति

प्रो. वी. टी. सेबस्टियन	डॉ. रूपलेखा खुल्लर	डॉ. सुद्न्या कुलकर्णी
विजिटिंग प्रोफेसर, जेएनयू	दर्शनशास्त्र विभाग,	दर्शनशास्त्र विभाग,
एवं आचार्य (दर्शनशास्त्र),	जानकी देवी स्मृति	जानकी देवी स्मृति
पंजाब विश्वविद्यालय चंडीगढ़	महाविद्यालय,	महाविद्यालय,
	दिल्ली विश्वविद्यालय	दिल्ली विश्वविद्यालय

डॉ. मीता नाथ	डॉ. अमित कुमार प्रधान,	डॉ. गरिमा मणि त्रिपाठी,
दर्शनशास्त्र विभाग,	दर्शनशास्त्र विभाग,	दर्शनशास्त्र विभाग,
रामजस महाविद्यालय,	रामजस महाविद्यालय,	माता सुन्दरी महिला
दिल्ली विश्वविद्यालय	दिल्ली विश्वविद्यालय	महाविद्यालय,
		दिल्ली विश्वविद्यालय

MAADHYAM IAS
'way to achieve your dream'

डॉ. बिन्स सेबस्टियन	डॉ. सुमेश एम. के.	डॉ. विजय कुमार,
दर्शनशास्त्र विभाग,	दर्शनशास्त्र विभाग,	दर्शनशास्त्र विभाग,
सेन्ट स्टीफेन्स महाविद्यालय,	कला संकाय,	श्यामा प्रसाद मुखर्जी
दिल्ली विश्वविद्यालय	दिल्ली विश्वविद्यालय	महाविद्यालय,
		दिल्ली विश्वविद्यालय

सुश्री प्रियम माथुर, परामर्शदाता (दर्शनशास्त्र), एसओआईटीएस, इग्नू

एसओआईटीएस अकादमिक सदस्य

प्रो. नन्दिनी सिन्हा कपूर, प्रो. बी रुपिणि, डॉ. शुभांगी वैद्य, डॉ. सदानन्द साहू

पाठ्यक्रम निर्माण दल

खण्ड	इकाई लेखक	इकाई अनुवादक
खण्ड 1 आधारभूत अवधारणाएं		
इकाई 1 नीतिशास्त्र का परिचय	डॉ. विलियम जोस	
इकाई 2 नैतिक कर्म	सुश्री लिजाश्री हजारिका	डॉ. अमित कुमार प्रधान
इकाई 3 सद्गुण और अवगुण	डॉ. विल्फ्रेड डी'सूजा	
इकाई 4 नैतिक नियम	डॉ. कुरियन जोसेफ	
इकाई 5 नैतिक सापेक्षतावाद	सुश्री लिजाश्री हजारिका	श्री आशुतोष व्यास
खण्ड 2 पाश्चात्य नैतिक सिद्धान्त		
इकाई 6 सद्गुण नीतिशास्त्रः अरस्तू	डॉ. रिचा शुक्ला	सुश्री रिंकी जादवानी
इकाई 7 कर्तव्यपरक नीतिशास्त्रः इमानुएल काण्ट	डॉ. रिचा शुक्ला	श्री आशुतोष व्यास
इकाई 8 परिणामवादी नीतिशास्त्रः जे. एस. मिल	सुश्री सुरभि उनियाल	डॉ. विजय कुमार
इकाई 9 नैतिक सिद्धान्तों का आलोचनात्मक मूल्यांकन	डॉ. मो. इनामुर रहमान	सुश्री रिंकी जादवानी
खण्ड 3 अधि–नीतिशास्त्र		
इकाई 10 अधि–नीतिशास्त्र का परिचय	सुश्री सुरभि उनियाल	सुश्री शिल्पी श्रीवास्तव
इकाई 11 नैतिक प्रकृतिवाद और निर्प्रकृतिवाद	सुश्री सुरभि उनियाल	सुश्री शिल्पी श्रीवास्तव
इकाई 12 विषयिनिष्ठवादः डेविड ह्यूम	सुश्री लिजाश्री हजारिका	डॉ. अमित कुमार प्रधान
इकाई 13 सम्वेगवादः चार्ल्स स्टीवेन्सन	श्री बंशीधर दीप	सुश्री शिल्पी श्रीवास्तव
इकाई 14 परामर्शवादः आर. एम. हेयर	श्री बंशीधर दीप	सुश्री शिल्पी श्रीवास्तव

MADHYAM IAS
'way to achieve your dream'

विषय–वस्तु सम्पादक

डॉ. प्रगति साहनी, सह–प्राध्यापिका, दर्शन विभाग, दिल्ली विश्वविद्यालय

डॉ. सुद्न्या कुलकर्णी, सहायक प्राध्यापिका, दर्शन विभाग, जानकी देवी स्मृति महाविद्यालय, दिल्ली

डॉ. अमित कुमार प्रधान, सहायक प्राध्यापक, दर्शन विभाग, रामजस महाविद्यालय, दिल्ली

डॉ. आयशा गौतम, सहायक प्राध्यापिका, दर्शन विभाग, दिल्ली विश्वविद्यालय

श्री इकबाल हुसैन अहमद, सहायक प्राध्यापक, तेजपुर केन्द्रीय विश्वविद्यालय, तेजपुर

डॉ. विजय कुमार, दर्शन विभाग, श्यामा प्रसाद मुखर्जी महाविद्यालय, दिल्ली

डॉ. श्रद्धा शाह, सहायक प्राध्यापिका, दर्शन विभाग, हिन्दू महाविद्यालय, दिल्ली

विषय–वस्तु सम्पादन (हिन्दी)

डॉ. अमित कुमार प्रधान, रामजस महाविद्यालय, दिल्ली विश्वविद्यालय

डॉ. विजय कुमार, दर्शन विभाग, श्यामा प्रसाद मुखर्जी महाविद्यालय, दिल्ली

सुश्री रिंकी जादवानी, व्याख्याता (दर्शनशास्त्र), मानविकी विभाग, दिल्ली तकनीकि विश्वविद्यालय, दिल्ली

श्री दिनेश पाटीदार, सहायक प्राध्यापक, दर्शन विभाग, कमला राजे कन्या पीजी महाविद्यालय, ग्वालियर

MAADHYAM IAS
"way to achieve your dream"

श्री आशुतोष व्यास, परामर्शदाता (दर्शनशास्त्र), एसओआईटीएस, इग्नू, नई दिल्ली

प्रारूप सम्पादक

प्रो. नन्दिनी सिन्हा कपूर, एसओआईटीएस, इग्नू, नई दिल्ली

श्री आशुतोष व्यास, परामर्शदाता, एसओआईटीएस, इग्नू, नई दिल्ली

पाठ्यक्रम समन्वयक

प्रो. नन्दिनी सिन्हा कपूर, एस ओ आई टी एस, इग्नू, नई दिल्ली

कवर डिजाइन : सुश्री नीतिका सिंह, विद्यावाचस्पति शोधक (दर्शनशास्त्र), भारतीय प्रौद्योगिकी संस्थान, कानपुर

सामग्री उत्पादन

विषय–वस्तु

खण्ड 1 आधारभूत अवधारणाएं

इकाई 1 नीतिशास्त्र का परिचय

इकाई 2 नैतिक कर्म

इकाई 3 सद्‌गुण और अवगुण

इकाई 4 नैतिक नियम

इकाई 5 नैतिक सापेक्षतावाद

खण्ड 2 पाश्चात्य नीतिशास्त्रीय सिद्धान्त

इकाई 6 सद्‌गुण नीतिशास्त्रः अरस्तू

इकाई 7 कर्तव्यपरक नीतिशास्त्रः इमानुएल काण्ट

इकाई 8 परिणामवादी नीतिशास्त्रः जे. एस. मिल

इकाई 9 नीतिशास्त्रीय सिद्धान्तों का आलोचनात्मक मूल्यांकन

खण्ड 3 अधि–नीतिशास्त्र

इकाई 10 अधि–नीतिशास्त्र का परिचय

इकाई 11 नीतिशास्त्रीय प्रकृतिवाद एवं निर्प्रकृतिवाद

इकाई 12 विषयिनिष्ठवादः डेविड ह्यूम

इकाई 13 संवेगवादः चार्ल्स स्टीवेन्सन

इकाई 14 परामर्शवादः आर. एम. हेयर

सहायक अध्ययन–सामग्री (हिन्दी भाषा)

MAADHYAM IAS
'way to achieve your dream'

पाठ्यक्रम परिचय

दर्शन की वह शाखा, जो अच्छे (शुभ) और बुरे (अशुभ) मानवीय (मानव से सम्बन्धित) आचरण के अन्तर को स्थापित करने के लिए आवश्यक अवधारणाओं और सिद्धान्तों का व्यवस्थित अध्ययन करती है, नीतिशास्त्र या नीति–दर्शन कहलाती है। नीतिशास्त्र का विचारणीय विषय है कि व्यक्ति या समाज के लिए (अच्छा, उचित, सही) शुभ (श्रेय, भारतीय दर्शन, और संस्कृति की एक अवधारणा) क्या है? नीतिशास्त्रीय सिद्धान्त प्रायः तीन क्षेत्रों में बांटे जाते हैं: अधि–नीतिशास्त्र (मेटाएथिक्स), मानकीय नीतिशास्त्र (नॉर्मेटिव एथिक्स) और अनुप्रयुक्त नीतिशास्त्र (एप्लायड एथिक्स)। अधिनीतिशास्त्र नैतिक सिद्धान्तों और अवधारणाओं का अर्थ और उत्पत्ति का अन्वेषण करता है। "शुभ" का क्या अर्थ है, नैतिक कथनों की प्रकृति क्या है? क्या नैतिक कथन केवल भावनात्मक (सम्वेगात्मक) निर्णय हैं या केवल परामर्श हैं? क्या नैतिक कथन सत्य या असत्य हो सकते हैं? इस प्रकार के प्रश्न अधिनीतिशास्त्र के विचारणीय प्रश्न हैं। दूसरी ओर मानकीय नीतिशास्त्र मानवीय आचरण के मूल्यांकन हेतु सिद्धान्तों और मानकों को बताती है। यह बताती है कि क्या करना चाहिए या क्या नहीं करना चाहिए। यह उन मानकीय सिद्धान्तों की व्युत्पत्ति और प्रमाणीकरण की चर्चा करती है। अनुप्रयुक्त नीतिशास्त्र मानकीय सिद्धान्तों के व्यावहारिक समस्याओं में अनुप्रयोग से सम्बन्धित है। यह किसी व्यावहारिक नैतिक समस्या को सुलझाने के लिए अधिनीतिशास्त्रीय सिद्धान्तों को सन्दर्भित कर सकती है। अनुप्रयुक्त नीतिशास्त्र विवादित यद्यपि व्यावहारिकतः महत्वपूर्ण विशिष्ट मुद्दों, जैसे भ्रूण–हत्या, गर्भपात, दया–मृत्यु, पशु–अधिकार, पर्यावरणीय चिन्ता, समलंगिकता, मृत्यु–दण्ड, आदि का परीक्षण करती है। नीतिशास्त्र के तीनों क्षेत्र अन्तर्सम्बन्धित हैं और वास्तव में एक ही तत्त्वय नीतिशास्त्र के तीन भिन्न आयाम/पहलू हैं। उदाहरणार्थ, यदि हम पशु–अधिकार के मुद्दे की परीक्षा करना चाहते हैं, तो इसमें परिणामवाद अथवा कोई अन्य प्रासंगिक मानकीय सिद्धान्त का अनुप्रयोग किया जा सकता है। लेकिन यह "अधिकार" से क्या तात्पर्य है और क्या इस तात्पर्य का अनुप्रयोग पशुओं के मुद्दों में किया जा सकता है, जैसे अधिनीतिशास्त्रीय मुद्दों की ओर ले जाता है। इस प्रकार कहा जा सकता है कि नीतिशास्त्र किसी कृत्य या आचरण का मूल्यांकन शुभ या अशुभ की तरह करने का साधन देता है। यह आवश्यक नहीं कि यह सर्वदा समस्या का हल प्रदान करे। इस पाठ्यक्रम का उद्देश्य आधारभूत नीतिशास्त्रीय वाद–विवादों और अवधारणाओं की दार्शनिक पृष्ठभूमि प्रदान करना है। इकाईयों में सिद्धान्तों की समझ के लिए यथास्थान भारतीय सन्दर्भों और उदाहरणों का उपयोग किया गया है।

इस पाठ्यक्रम में तीन खण्डों में विभक्त चौदह इकाईयां हैं। यह पाठ्यक्रम मानकीय नीतिशास्त्र और अधिनीतिशास्त्र पर विशेष बल देता है। अनुप्रयुक्त नीतिशास्त्र की बढ़ते महत्व को ध्यान में रखते हुए इससे सम्बन्धित पाठ्यक्रम अलग से विकसित किया गया है।

MADHYAM IAS
key to achieve your dream

खण्ड एक नीतिशास्त्र की "आधारभूत अवधारणों" से सम्बन्धित है। यह खण्ड नीतिशास्त्र का परिचय प्रस्तुत करता है, चर्चा करता है कि किसे नैतिक कृत्य कहेंगे, सद्गुण और अवगुण क्या हैं, नैतिक नियम और नैतिक सापेक्षतावाद की अवधारणाएं क्या हैं।

खण्ड दो, "पाश्चात्य नीतिशास्त्रीय सिद्धान्तों" के बारे में है। यह खण्ड अतिमहत्वपूर्ण पाश्चात्य मानकीय सिद्धान्तों जैसे अरस्तू का सद्गुण नीतिशास्त्र, इमानुएल काण्ट का कर्तव्यपरक नीतिशास्त्र और जे. एस. मिल का परिणामी नीतिशास्त्र की चर्चा करता है।

खण्ड तीन "अधिनीतिशास्त्र" की व्यापक चर्चा करता है। यह अधिनीतिशास्त्र के मूलभूत धारणाओं/मान्यताओ, नैतिक प्रकृतिवाद और निर्प्रकृतिवाद के मध्य वाद–विवाद, डेविड ह्यूम के व्यक्तिवाद, चार्ल्स स्टीवेन्सन के सम्वेगवाद और आर. एम. हेयर के परामर्शवाद की चर्चा करता है।

समग्ररूप से तीनों खण्ड नीतिशास्त्र का परिचय तैयार करते हैं। नीतिशास्त्र के दो मुख्य क्षेत्रों– मानकीय नीतिशास्त्र और अधिनीतिशास्त्र की अवधारणाओं और सिद्धान्तों का समावेश इस पाठ्यक्रम में किया गया है।

MAADHYAM IAS
'way to achieve your dream'

बीपीवाईसी–132

खण्ड 1

आधारभूत अवधारणाएं

MAADHYAM IAS

खण्ड परिचय

खण्ड 1 "आधारभूत अवधारणाएं" की पाँच इकाईयां नीतिशास्त्र की विविध अवधारणाओं, घटक तत्त्वों, और पूर्वमान्यताओं और इसके अध्ययन के बारे में हैं। आरम्भ में ही इन अवधारणाओं का अध्ययन विद्यार्थी को नीतिशास्त्र के कार्यक्षेत्र और महत्ता और एक–दूसरे से मानवीय विचार–विमर्श और एक जीवन का दूसरे जीवन में सम्मिलित होना और स्वयं अपने और अन्य के स्व पर मानवीय प्रतिबिम्बन की हजारों वर्षों की यात्रा में विकसित विविध नीतिशास्त्रीय सिद्धान्तों को समझने में सक्षम बनायेगा।

इकाई 1 "नीतिशास्त्र का परिचय" नीतिशास्त्र की आमजन और दार्शनिकों की समझ की चर्चा करती है। यह यह दर्शान का प्रयास भी करती है कि क्यों नीतिशास्त्र दर्शन की शाखा है। यह इकाई नीति–दर्शन या नीतिशास्त्र के विकास का ऐतिहासिक रेखाचित्र खींचती है। इस इकाई में, विद्यार्थी हमारे दैनन्दिन जीवन में नीतिशास्त्रीय अध्ययन का कार्यक्षेत्र और महत्ता को समझेगा। यह इकाई नीतिशास्त्र और नैतिकता के मध्य भेद को दर्शाने का प्रयास करती है।

इकाई 2 "नैतिक कृत्य" मानव के सम्बन्ध में नैतिक कृत्य की अवधारणा पर बात करती है। यह इकाई नैतिक कृत्य को परिभाषित करने का एक प्रयास है और किसी कृत्य को नैतिक बनाने वाली स्थितियों, पूर्वमान्यताओं और घटकों की चर्चा करती है।

इकाई 3 "सद्गुण और अवगुण" सद्गुण और अवगुण की चर्चा करती है। इस इकाई में, विद्यार्थी इस बात को सीखेगा और समझेगा कि क्यों कोई एक कृत्य सद्गुण और दूसरा अवगुण। इस इकाई का केन्द्रीय विषय विभिन्न धार्मिक और दार्शनिक परम्पराओं में सद्गुण और अवगुण को समझना है।

इकाई 4 "नैतिक नियम" नैतिकता को नियम की तरह देखने के बारे में है। नैतिक नियम से आशय है वस्तुनिष्ठ और सार्वभौमिक नैतिक सिद्धान्त या उचित और अनुचित की समझ से। इस इकाई में, विद्यार्थी उन निहितार्थों और परिणामों को देखेगा जो नैतिक सिद्धान्त को प्राकृतिक नैतिक नियम के रूप में लेने से सम्बन्धित हैं।

इकाई 5 "नैतिक सापेक्षतावाद" नैतिकता की चर्चा सापेक्षिक अवधारणा बतौर करती है। प्रत्येक समाज या संस्कृति की नैतिकता और नैतिक सिद्धान्तों की अपनी समझ होती है। नैतिक सापेक्षतावाद का आधारभूत प्रतिज्ञा है कि, किसी समाज या संस्कृति में स्वीकृत किसी कृत्य के मूल्यांकन का कोई वस्तुनिष्ठ मापदण्ड की सम्भावना नहीं है। न केवल नैतिक सिद्धान्त, अपितु नैतिक मापदण्ड संस्कृति–सापेक्ष होते हैं। नैतिक सापेक्षतावाद को विषयिनिष्ठवाद या आत्मनिष्ठवाद तक विस्तारित किया जा सकता है।

MADHYAM IAS

इकाई 1 नीतिशास्त्र का परिचय*

रूपरेखा

1.0 उद्देश्य

1.1 परिचय

1.2 नीतिशास्त्र का क्षेत्र

1.3 नीतिशास्त्र का इतिहास

1.4 नीतिशास्त्र की प्रविधियाँ

1.5 नीतिशास्त्र के अध्ययन के विभिन्न दृष्टिकोण

1.6 नीतिशास्त्र का विभाजन

1.7 नीतिशास्त्र और अन्य विज्ञान

1.8 नीतिशास्त्र और धर्म

1.9 नीतिशास्त्र का महत्व

1.10 हमें नैतिक क्यों होना चाहिए?

1.11 सारांश

1.12 कुंजी शब्द

1.13 अन्य सहायक अध्ययन–सामग्री एवं सन्दर्भ

1.14 बोध–प्रश्नों के उत्तर

MAADHYAM IAS
'way to achieve your dream'

1.0 उद्देश्य

आपको नीतिशास्त्र या नैतिक दर्शन से परिचित कराना इस इकाई का उद्देश्य है। नीतिशास्त्र एक वृहद् विषय है। इसके विभिन्न पक्षों के विश्लेषण से जान सकते हैः

- नीतिशास्त्र की प्रकृति और विभिन्न पक्ष,

---

* डॉ. विलियम जोस, सेन्ट जॉन्स महाविद्यालय, कोन्डाडाब, अनुवादक–

- पाश्चात्य दर्शन में नीतिशास्त्र कैसे एक व्यवस्थित दार्शनिक विषय के रूप में विकसित हुआ,
- नीतिशास्त्र की पद्धतियां/प्रविधियाँ, विभिन्न दृष्टिकोण, और विभाजन,
- कैसे नीतिशास्त्र अन्य विज्ञानों से संबद्ध है,
- धर्म और नीतिशास्त्र का सम्बन्ध,
- आज के सन्दर्भ में नीतिशास्त्र के अध्ययन का महत्व और नैतिक होने की आवश्यकता।

1.1 परिचय

व्युत्पत्ति की दृष्टि से नीतिशास्त्र के लिये प्रयुक्त अंग्रेजी शब्द ऐथिक्स (ethics) ग्रीक भाषा के इथोस (ethos) से सम्बन्धित है जिसका अर्थ है; चरित्र, स्वभाव, रीति, व्यवहार के प्रकार इत्यादि। नीतिशास्त्र को 'नैतिक दर्शन' (Moral Philosophy) भी कहते हैं और मॉरल नैतिक (moral) से उद्‌भुत है जो प्रथाओं, चरित्र, आचार इत्यादि को द्योतित करता है। इस प्रकार नीतिशास्त्र को मानव क्रियाओं का अभीष्ट सुख प्राप्त करने के साधन के रूप में उनके सही या गलत होने के विचार से व्यवस्थित अध्ययन के रूप में परिभाषित कर सकते हैं। यह मानव के उस व्यवहार का आत्ममंथन है, जिसके लिए वह स्वयं उत्तरदायी है। सरल शब्दों में, नीतिशास्त्र का सम्बन्ध क्या अच्छा है और उसे कैसे प्राप्त करें; तथा क्या बुरा है और उससे कैसे बचें, के प्रश्न से है। यह बताता है कि अच्छे को प्राप्त करने हेतु क्या करना समीचीन है और बुरे से बचने हेतु क्या नहीं करना चाहिए।

MAADHYAM IAS
'way to achieve your dream'

एक दार्शनिक विषय के रूप में, नीतिशास्त्र उन मूल्यों और दिशा–निर्देशों का अध्ययन है, जिनके साथ हम जीवन जीते हैं। इसमें इन मूल्यों और दिशा–निर्देशों का औचित्य भी सम्मिलित है। यह केवल परम्पराओं तथा प्रथाओं का अनुसरण मात्र नहीं है वरन् इसमें सार्वभौम सिद्धांतों के प्रकाश में इन दिशा–निर्देशों के विश्लेषण व मूल्यांकन की आवश्यकता भी होती है। नैतिक दर्शन के रूप में, नीतिशास्त्र नैतिकता, नैतिक समस्याओं, और नैतिक निर्णयों के बारे में दार्शनिक विचारणा है।

नीतिशास्त्र उस सीमा तक विज्ञान है, जिसमें यह बुद्धि से प्राप्त सत्य का तार्किक क्रम से संगठित विषय है और इसमें इसके विशिष्ट विषय और औपचारिक विषय भी आते हैं। यह एक बुद्धिपरक विज्ञान है क्योंकि इसमें सिद्धान्तों को मानव बुद्धि से, उसकी स्वतन्त्र इच्छा से सम्बद्ध अवधारणाओं से निगमित किया जाता है। इसके अतिरिक्त, इसमें इसका परोक्ष लक्ष्य जीवन जीने की वह कला है, जिसके द्वारा मानव उचित तर्कबुद्धि से उन्नयन ढंग से अथवा

आराम से जी सकता है। यह एक निर्देशात्मक/नियामक विज्ञान है क्योंकि यह मानव जीवन को नियंत्रित और निर्देशित करता है तथा किसी के जीवन–अस्तित्व को सही दिशा देता है।

नीतिशास्त्र सैद्धान्तिक और व्यावहारिक भी है। यह सैद्धान्तिक है क्योंकि यह आधारभूत सिद्धान्त प्रस्तुत करता है, जिसके द्वारा नैतिक निर्णय लिए जाते हैं। यह व्यावहारिक है क्योंकि यह लक्ष्य और उसको प्राप्त करने के साधनों से सम्बन्धित है। नीतिशास्त्र को कभी–कभी नैतिकता से पृथक किया जाता है। ऐसे में नीतिशास्त्र स्पष्टरूप से, मानव धारणाओं तथा परिपाटियों पर दार्शनिक–प्रतिबिम्बन है, जबकि नैतिकता का सम्बन्ध अच्छे या बुरे की प्रथम क्रम की ऐसी धारणाओं तथा परिपाटियों से हैं, जिसके द्वारा मानव अपना आचार निर्देशित करता है। यद्यपि अधिकतर इन्हें एक ही अर्थ में समझा जाता है।

नीतिशास्त्र केवल 'नियमों' का समूह ही नहीं है। यह निश्चित रूप से नैतिक नियमों से सम्बन्धित है, फिर भी हम नीतिशास्त्र को नैतिक नियम नहीं कह सकते हैं। नीतिशास्त्र प्रथमतया किसी के व्यवहार को प्रतिबंधित करने हेतु नहीं है, बल्कि यह अच्छा या बुरा परखने में और उसे प्राप्त करने में लोगों की सहायता करता है। नैतिक मान्यताओं के कर्तव्यपरक चरित्र नैतिक अन्वेषण/जिज्ञासा के शुद्ध उद्देश्य से निकलते हैं जैसे; व्याख्या के परम सिद्धान्तों की खोज या कोई व्यक्ति को कोई कार्य क्यों करना चाहिए, का परम–कारण खोजना।

1.2 नीतिशास्त्र का क्षेत्र

नीतिशास्त्र मनुष्य के ऐच्छिक कर्मों से सम्बन्धित है। हम मानवीय कर्म एवं मानव कर्म के बीच अंतर कर सकते हैं। मानवीय कर्म वे हैं जिन्हें व्यक्ति सचेतन रूप से, सप्रयास, किसी उद्देश्य की प्राप्ति के लिए करता है। मानव कर्म संकल्पतः, ऐच्छिक, सचेतन, सप्रयास एवं सोद्देश्य नहीं भी हो सकते हैं। दोनों में केवल एक समानता है कि दोनों प्रकार के कर्म (सोना, टहलना आदि) मनुष्य द्वारा संपन्न किए जाते हैं। निहितार्थ के आधार पर ही इन दोनों कर्मों में अन्तर किया जा सकता है। नीतिशास्त्र में हम केवल मानवीय कर्मों को ही सम्मिलित करते हैं।

1.3 नीतिशास्त्र का इतिहास

प्रथम नैतिक आदेश निश्चय ही माता–पिता और बड़े–बूढ़ों के मुख द्वारा जारी किए गए, परंतु जैसे ही समाज ने लिखित भाषा का प्रयोग सीखा, उसने अपनी नैतिक धारणाएँ लिखना आरम्भ कर दिया। ये अभिलेख नीतिशास्त्र की उत्पत्ति के प्रथम ऐतिहासिक साक्ष्य बनाते हैं।

जिस सीमा तक यह मानव व्यवहार का अध्ययन है, हम वास्तविक रूप से नीतिशास्त्र का इतिहास नहीं जान सकते। फिर भी मानव व्यवहार के व्यवस्थित अध्ययन के रूप में हम यह कह सकते हैं कि किस प्रकार नीतिशास्त्र एक विषय के रूप में विकसित हुआ। ऐसा नहीं है

कि पहले हमारे पास नैतिक संप्रत्ययों का एक स्पष्ट इतिहास है और फिर पृथक रूप से दूसरे स्तर पर दार्शनिक समीक्षाओं का इतिहास है। नैतिक दर्शन का इतिहास लिखने के लिए बीते हुए समय से नैतिक दर्शन, जैसा आज हम कहते हैं, के अन्तर्गत आने वाले भाग के सावधानी पूर्वक चयन की आवश्यकता है। हमें मृत संग्रहालयवाद, जो इस भ्रम में होता है कि हम बिना किसी पूर्वधारणा (प्रत्यक्ष) के भूतकाल तक पहुँच सकते हैं, और इस विश्वास कि भूतकाल का समग्र बिन्दु यह है कि यह हमारे अन्दर पल्लवित–पुष्पित होना चाहिए। किन्तु, हम नैतिक विचार के क्रमिक विकास को आरम्भ से हमारे समय तक देख सकते हैं।

ऋग्वेद में (ऐसा माना जाता है कि ऋग्वेद मानव बुद्धि का प्रथम लिखित उदाहरण/ग्रन्थ है; वैदिक परम्परा मौखिक परम्परा थी, जो एक पीढ़ी से दूसरी पीढ़ी तक स्थानान्तरित होती रही।) हमें ऋत् का संप्रत्यय मिलता है, ऋत् का तात्पर्य सृष्टि–विषयक के साथ–साथ नैतिक नियम से भी है। ऋत् को हम नैतिक दर्शन की ओर अनुगमन का प्रथम उदाहरण मान सकते हैं। भारतीय दर्शन में नैतिक वर्गीकरण के अलावा, नैतिक सिद्धान्तों पर ज्यादा परिचर्चा की गयी है। जैसाकि हम देख सकते हैं कि पुरुषार्थ को मानव के जीवन का उद्देश्य कहा जाता है। नैतिक जीवन के बिना मनुष्य अपने जीवन के अर्थ तथा सर्वोच्च उद्देश्य को जान तथा प्राप्त नहीं कर सकते हैं। उदाहरणस्वरूप, साधनचतुष्टय (शम, दम आदि) मोक्ष की प्राप्ति के लिए अनिवार्य है। बौद्ध दर्शन, जैन दर्शन तथा जड़वादी दार्शनिक परम्परा चार्वाक में भी नैतिक दर्शन के आधार को विकसित किया गया है। सत्य, अहिंसा, अस्तेय, अपरिग्रह, ब्रह्मचर्य आधारभूत नैतिक स्तम्भों को लगभग समस्त भारतीय दर्शन परम्परा में स्वीकार किया गया है, लेकिन उन्हें स्थापित करने के लिए प्रत्येक परम्परा की तत्त्वमीमांसा पृथक–पृथक है। बौद्ध दर्शन अनत्ता (अनात्मवाद) के द्वारा इसकी स्थापना तथा व्याख्या करते हैं, जैन दर्शन इसे अनेकान्तवाद से स्थापित करते हैं।

पाश्चात्य दर्शन में नीतिशास्त्र के इतिहास को पाँचवी शताब्दी में सुकरात के आविर्भाव से माना जा सकता है। एक यवन दार्शनिक के रूप में अपने मानव भाइयों को उनकी धारणाओं और परिपाटियों की बुद्धिमत्तापूर्ण आलोचना करने हेतु प्रेरित करना उनका लक्ष्य था। यह वह समय था जब दार्शनिकों ने स्थापित नैतिक आचारों में कारण ढूंढना आरम्भ कर दिया था। नैतिक निर्णयों के तार्किक आधार की माँग करते हुए सुकरात ने मूल्यों और तथ्यों में तार्किक सम्बन्ध खोजने की समस्या की ओर ध्यान खींचा और इस तरह नैतिक दर्शन की रचना की। हम प्लेटो के रूप/आकार सिद्धान्त को नैतिक यथार्थवाद की प्रतिरक्षा और नैतिक सत्यों हेतु वस्तुनिष्ठ आधार प्रदान करने के प्रथम प्रयास के रूप में देख सकते हैं। *रिपब्लिक* से लेकर बाद के संवादों और उपदेशों तक प्लेटो ने प्रकृति, ईश्वर और मानव के बारे में व्यवस्थित विचार बनाए जिससे लोगों ने अपने सिद्धान्त निगमित किये हैं। अपने नैतिक दर्शन में उनका मुख्य लक्ष्य शुभ के दर्शन की ओर मार्ग प्रशस्त करना था। अरस्तू अपने अन्वेषण की प्रविधि

और मानव जीवन में नैतिक सिद्धान्तों की भूमिका के अपने विचार में प्लेटो से अलग थे। जहाँ प्लेटो धार्मिक और आदर्शात्मक नीतिशास्त्र के अग्रज थे वहीं अरस्तू ने प्राकृतिक परम्परा को जन्म दिया। अरस्तू अपने नैतिक लेखों *यूडेमोनिया एथिक्स, द निकोमेकेन एथिक्स* और *द पोलिटिक्स* में पहली बार नीतिशास्त्र के आधारों की व्यवस्थित छानबीन करते हैं। अरस्तू के सद्‌गुणों के उद्धरण को प्रथम अनवरत नियामक नीतिशास्त्र के अन्वेषण के रूप में देखा जा सकता है। यह ग्रीक–रोमन चिंतन और यहूदी तथा मध्य–पूर्व धर्मों का स्पष्ट मिश्रण था।

मध्यकाल क्रिश्चियन काल दार्शनिकों और ऑगस्टाइन और थॉमस एक्वीनास जैसे धर्मशास्त्रियों के विचारों से प्रभावित था। ईसाईयत ने नैतिक परिदृश्य को प्रभावित किया हुआ था। अतः, इस काल में दर्शन और धर्म में अंतर करना कठिन था। ईसाई दर्शन के उत्थान ने नीतिशास्त्र के इतिहास में नए युग का सूत्रपात किया। पूर्व मध्यकाल के सर्वाधिक प्रभावी संत ऑगस्टाइन के दर्शन में नीतिशास्त्र इहलोक के सुखी जीवन और निर्वाण का हेतु बन गया। थॉमस एक्वीनास मध्यकालीन दर्शन के दूसरे बड़े व्यक्ति थे। इन्होंने अरस्तू के विज्ञान और दर्शन तथा ऑगस्टाइन के धर्मशास्त्र को एक वास्तविक धरातल पर खड़ा कर दिया। एक्वीनास अरस्तू के प्रकृतिवाद की संगति ईसाई मत से बनाने और प्रकृति, मानव तथा ईश्वर का एकीकृत विचार प्रस्तुत करने में पर्याप्त रूप से सफल रहे।

मध्यकाल के अंत सूचक सामाजिक एवं राजनीतिक परिवर्तनों और औद्योगिक लोकतंत्र के उत्थान ने नैतिक क्षेत्र में नये चिन्तन की लहर उत्पन्न की। उद्योग और वाणिज्य के विकास, विश्व के नए क्षेत्रों की खोज, विज्ञान में कॉपरनिकस एवं गैलीलियो की क्रांति तथा सशक्त धर्म–निरपेक्ष सरकारों ने वैयक्तिक आचारों एवं सामाजिक संगठनों के नए सिद्धान्तों की माँग की। नैतिक चिन्तन के परिवर्तन में बड़ा योगदान देने वाले दार्शनिकों में फ्रंसिस बेकन, रेने देकार्त, थामस हॉब्स, गॉटफ्राइड विल्हेम लाइबनित्स, बेनेडिक्ट द स्पिनोजा, जॉन लॉक, डेविड ह्यूम, इमैन्युअल काण्ट, जॉन स्टुअर्ट मिल और फ्रेडरिक नीत्शे आदि प्रमुख थे। पाश्चात्य नीतिशास्त्रीय चिंतन में काल मार्क्स एवं सिगमंड फ्रॉयड के आगमन के साथ एक नया अध्याय जुड़ा। इन सबके विस्तृत योगदान का यहाँ विवरण देना हमारा लक्ष्य नहीं है। यद्यपि, अंग्रेजी एवं फ्रांसीसी दर्शन (लॉक, ह्यूम, बेंथम, स्टुअर्ट मिल) से प्रभावित उपयोगितावाद और जर्मनी एवं इटली (काण्ट, हेगल, नीत्शे) का आदर्शात्मक नीतिशास्त्र इस समय का सर्वाधिक प्रबल चिंतन था।

समकालीन नैतिक परिदृश्य अध्ययन का एक और जटिल क्षेत्र है। समकालिन यूरोपीय नीतिशास्त्र बृहद अर्थों में संवृतितशास्त्र से लेकर सम्प्रेषणात्मक क्रिया (communicative action) के सिद्धान्तों को समाहित करने का प्रयास करता है। समकालीन सभ्यता की दशा ने दार्शनिकों को नीतिशास्त्र तथा नैतिक जीवन के लिए एक यथार्थ भूमि खोजने पर विवश

किया। अंग्रेजी भाषी क्षेत्र में जी. ई. मूर की *प्रिंसीपिया एथिका* (1903) को समकालीन नैतिक सिद्धान्तों का आरम्भिक बिंदु माना जाता है। विश्व के अन्य स्थानों पर मार्टिन बुबर, गैब्रिएल मार्सेल, इमैन्यूअल लेविनास, मैक्स शिलर, फ्रेंज ब्रेन्टानो और जॉन ड्युई ने नैतिक चिंतन में महत्वपूर्ण योगदान दिया।

बोध–प्रश्न I

ध्यातव्यः क) उत्तर हेतु दिये गये रिक्त स्थान का उपयोग कीजिए।

ख) अपने उत्तर का मिलान इकाई के अन्त में दिये गये उत्तर से कीजिए।

1. पाश्चात्य दर्शन में नीतिशास्त्र के विकास पर संक्षिप्त टिप्पणी कीजिए।

.....

.....

.....

.....

1.4 नीतिशास्त्र की प्रविधियाँ

दार्शनिक विषय के रूप में नीतिशास्त्र, दर्शन की प्रविधियाँ अपनाता है। इस प्रकार नीतिशास्त्र में आगमनात्मक एवं निगमनात्मक दोनों पद्धतियाँ प्रयुक्त होती हैं। निगमन तार्किक बुद्धि द्वारा बिना किसी अनुभव के ज्ञान प्राप्त करने की प्रक्रिया है। निगमनात्मक तर्क–वितर्क सार्वभौमिक या सामान्य सत्य से आरंभ होता है और सामान्य की बजाय, किसी विशिष्ट बिंदु की ओर जाता है। निगमनात्मक तर्क का शास्त्रीय रूप न्यायवाक्य है, जिसमें दो स्वीकृत आधारवाक्यों से निष्कर्ष निगमित होता है जैसे, सभी मानव नश्वर हैं, अ एक मनुष्य है, अतः अ नश्वर है। आगमन अनुभव के द्वारा ज्ञान प्राप्त करने का साधन है। आगमन विशिष्ट से प्रारंभ होकर सामान्य या सार्वभौमिक की ओर बढ़ता है। यदि कई कौओं को देखा जाता है, जो सभी काले हैं, कोई ऐसा कौआ नहीं दिखाई पड़ता जो काला न हो तो विशिष्ट निष्कर्ष होगा कि अगला कौआ काला होगा या एक सामान्य निष्कर्ष होगा कि सभी कौए काले हैं। यह आगमनात्मक अनुमान है।

नीतिशास्त्र में आगमनात्मक पद्धति (विशिष्ट से सामान्य) को निगमनात्मक (सामान्य से विशिष्ट) की अपेक्षा अधिक महत्व दिया जाता है।

1.5 नीतिशास्त्र के अध्ययन के विभिन्न दृष्टिकोण

नीतिशास्त्र के अध्ययन के मूलतः चार दृष्टिकोण हैं। टाम एल. ब्यूचौम्प इसे अपनी पुस्तक *फिलॉसोफिकल एथिक्सः एन इन्ट्रॉडक्शन टू मॉरल फिलॉसोफी* में निम्नांकित रेखाचित्र द्वारा प्रस्तुत करते हैं:

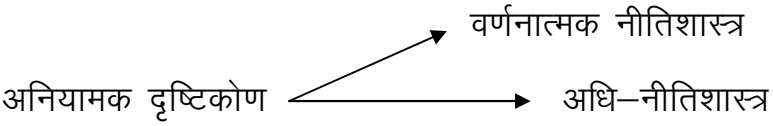

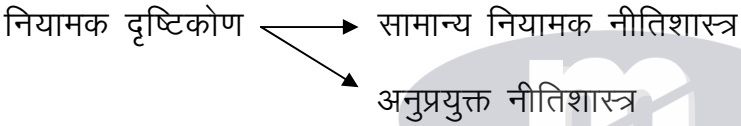

अनियामक दृष्टिकोण सही या गलत के निर्णय के बिना नैतिकता की जाँच करते हैं। ये किसी नैतिक समस्या का पक्ष नहीं लेते हैं। वहीं नियामक दृष्टिकोण सही या गलत का निर्णय लेते हैं। ये नैतिक समस्याओं के सम्बन्ध में स्पष्ट नैतिक पक्ष लेते हैं।

MAADHYAM IAS
"way to achieve your dream"

नीतिशास्त्र के दो अनियामक दृष्टिकोणों में वर्णनात्मक नीतिशास्त्र किसी समाज या संस्कृति की नैतिक परिपाटियों एवं धारणाओं की व्याख्या करने का प्रयास करता है। यह उसी तरह से है जैसा कि समाजशास्त्री, मानवशास्त्री और इतिहासकार अपने अध्ययन एवं शोध में प्रायः करते हैं। वे अपने वर्णन में परिपाटियों एवं धारणाओं की नैतिकता के बारे में कोई निर्णय नहीं करते वरन् केवल विभिन्न समूहों एवं संस्कृतियों में प्रचलित परिपाटियों का वर्णन करते हैं। अधि नीतिशास्त्र नैतिक तर्क–वितर्क और निर्णय में प्रयुक्त केन्द्रीय शब्दावलियों के अर्थ के विश्लेषण पर केन्द्रित रहता है। यह अर्थ सम्बन्धी प्रश्नों के उत्तर देने का प्रयास करता है।

1.6 नीतिशास्त्र का विभाजन

नीतिशास्त्र के पूरे अध्ययन को सामान्य नीतिशास्त्र (नैतिक क्रिया की प्रकृति, नैतिकता का मानदण्ड, नैतिकता का आधार, नैतिकता का लक्ष्य, आदि) और विशिष्ट नीतिशास्त्र (मानव क्रिया–कलाप की विभिन्न क्रियाओं हेतु सामान्य नीतिशास्त्र के सिद्धान्तों का प्रयोग) में बाँटा जा सकता है।

यद्यपि, जब हम नैतिक सिद्धान्तों की बात करते हैं, दार्शनिक प्रायः आज कल उन्हें तीन सामान्य विषय क्षेत्रों में विभाजित करते हैंः तत्वमीमांसीय नीतिशास्त्र (अधिनीतिशास्त्र), नियामक नीतिशास्त्र और अनुप्रयुक्त या व्यावहारिक नीतिशास्त्र। अधिनीतिशास्त्र नैतिक संप्रत्ययों की उत्पत्ति और अर्थ की छानबीन करता है। यह ऐसे प्रश्नों का अध्ययन करता है कि हमारे नैतिक सिद्धान्त कहाँ से आए और उनका क्या अर्थ है। यह नैतिक मूल्यों के अभीष्ट अर्थ को विश्लेषित करने का प्रयास करता है। यह एक अधिक व्यावहारिक कार्य है। यह उचित व्यवहार हेतु एक आदर्श कसौटी की खोज है। अनुप्रयुक्त नीतिशास्त्र विवादास्पद विषयों जैसे, गर्भपात, शिशुहत्या, पशु–अधिकार, पर्यावरणीय समस्या, समलैंगिकता आदि की समीक्षा करता है। अनुप्रयुक्त नीतिशास्त्र में व्यक्ति अधिनीतिशास्त्र और नियामक नीतिशास्त्र की सहायता से इन समस्याओं के हल ढूँढ़ने का प्रयास करता है।

अनुप्रयुक्त नीतिशास्त्र, अधिनीतिशास्त्र और नियामक नीतिशास्त्र में प्रायः विभाजक रेखा स्पष्ट नहीं है। जैसे गर्भपात अनुप्रयुक्त नीतिशास्त्र का विषय है क्योंकि यह एक विशिष्ट प्रकार का विवादास्पद व्यवहार है। परंतु यह नियामक नीतिशास्त्र का भी विषय है क्योंकि इसमें स्वशासन और जीने का अधिकार सम्मिलित है और इसमें 'अधिकारों का आधार क्या है?' 'किस प्रकार की सत्ताओं के पास अधिकार होते हैं?' जैसे अधिनीतिशास्त्र के भी प्रश्न सम्मिलित हैं।

बोध–प्रश्न II

ध्यातव्यः क) उत्तर हेतु दिये गये रिक्त स्थान का उपयोग कीजिए।

ख) अपने उत्तर का मिलान इकाई के अन्त में दिये गये उत्तर से कीजिए।

1. नीतिशास्त्र निगमनात्मक विधि का प्रयोग कैसे करता है?

.....
.....
.....
.....

2. नीतिशास्त्र के विभाजन पर संक्षिप्त टिप्पणी लिखिए।

.....
.....
.....
.....

1.7 नीतिशास्त्र और अन्य विज्ञान

नीतिशास्त्र की प्रकृति और परिभाषा के विश्लेषण में हमने देखा कि नीतिशास्त्र लक्ष्य, आदर्श या मानक की बात करता है। जबकि अधिकतर विज्ञान अनुभवों की एकरूपता की बात करते हैं, जैसे, किस तरह से विशेष प्रकार की वस्तुओं (चट्टानों या पौधे) के अस्तित्व को प्राप्त किया जाता है, किस तरह विशेष प्रकार की घटनाएँ (ध्वनि या बिजली) घटित होती है। इन विज्ञानों का किसी लक्ष्य विशेष, जिन्हें प्राप्त करना होता है, या फिर किसी आदर्श विशेष, जिसके सन्दर्भ में तथ्यों का निर्णय होता हो, से सीधा सम्बन्ध नहीं होता है।

नीतिशास्त्र प्राकृतिक विज्ञानों से इन अर्थों में अलग है कि इसका व्यक्ति के अभीष्ट लक्ष्य से सीधा सम्बन्ध होता है। यद्यपि नीतिशास्त्र को कभी–कभी प्रायोगिक विज्ञान कहा जाता है किन्तु यह चिकित्सा, अभियांत्रिकी आदि जैसा प्रायोगिक विज्ञान नहीं है, क्योंकि यह किसी निश्चित परिणाम की प्राप्ति हेतु अग्रसर नहीं होता।

अन्य विज्ञान		**नीतिशास्त्र**
मनोविज्ञान	मानव कैसे व्यवहार करता है (वर्णनात्मक विज्ञान)	मानव को कैसे व्यवहार करना चाहिए (नियामक विज्ञान)
मानवशास्त्र	मानव तथा उसके क्रिया कलापों की प्रकृति	मानव के कृत्य कैसे होना चाहिए
सामाजिक और राजनीतिक विज्ञान	मानव के सामाजिक और राजनीतिक जीवन के संगठन से संबद्ध	मानव का सामाजिक और राजनीतिक जीवन नैतिक होने के लिए कैसे संगठित होना चाहिए
अर्थशास्त्र	वस्तुओं से सम्बन्धित है, जैसे वैसी वस्तुएँ जो मानव की आवश्यकता पूरा करती हैं।	उन क्रियाओं से सम्बन्धित है जो मानव के द्वारा उसके अंतिम लक्ष्य की प्राप्ति हेतु शर्तें हैं।

1.8 नीतिशास्त्र और धर्म

नीतिशास्त्र का किसी धर्म विशेष से कोई सम्बन्ध नहीं है। यद्यपि कभी–कभी यह तर्क दिया जाता है कि बिना धर्म और ईश्वर के नीतिशास्त्र का कोई अर्थ नहीं है। इसलिए जहाँ धर्म और ईश्वर की बात है, वहीं नीतिशास्त्र है। यह स्पष्ट रूप से अस्वीकार्य है। यद्यपि ईश्वर या धर्म में विश्वास नैतिक होने के लिए एक कारण हो सकता है, परंतु यह आवश्यक नहीं है कि इसे धर्म या ईश्वर से जोड़ा जाए। यह तथ्य कि नीतिशास्त्र सभी समाजों में मिलता है, सिद्ध

करता हे कि यह एक ऐसी प्राकृतिक परिघटना है, जो एक दूसरे को पहचानने की क्षमता रखने वाले और दूसरों के भूतकाल के व्यवहारों को स्मृत रखने वाले दीर्घजीवी स्तनधारियों के सामाजिक और बौद्धिक विकास के क्रम में घटित होती है।

मार्क्स और नीत्शे जैसे धर्मालोचक धर्म को सामाजिक समरूपता का प्रमुख स्त्रोत और यथास्थिति बनाए रखने और लोगों को अपने सामाजिक और आर्थिक स्थिति में सीमित रखने का एक साधन मानते हैं। तथापि, धर्म का एक और रूप भी है, जो बताता है कि धर्म व्यक्ति के जीवन में मुक्ति और सामाजिक परिवर्तन हेतु एक प्रबल शक्ति हो सकता है।

1.9 नीतिशास्त्र का महत्व

वर्तमान समय में मानव जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में नीतिशास्त्र का महत्व किसी भी समय से अधिक अनुभव किया जा रहा है। आज विश्व में बढ़ते हुए अपराध का दौर है, जो थमने का नाम नहीं ले रहा है। इसके अतिरिक्त पारंपरिक धर्मों में नैतिक–आचार को प्रेरित करने की क्षमता क्रमशः घटती जा रही है। आतंकवाद, गृह युद्ध, औद्योगिक प्रदूषण, नियोजित मूल्यह्रास, भ्रमात्मक विज्ञापन, प्रवंचक वर्गीकरण, अन्यायपूर्ण मजदूरी, अपराधिक गुट, अवैध जुआ, जबरन वेश्यावृत्ति, विमान अपहरण, मैच फिक्सिंग... जैसी कई अन्य विध्वसंक प्रवृत्तियाँ प्रभावी हैं। वास्तव में, जीवन के कुछ ही क्षेत्र हैं जहाँ नैतिक पतन नहीं है। ऐसी परिस्थिति में ऐसे प्रश्न महत्वपूर्ण हो जाते हैं कि क्या हम नैतिक रिक्तता की ओर बढ़ रहे हैं? क्या यह नीतिशास्त्र के अंत का हमारा रास्ता है?

MAADHYAM IAS

हम नीतिशास्त्र क्यों पढ़ें? इसके कम से कम तीन कारण हो सकते है; प्रथम, नैतिक दर्शन या नीतिशास्त्र का अध्ययन जीवन सम्बन्धी परम प्रश्नों पर हमारे विचार और गहन कर सकता है। नीतिशास्त्र का अध्ययन व्यक्ति के अपने कर्मों, निर्णयों आदि के आत्मालोचन एवं मूल्यांकन में सहायक हो सकता है। यह व्यक्ति को स्वयं को जानने तथा उसके लिए क्या अच्छा या उचित है को समझने और उसे प्राप्त कराने में सहायक है।

दूसरे, नैतिक दर्शन का अध्ययन नैतिकता के बारे में अच्छी तरह सोचने में सहायता कर सकता है। निर्णय करते समय यह हमें हमारी नैतिक स्थिति स्पष्ट करने में सहायता कर सकता है। यह किसी नैतिक विषय पर हमारी सोच को विकसित कर सकता है। हम जीवन में ऐसी स्थितियों का सामना करते हैं, जहाँ हमें यह निर्णय लेना होता है कि क्या करना उचित है और क्या करने से हम बचें। हम कुछ करें कि न करें, क्या चुनें। प्रत्येक निर्णय या चुनाव हम तर्कबुद्धि से करते हैं। निर्णय या चुनाव के औचित्य का निर्णय करने में हमें मानना पड़ता है कि कुछ तर्क और तर्कों से अच्छे हैं। किसी भी परिस्थिति में नैतिक रूप से स्वीकार्य

कर्म करने का प्रयास हम सभी को करना चाहिए, इस पर सब सहमत हैं। फिर भी, असहमति इस बात पर है कि वास्तव में क्या कृत्य अच्छा है।

तीसरे, नैतिक दर्शन का अध्ययन हमारे चिन्तन की प्रक्रिया को और तीक्ष्ण बना सकता है यह हमारे मस्तिष्क को तार्किक और बौद्धिक रूप से सोचने तथा नैतिक समस्याओं का अधिक स्पष्ट ढंग से समाधन करने के लिए प्रशिक्षित करता है। नीतिशास्त्र अपरिहार्य है क्योंकि मानव स्वभाव से सामाजिक प्राणी है, जो दूसरे प्राणियों तथा प्रकृति के साथ रहता है। सभी क्रियाएँ जाने–अनजाने दूसरों को भी प्रभावित करती हैं। कोई भी निर्णय लेने से पहले व्यक्ति अपने को सही या गलत के मानदण्डों पर परखता है, यद्यपि मानदण्ड समयानुसार बदल सकते हैं।

इस प्रकार, नैतिक समस्याओं से सबका सामना होता है। कोई भी व्यक्ति बिना नीतिशास्त्र के जीवन नहीं जी सकता, फिर चाहे वह नैतिक सिद्धान्तों से अवगत हो या न हो। जाने–अनजाने हम सभी नैतिक निर्णय लेते हैं, चाहे हम इससे भिज्ञ हों या न हों। हम सबके भीतर नैतिक अभिवृत्तियाँ होती हैं और हम प्रतिदिन नैतिक दृष्टिकोण अपनाते हैं।

1.10 हमें नैतिक क्यों होना चाहिए?

यह प्रश्न करने वाले कम नहीं है कि हमें नैतिक क्यों होना चाहिए? जीवन की नैतिक संस्थाओं में हम क्यों भाग लें? हम नैतिक विचार क्यों अपनाएँ?

प्रत्येक व्यक्ति के भीतर अच्छा बनने की गहरी इच्छा होती है। प्राकृतिक रूप से मानव अच्छे की ओर झुकता है। प्रत्येक स्त्री–पुरूष अपने हेतु अच्छे की कामना करता है। नैतिक सिद्धान्त और नैतिक परिपाटियाँ अपने हेतु अच्छा प्राप्त करने में सहायता करती है। यह व्यक्ति को नैतिक बनाने में सहायक होता है। नैतिकता का सम्बन्ध व्यक्ति के बाह्याचरण से अधिक उसके आत्म से होता है। इस प्रकार से देखने पर नैतिकता व्यक्ति की अंतरात्मा से सम्बन्धित है और कुछ ऐसा है जो उसके स्वभाव पर आधरित है। मनुष्य का विवेकी स्वभाव उसे तार्किक और नैतिक सोच–विचार के आधरभूत सिद्धान्त के प्रति जागरूक बनाता है। इसका तात्पर्य है कि मानव क्रियाओं का केवल विषयीगत पक्ष नहीं है वरन् एक वस्तुगत पक्ष भी है जो उसे स्वयं को कुछ सामान्य सिद्धांतों पर खड़ा करते हेतु प्रेरित करता है।

हम देखते हैं कि किसी समाज के लिए हमें कुछ निश्चित नियम–कानून की आवश्यकता होती है। अन्यथा लोगों के समूह में जीवन जीने की संतोषजनक दशा कठिनाई से मिलेगी (न तो प्राकृतिक अवस्था और न ही सर्वव्यापी या सर्वग्रासी राज्य में)। मानव जीवन को सुगम बनाने वाली संस्थाएँ भी बिना कुछ निश्चित नैतिक सिद्धांतों के नहीं चल सकतीं। किन्तु, यहाँ वैयक्तिक स्वतन्त्रता का प्रश्न भी उपस्थित हो जाता है। समाज किस हद तक व्यक्ति से मांग

कर सकती है? अब यहाँ वैयक्तिक स्वतंत्रता का सम्मान नहीं करना चाहिए? क्या नैतिकता मानव के लिए है या मानव नैतिकता के लिए?

नैतिकता बहुत कुछ पोषण की तरह है। हममें से अधिकतर ने कभी पोषण का पाठ्यक्रम नहीं देखा है या इसके बारे में कुछ अधिक पढ़ा है। फिर भी हमें इसके बारे में सामान्य जानकारी है कि क्या खाना चाहिए। इसमें हम फिर भी गलतियाँ करते हैं। एक अच्छे आहार के बारे में सोचना दीर्घावधि में लाभकारी हो सकता है, हम इसका सेवन आरंभ कर सकते हैं भले ही इसका कोई त्वरित लाभ न हो। हमारा नैतिक जीवन भी इसी प्रकार का है। पोषण शारीरिक स्वास्थ्य का ध्यान रखता है जबकि नैतिकता हमारे नैतिक स्वास्थ्य का। हमारे नैतिक जीवन का पोषण क्या है और क्या घातक है? इसके निर्णय में नीतिशास्त्र सहायक होता है। यह हमारा जीवन स्तर उठाता है, शुभ जीवन जीने में सहायता प्रदान करता है। नैतिकता हमें उन सामान्य विचारों को सुझाती है जो हमें अपने करणीय कर्म सम्बन्धी सहमति बनाने में सहायक होते हैं। यह व्यक्तिगत आग्रहों के स्थान पर मूल्यांकन के वस्तुनिष्ठ दृष्टिकोण ढूढ़ने का प्रयास करती है।

बोध–प्रश्न III

ध्यातव्यः क) उत्तर हेतु दिये गये रिक्त स्थान का उपयोग कीजिए।

ख) अपने उत्तर का मिलान इकाई के अन्त में दिये गये उत्तर से कीजिए।

1. नीतिशास्त्र की प्रासंगिकता पर एक संक्षिप्त लेख लिखिए।

.....

.....

.....

.....

1.11 सारांश

नीतिशास्त्र मानव व्यवहार का अध्ययन है। यह मानव क्रियाओं का अध्ययन करता है और उनके सही या गलत की जाँच करता है। दार्शनिक विषय के रूप में नीतिशास्त्र में हम उन मूल्यों तथा दिशानिर्देशों का अध्ययन करते हैं जिनके अनुसार हम जीवन जीते हैं। इसके अन्तर्गत केवल मानव के स्वैच्छिक, सचेतन और उद्देश्यपरक कर्म ही आते हैं। मानव इतिहास में नीतिशास्त्र तथा नैतिक जागरूकता की उत्पत्ति को आसानी से नहीं जाना जा सकता है। यह लम्बे समय तक चलने वाले क्रमिक विकास की प्रक्रिया का परिणाम है।

नीतिशास्त्र आगमन एवं निगमन पद्धति का प्रयोग करता है। नीतिशास्त्र के विभिन्न दृष्टिकोणों में अनियामक नीतिशास्त्र (वर्णनात्मक नीतिशास्त्र और अधि–नीतिशास्त्र), जो बिना किसी सही या गलत के निर्णय के नैतिकता की परख करता है, और नियामक नीतिशास्त्र (सामान्य नियामक नीतिशास्त्र और अनुप्रयुक्त नीतिशास्त्र), जो सही या गलत के निर्णय के साथ नैतिकता की परख करता है, सबसे प्रमुख दृष्टिकोण हैं। नीतिशास्त्र को विज्ञान मान सकते हैं। यद्यपि इसे प्राकृतिक विज्ञान से इतर माना जाता है, क्योंकि यह सीधे मानव के अभीष्ट लक्ष्य से सम्बन्धित है। नीतिशास्त्र को सभी विज्ञानों का फल कहा जाता है, क्योंकि यह सभी विज्ञानों और अन्य स्त्रोतों से परम स्वतन्त्रता के अन्तिम लक्ष्य के सन्दर्भ में ज्ञान लेकर मनुष्य को पूर्ण बनाता है।

1.12 कुंजी शब्द

'नीतिशास्त्र' और 'शिष्टाचार' : नीतिशास्त्र सही और गलत आचार का सिद्धान्त है। शिष्टाचार इसका अभ्यास। नीतिशास्त्र जहाँ परिस्थिति विशेष के मूल्य से सम्बन्धित है, वहीं शिष्टाचार इसे प्राप्त करने का मार्ग है। नीतिशास्त्र मानव व्यवहार के सिद्धान्त की बात करता है, जबकि शिष्टाचार परिस्थिति विशेष में इन सिद्धांतों के अनुपालन की।

नैतिक, अनैतिक और निर्नैतिक क्रियाएँ : परम सुख की प्राप्ति के लिए विचारपूर्वक किया गया कर्म नैतिक कहा जाता है। कोई कर्म तभी नैतिक होता है जब यह स्वतन्त्रता से तथा लक्ष्य की प्राप्ति को ध्यान में रखकर किया जाता है। अनैतिक का तात्पर्य है 'ज्ञात नैतिक नियम विशेष के अनुपाल के बिना'। वे सभी कार्य जो नैतिक रूप से बुरे हैं। (कौटम्बिक व्यभिचार, मानव हत्या) आदि।

निर्नैतिक का तात्पर्य है शिष्टाचार से असंगत या असंबद्ध। हम कुछ निर्नैतिक क्रियाओं को चिन्हित कर सकते हैंः निर्जीवों अथवा घटनाओं के कृत्य (बाढ़, भुखमरी आदि)। ये उदासीन क्रियाएँ हैं और नैतिक परिक्षेत्र से बाहर हैं, प्रत्यावर्ती क्रियाएँः ये त्वरित और स्वचालित हैं (श्वसन), आकस्मिक कार्य , अबोध बच्चों या पागलों के कार्य, सम्मोहित होकर किया गया कार्य।

आदतन कृत्य : आदत से संचालित कृत्य या क्रिया नैतिक क्रिया कहलाती है क्योंकि आदत जानबूझकर डाली जाती है। नीतिशास्त्र में हम अनैतिक क्रियाओं की बात करते हैं न कि निर्नैतिक क्रियाओं की।

मानव कृत्य : किसी व्यक्ति द्वारा किसी लक्ष्य की प्राप्ति हेतु इच्छापूर्वक किया गया कार्य मानव कृत्य है। नैतिकता मानवों की बात करती है न कि पशुओं की। प्रत्येक मानव कृत्य किसी लक्ष्य को दृष्टिगत कर किया जाता है, पूर्ण ज्ञान और स्वतंत्रता के साथ किया जाता है।

नीतिशास्त्र इन मानव कृत्यों से संबंद्धित है, जो किसी लक्ष्य प्राप्ति में सहायक होते हैं या रोकते हैं।

उद्देश्य/लक्ष्य : मानव क्रियाओं का लक्ष्य विभिन्न हो सकता है। ईश्वर में विश्वास रखने वाले के लिए परम सुख की प्राप्ति (ईश्वर और आनंदप्रद दृष्टि) लक्ष्य हो सकता है। ईश्वर ही मानव का अंतिम लक्ष्य है और वह मानव के सभी क्रियाओं में सम्मिलित है। आनंद में ज्ञान और ईश्वर प्रेम सन्निहित है। ईश्वर में विश्वास न रखने वालों के लिए मानवता का सुख होना ही लक्ष्य हो सकता है।

सही या गलत : नीतिशास्त्र को आचार के उचित या अनुचित के विज्ञान के रूप में परिभाषित करते हैं। किसी कार्य को क्या सही और गलत कार्य बनाता है? सही के लिये प्रयुक्त अंग्रेजी शब्द राइट (right) है। राइट शब्द लैटिन के रेक्टस (rectus) से बना है, जिसका अर्थ है सीधा या मानदण्ड के अनुसार। एक कार्य तब नैतिक है जब यह नैतिक नियमों के अनुरूप है और तब नैतिक रूप से गलत है, जब वह नैतिक नियमों के अनुकूल नहीं है।

अच्छा और बुरा : 'अच्छा' शब्द मन और संकल्प की अभिवृत्ति दर्शाता है। कोई कार्य तब अच्छा है जब वह अंतिम लक्ष्य की प्राप्ति में सहायक है, और तब बुरा है जब वह उद्वेश्य की पूर्ति नहीं करता। अच्छा शब्द को कुछ ऐसी चीज को संकेतित करने के लिए प्रयोग करते हैं जो स्वयं में एक लक्ष्य हो। इस प्रकार समम बोनम (summum bonum) या परम ईश्वर का तात्पर्य है परमलक्ष्य, जिसे हम पाना चाहते हैं।

MAADHYAM IAS

ऐच्छिक एवं अनैच्छिक क्रियाएँ : कोई क्रिया ऐच्छिक है जब वह किसी आंतरिक सिद्धान्त तथा ज्ञान के साथ की जाती है। कोई कार्य स्वतंत्र है जब यह स्वनिर्धारित कर्ता से उदभूत है। क्या सभी ऐच्छिक कार्य स्वतंत्र हैं? अधिकांश स्वैच्छिक कार्य स्वतंत्र होते हैं केवल ऐसे उच्च कृत्यों को छोड़कर जिनसे वह सर्वोच्च परमेश्वर को अपनाता है।

यदि ज्ञान या स्वतंत्र विकल्प का अस्तित्व का पूर्णतया ही अभाव है तब कार्य अनैच्छिक है। अनैच्छिक कार्य बिना किसी उद्वेश्य के हो सकते हैं। यह ज्ञान के साथ परंतु बिना किसी इच्छा के लिए किये जाते हैं, जैसे, संज्ञा–शून्यता से निकलता हुआ व्यक्ति मूर्खतापूर्ण बात करता है परंतु वह इसे नियंत्रित करने में अक्षम होता है। पहला संवेगों पर बल देता है तथा दूसरा संवेगों के दबाव से चुनाव को मुक्त बनाता है।

1.13 अन्य सहायक अध्ययन–सामग्री एवं सन्दर्भ

अबेल्सन, रेजील एण्ड काय नील्सेन. ''एथिक्स, हिस्ट्री ऑफ'' इन इनसाइक्लोपीडिया ऑफ फिलॉसोफी. एडि. डोनाल्ड एम. बोर्चर्ट, 2006, 394–439.

बाम, आर्ची जे. *व्हाय बी मॉरल?.* न्यू देल्हीः मुंशीराम मनोहरलाल पब्लिशर्स, 1980.

बीयुचौम्प, टॉम एल. *फिलॉसोफिकल एथिक्सः एन इन्ट्रॉडक्शन टू मॉरल फिलॉसोफी,* सेकेन्ड एडिशन. न्यू यॉर्कः मैकग्रा–हिल, 1991.

बैकविथ, फ्रांसिस जे. (एडि.). डू *द राइट थिंगः अ फिलॉसोफिकल डायलॉग आन द मॉरल एण्ड सोशल इस्सूज ऑफ अवर टाइम.* सडबरीः जोन्स एण्ड बर्टलेट पब्लिकेशंस, 1995.

बिलिंगटन, रे. लिविंग *फिलॉसोफी एन इंट्रॉडक्शन टू मॉरल थॉट,* सेकेन्ड एडिशन. लंदनः राउटलेज, 1993.

बांड, इ. जे. *एथिक्स एण्ड ह्यूमन वेल–बीइंग, एन इंट्रॉडक्शन टू मॉरल फिलॉसोफी.* माल्डेनः ब्लैकवेल पब्लिशर्स इन., 1996.

बॉस, जूडिथ ए. (एडि.). *पर्सपेक्टिव्स ऑन एथिक्स.* कैलीफोर्नियाः मेफील्ड पब्लिकेशन कंपनी, 1998.

फीजर, जेम्स. ''एथिक्स'' इन द इंटरनेट इनसाइक्लोपीडिया ऑफ फिलॉसोफी, http://www-utm-edu/research/iep/e/ethics-comऐक्सेस्ड ऑन 1 जुलाई, 2009.

फ्रैंकेना, बिलियम के. *एथिक्स,* सेकेन्ड एडिशन. न्यू देल्हीः प्रेंटिस–हॉल ऑफ इंडिया, 1989.

जेंसलर, हैरी जे. *एथिक्सः ए कंटेम्परेरी इंट्रॉडक्शन.* लंदनः राउटलेज, 1998.

हिल, वाल्टर एच. *एथिक्स ऑर मॉरल फिलॉसोफी.* न्यू देल्हीः अनमोल पब्लिकेशंस, 1999.

लैफोलेट, हग (एडि.). *द ब्लैकवेल गाइड टू एथिकल थ्योरी.* माल्डेनः ब्लैकवेल पब्लिशर्स इन., 2000.

मैकेइंटायर, अलासडायर. *अ शॉर्ट हिस्ट्री ऑफ एथिक्सः हिस्ट्री ऑफ मॉरल फिलॉसोफी फ्रॉम होमटिक एज टू ट्वेन्टीएथ सेंचुरी,* सेकन्ड एडि. लंदनः राउटलेज, 1998.

मैकेन्जी, जॉन एस. *अ मैनुअल ऑफ एथिक्स.* केल्कट्टाः ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस, 1929.

नॉरमन, रिचर्ड. *द मॉरल फिलॉस्फर्सः एन इंट्रॉडक्शन टू एथिक्स,* सेकेन्ड एडि. न्यू यॉर्कः ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस, 1998.

MAADHYAM IAS

ओराइजन, मार्क. *मॉरलिटी फॉर अवर टाइम. ट्रांसलेटेड बाय नेल्स चाले.* न्यू यॉर्कः इमेज बुक्स, 1968.

रशेल्स, जेम्स. *दि एलिमेन्टस ऑफ मॉरल फिलॉसोफी*, थर्ड एडि. बोस्टनः मैकग्रा–हिल कॉलेज, 1999.

सिजविक, हेनरी. *द मेथड्स ऑफ एथिक्स.* न्यू देल्हीः एस. बी. डब्ल्यू. पब्लिशर्स, 1993.

सिंगर, पीटर, (एडि.). *एथिक्स.* न्यू यॉर्कः आक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस, 1994.

1.14 बोध–प्रश्नों के उत्तर

बोध–प्रश्न I

1. पश्चिमी दर्शन में नीतिशास्त्र मुख्यतया यूनान में विकसित हुआ। यूनानी दार्शनिक सुकरात प्रथम व्यक्ति थे जिन्होंने प्रथाओं और धारणाओं की तार्किक आलोचना हेतु लोगों को प्रेरित किया। रिपब्लिक से लेकर बाद के संवादों और उपदेशों तक में प्लेटो ने प्रकृति, ईश्वर और मानव के बारे में व्यवस्थित विचार प्रस्तुत किये जिससे लोगों ने अपने नैतिक सिद्धान्तों को निगमित किया। सभी यूनानी दार्शनिकों में महान, अरस्तू ने अपने नैतिक लेखों (जैसे कि यूडेमियन ऐथिक्स, द निकोमेकन एथिक्स और पालिटिक्स) द्वारा नीतिशास्त्र के आधरों को व्यवस्थिति किया।

MAADHYAM IAS
'way to achieve your dream'

बोध–प्रश्न II

1. नीतिशास्त्र में आगनात्मक एवं निगमनात्मक दोनों पद्धतियाँ प्रयुक्त होती है। निगमन तार्किक बुद्धि द्वारा बिना किसी अनुभव के ज्ञान प्राप्त करने की प्रक्रिया है। निगमनात्मक तर्क–वितर्क सार्वभौम या सामान्य सत्य से आरंभ होता है और किसी विशिष्ट बिंदु की ओर ले जाता है। न्यायवाक्य, जिसमें दो धारणाओं से अभीष्ट निष्कर्ष निकाला जाता है जैसे, सभी मानव नश्वर हैं, राम एक मानव है अतः राम नश्वर है, निगमनात्मक तर्क–वितर्क का शास्त्रीय रूप हैं आगमन अनुभव के द्वारा ज्ञान प्राप्त करने का साधन है। आगमन विशिष्ट से प्रारंभ होकर सामान्य या सार्वभौमिक की ओर बढ़ता है। उदाहरण के लिए, पानी चैन्नै में 100 C पर उबलता है। पानी कोच्ची में 100 C पर उबलता है। पानी मुम्बई में 100 C पर खौलता है। अतः पानी 100 C पर उबलता है।

2. नीतिशास्त्र के समग्र अध्ययन को सामान्य और विशेष नीतिशास्त्र में बाँट सकते हैं। विभिन्न सिद्धांतों को देखते हुए दार्शनिक इसे तीन मुख्य क्षेत्रों; अधि–नीतिशास्त्र, नियामक नीतिशास्त्र और अनुप्रयुक्त नीतिशास्त्र, में विभाजित करते हैं। अधि–नीतिशास्त्र नैतिक संप्रयत्यों

की उत्पत्ति और अर्थ की छानबीन करता है। नियामक नीतिशास्त्र सही और गलत आचारों के नियंत्रक मानदण्डों को स्पष्ट करने का प्रयास करता है। अनुप्रयुक्त नीतिशास्त्र विवादास्पद विषयों जैसे, गर्भपात, पर्यावरणीय समस्या, इत्यादि।

बोध–प्रश्न III

1. आज किसी भी समय की तुलना में समाज को नीतिशास्त्र की प्रासंगिकता और आवश्यकता अधिक है। हम नीतिशास्त्र क्यों पढ़ें? इसके कम से कम तीन कारण हो सकते हैं। प्रथम, नैतिक दर्शन या नीतिशास्त्र जीवन के प्रश्न पर हमारे विचार और अधिक गहन कर सकता है। नीतिशास्त्र का अध्ययन व्यक्ति के अपने कर्मों, निर्णयों आदि के आत्मालोचन एवं मूल्यांकन में सहायक हो सकता है। दूसरे, नैतिक दर्शन का अध्ययन नैतिकता के बारे में अच्छी तरह सोचने में सहायता कर सकता है। निर्णय करते समय यह हमें हमारी नैतिक स्थिति स्पष्ट करने में सहायता कर सकता है। नैतिक दर्शन का अध्ययन हमारे चिन्तन की प्रक्रिया को और तीक्ष्ण बना सकता है। यह हमारे मस्तिष्क को तार्किक और बौद्धिक रूप से सोचने तथा नैतिक समस्याओं का अधिक स्पष्ट ढंग से समाधान के लिए प्रशिक्षित करता है।

MAADHYAM IAS
'way to achieve your dream'

इकाई 2 नैतिक कर्म

रूपरेखा

2.0 उद्देश्य

2.1 परिचय

2.2 परिभाषा

2.3 दार्शनिक मत

2.4 धार्मिक मत

2.5 सारांश

2.6 कुंजी शब्द

2.7 अन्य सहायक अध्ययन–सामग्री एवं सन्दर्भ

2.8 बोध–प्रश्नों के उत्तर

2.0 उद्देश्य

MAADHYAM IAS
'way to achieve your dream'

यह इकाई,

- नैतिक कर्म का अर्थ प्रस्तुत करेगी,
- नैतिक कर्मों के दार्शनिक आपादनों की व्याख्या करेगी, और
- स्पष्ट करेगी कि नैतिक कृत्य और गैर–नैतिक कृत्य के मध्य क्या अन्तर है।

2.1 परिचय

मनुष्य होना दूसरों के साथ या दूसरों के बीच जीवनयापन करने को आपादित करता है। यह जन्म से ही देखा जाता है कि कोई अकेलेपन में जीना नहीं चाहता है। एक बच्चा जब महसूस

* सुश्री लिजाश्री हजारिका, विद्यावाचस्पति शोधक, दर्शन केन्द्र, जवाहरलाल नेहरू विश्वविद्यालय, दिल्ली,
अनुवादक– डॉ. अमित कुमार प्रधान, सहायक प्राध्यापक, रामजस महाविद्यालय, दिल्ली

करता है कि उसकी माँ आसपास नहीं है तो वह आपनी माँ की चाह रखता है। बच्चे की माँ की चाहत समाज में उपस्थित मनुष्यों के बीच के गूढ़ अनुबंध को प्रदर्शित करता है जो अनिश्चित काल से चला आ रहा है क्योंकि यह मनुष्य होने का अपरिहार्य लक्षण है। हम इस तथ्य को नकार नहीं सकते हैं कि हम समाज में जीवन यापन करते हैं। हम आपस में समान देश और समान समझ साझा करते हैं। समाज में जीवनयापन करने से हम आस्था, विश्वास, निष्ठा इत्यादि सरोकारों का अंतर्निवेशन करते हैं जो हमारे बीच एक अनुबन्ध निर्मित करते हैं। इन सरोकारों पर या इन सरोकारों के लिए कार्य करना ही जीवन है। हम कुछ सुनिश्चित अनुग्रहों का किसी प्रकार पालन करने हेतु प्रशिक्षित हैं।

मनुष्य होना ही नैतिक रूप से दायित्वों से युक्त होना है क्योंकि नैतिकता एक वयस्क मनुष्य के रूप में हमारे जीवन की बुनियादी जरूरत है। परन्तु इस नैतिक बाध्यता या नैतिक दायित्व की प्रकृति के अन्वेषण का एक ही मार्ग है कि हम स्पष्ट करें कि नैतिकता क्या है? और हम किस प्रकार नैतिक बनें? यह प्रश्न सम्बन्धित प्रश्नों, यथा क्या हमारे सभी कर्म नैतिक माने जाते हैं या क्या किसी कर्म में कुछ सुनिश्चित तत्वों का होना उसे नैतिक बनाता है– यदि ऐसा है तो वे तत्व क्या हो सकते हैं?, हेतु कुछ नए आयामों का मार्ग प्रशस्त करता है। अतः "नैतिक कर्म" का आशय क्या है अथवा एक विशिष्ट कर्म को कब नैतिक कर्म कहा जायेगा इसे समझने के लिए हमें "कर्म" तथा "नैतिक" जैसे पदों का स्वतन्त्र रूप से अन्वेषण करना पड़ेगा। इसके लिए पहले यह समझने और विश्लेषित करने का प्रयत्न करते हैं कि कर्म से क्या आशय है और तत्पश्चात किसी कर्म में अन्तर्निहित नैतिकता के अवयवों का अन्वेषण करेंगे। हालाँकि यह कहना कि सभी मानवीय कर्मों का नैतिक आयाम होता है, का आशय यह नहीं लेना चाहिए कि सभी कर्म सारभूत रूप से नैतिक होते हैं क्योंकि प्रत्येक प्रकार के कर्म में कुछ गहन नैतिक तत्त्व का हो, यह आवश्यक नहीं।

एक कर्ता द्वारा परिणाम प्राप्त करने हेतु गति उत्पन्न करना एक कर्म है। यह किसी घटना की भांति घटित नहीं होता है वरन उस क्रिया के कर्ता द्वारा किसी प्रयोजन के निमित्त उत्पन्न किया जाता है। प्रत्येक कर्म में एक कर्ता, एक प्रयोजन, संकल्प या अभिप्राय और परिणाम शामिल होते हैं। उदाहरण के लिए 'जॉन ने गरीबों को दान दिया' एक कर्म है क्योंकि यह 'सूर्य प्रतिदिन पूर्व दिशा में उदित होता है' की भांति घटित नहीं होता है। उपरोक्त उदाहरण में प्रथम वक्तव्य एक कर्म है क्योंकि जॉन ने गरीबों के मदद के प्रयोजन या संकल्प से कार्य किया और इसके साथ उसके मनस में एक लक्ष्य भी था–गरीबों को सुखी बनाना। दूसरा वक्तव्य एक बिना चूक के प्रतिदिन घटित होने वाली एक घटना है जो पृथ्वी के घूर्णन एवं समय की गणना के कारण होती है। सूर्योदय के पीछे कोई संकल्प या प्रयोजन नहीं है। जब कोई व्यक्ति किसी उद्देश्य, अभिप्राय या संकल्प से निर्देशित होता है तभी वह कर्म होता है क्योंकि तभी कोई व्यक्ति सक्रिय रूप से शामिल होता है और अपना लक्ष्य अर्जित करने के

लिए उद्यम करता है। अनेक नीतिशास्त्रियों का मानना है कि अभिप्रेरक, संकल्प या अभिप्राय की अवधारणा कर्म का एक विशेष अवयव है। इस अवयव के आभाव में नैतिक उत्तरदायित्व एवं नैतिक स्वामित्व जैसी अनेक नैतिक अवधारणाए भी संभव नहीं हो सकती हैं। यह इस बात को आपादित नहीं करता कि हम मान लें कि सभी कर्म नैतिक हैं किन्तु इस बात को भी नकारा नहीं जा सकता है कि किसी न किसी हद तक हमारे सभी कर्म मूल्यांकनात्मक होते हैं। हमारे कर्मों को मूल्यंकित करने का प्रयास उन्हें उचित, अनुचित, नैतिक, अनैतिक या निर्नैतिक कर्मों की कोटियों में श्रेणीबद्ध करने में प्रतिफलित होता है। एक कर्म का उचित या अनुचित श्रेणी में मूल्यांकन कर्ता के अभिप्राय अथवा प्रयोजन अथवा संकल्प के अन्वेषण करने से संभव होता है। कोई भी कर्म जो हमारे सयास संकल्प, अभिप्राय अथवा प्रयोजन से प्रवृत्त हो नैतिक कर्म होता है। जब यह प्रश्न पूछा जाए कि एक विशेष कर्म को कब नैतिक कर्म कहा जा सकता है? एक नैतिक कर्म हमारा स्वयं का कर्म होना चाहिए अर्थात् यह हमारे स्वतः संकल्प से उत्पन्न होना चाहिए। यदि हम दूसरों के निर्देशों का पालन करें तो ऐसे कर्मों में नैतिक सामग्री नहीं होगी। मानव इतिहास के आरम्भिक युग से ही नैतिक कर्म एवं धार्मिक कर्म अनिवार्य रूप से संयुक्त रहे हैं। इस मामले में कर्म की नैतिकता का मूल्यांकन दुष्कर होता है क्योंकि हम उसके मनस की गहराइयों को भेद नहीं सकते हैं। कर्म में नैतिक मूल्य कैसे होता है इसे समझाने के लिए विभिन्न दार्शनिकों ने विभिन्न सिद्धान्त दिए हैं– परिणाम निरपेक्षता या कर्तव्यशास्त्र, परिणाम सापेक्षता या परम–उद्देश्यवाद तथा सद्गुण। यह इकाई यह समझने के लिए कि एक कर्म नैतिक कैसे होता है, इन सभी सिद्धान्तों की व्याख्या करेगी और नैतिक एवं अनैतिक कर्मों की संभावनाओं को प्रदशित करेगी।

MAADHYAM IAS
"way to achieve your dream"

2.2 परिभाषा

मॉरल पद लैटिन शब्द 'मोस' से व्युत्पन्न है जिसका अर्थ है रिवाज या आदत। इससे यह निकाला जा सकता है कि जब कोई कर्म सायास निष्पादित किया जाता है तो हम उसका मूल्यांकन शुभ या अशुभ के रूप में कर सकते हैं और उसे नैतिक और अनैतिक कर्मों के रूप में वर्गीकृत किया जा सकता है।

नैतिक कर्म से आशय उन कर्मों से है जो नैतिक प्रक्षेत्र में आते हैं और नैतिक निर्णयों की विषयवस्तु होते हैं। यह कर्म गैर–नैतिक कर्मों से सुभिन्न होते हैं जिनमें ना तो नैतिक गुण होते हैं और जो ना ही नैतिक निर्णयों के प्रक्षेत्र में आते हैं। बृहद अर्थ में नैतिक पद का आशय है नैतिक गुणों (उचित, अनुचित, शुभ, अशुभ) से युक्त होना अर्थात क्या उचित, अनुचित, शुभ और अशुभ है। और कर्म के निष्पादन का आशय है एक विवेकशील कर्ता के द्वारा निष्पादन। विवेकहीन आवेग या रुझानवश नहीं वरन ज्ञान तथा साधन एवं साध्य के स्वतन्त्र चयन के द्वारा। स्वतः प्रवृत कर्म नैतिक कर्म नहीं होते हैं क्योंकि स्वतः प्रवृत कर्म

विशेषकर निम्न प्राणियों में पाए जाते हैं। स्वतः प्रवृत कर्म शुभ या अशुभ, उचित या अनुचित नहीं कहे जा सकते हैं क्योंकि पशु उचित एवं अनुचित का भेद नहीं कर सकते हैं और निर्नैतिक होते हैं। मानसिक रूप से अक्षम व्यक्तियों के कर्म, बच्चों के कर्म, सम्मोहन के असर में किये गए कर्म तथा बाध्यताओं में किये गए कर्म निर्नैतिक कर्म होते हैं। कुछ दार्शनिकों के अनुसार प्रत्येक मानवीय कर्म शुभ नहीं होता है शुभेच्छा से किये गए कर्म ही शुभ होते हैं। इमैन्युएल काण्ट के अनुसार एक कर्म नैतिक कर्म तभी होता है जब वह शुभ संकल्प से किया जाए। एक शुभ संकल्प उपयोगी हो सकता है किन्तु यह अपनी उपयोगिता के कारण शुभ नहीं होता है। उपयोगिता के अभाव में इसका मूल्य प्रभावित नहीं होगा। नैतिक कर्म उपयोगितावश या श्रेष्ठता अर्जित करने के लिए नहीं किये जाते हैं। दो व्यक्तियों ने एक ही काम किया हो सकता है और उनमें से एक का काम नैतिक हो सकता है और दूसरे का अनैतिक। उदाहरण के लिए एक व्यक्ति गरीबों को दयावश भोजन कराता है और दूसरा व्यक्ति रुतबा अर्जित करने के लिए अथवा किसी स्वार्थवश भोजन कराता है। हालाँकि कर्म समान है तथापि एक का कर्म नैतिक है और दूसरे का निर्नैतिक। जब हम शब्द 'नैतिक' का प्रयोग करते हैं तब उसका प्रयोग नैतिक शुभत्व के सम्बन्ध में होता है जो दर्शाता है कि हम चरित्र के शुभत्व को लक्षित कर रहे हैं।

ऐसा प्रतीत होता है कि अधिकतर दार्शनिक व्यक्ति की अभिप्रेरणाओं को एक कारक मानते हैं जो उसके कर्म को नैतिक रूप से शुभ या अशुभ बनाते हैं। उनमे से कुछ का स्पष्ट रूप से मानना है कि किसी कर्म की नैतिकता हेतु अभिप्रेरणा ही एकमात्र सार्थक कारक है। यह जाहिर है कि एक कर्म की नैतिकता हेतु अभिप्रेरणाएं महत्वपूर्ण हैं किन्तु अनिवार्य नहीं। यदि एक व्यक्तिनिर्धनों की सहायता के लिए धन खर्च करता है तब उसकी अभिप्रेरणा उसके कर्म को नैतिक रूप से शुभ बनाती है और हम उसे नैतिक रूप से शुभ व्यक्ति के रूप में पहचानते हैं। परन्तु यदि वह मात्र इसलिए धन खर्च करता है कि वह इसे एक लाभप्रद निवेश मानता है तो उसका कर्म दूरदर्शी माना जायेगा परन्तु यह नैतिक रूप से प्रशंसनीय नहीं होगा। किन्तु एक कर्म के अभिप्राय एवं अभिप्रेरणा का विभेद विचार से नहीं किया जा सकता है वरन व्यवहार से ही संभव है। उदाहरण के लिए, यदि अ ब को मारने के उद्देश्य से उसकी कॉफी में में जहर मिला देता है,उसका उद्देश्य ब की संपत्ति अर्जित करना हो सकता है। रमा ने सायास एक वृद्ध महिला की हत्या कर दी और अनायास अपनी माँ की हत्या कर दी, यदि उसने जानबूझ कर अपनी माँ की हत्या की तो हम उसके इस निन्दनीय कर्म का मूल्यांकन भिन्न प्रकार से करेंगे। कर्म नैतिक रूप से अशुभ तब भी हो सकते हैं जब उनके प्रयोजन शुभ हों। मान लीजिये एक व्यक्ति अ यह सोच कर कोई कार्य करता है कि वह ब को प्रसन्न करेगा हालाँकि वह यह जानता है कि उसके कर्म स तथा द को हानि पहुंचा सकता हैं। यहाँ अ मात्र ब से सरोकार रख रहा है और वह स तथा द से उदासीन है। इसलिए अ शुभ संकल्प से कार्य कर रहा था (वह ब को प्रसन्न करना चाह रहा था), किन्तु उसने जो किया

वह अन्ततः नैतिक रूप से शुभ नहीं है। इसका कारण उसकी अभिप्रेरणा नहीं है वरन अन्य अभिप्रेरणाओं का अभाव है। उपरोक्त उदाहरण में कुछ अभिप्रेरणाओं का अभाव कर्म को अशुभ बना देता है अन्यथा वह कर्म शुभ होता। यह इस विचार को स्पष्ट करता है कि अनेक कर्म नैतिक रूप से अशुभ होते हैं भले ही उनके अभिप्रयोजन निन्दनीय ना हों। चोरी के इस मामले को लेते हैं । एक लड़के ने एक अमीर महिला के पर्स से 500 रूपये चुरा लिए किन्तु महिला ने भीड़ को चिल्ला कर बताया कि उसने उसके 2000 रूपये चुराये हैं। पकड़े जाने पर लड़के ने महिला को 500 रूपये वापस कर दिए। लड़के ने बताया कि 500 रूपये के अभाव में वह डॉक्टर से परामर्श लेने में असमर्थ है क्योंकि डॉक्टर ने बिना भुगतान लिए उसकी माँ का इलाज करने से मना कर दिया। इस मामले में लड़के का अभिप्रयोजन अपनी माँ का इलाज कराना और उसे कष्ट से मुक्ति दिलाना था परन्तु यह कर्म नैतिक रूप से अशुभ है क्योंकि वह दूसरे की संपत्ति के अतिक्रमण से ही कुछ अर्जित कर सकता था। वह इस ज्ञान से अभिप्रेरित नहीं हुआ था कि उसका यह कृत्य उस धनी महिला को हानि पहुँचायेगा। एक कर्म की नैतिकता मात्र उसके पीछे के संकल्प से निर्धारित नहीं होती है वरन अनायास कर्म भी निंदनीय हो सकते हैं। एक कर्म का शुभत्व इस बात पर निर्भर करता है कि व्यक्ति को जीवन पर्यन्त किस प्रकार प्रशिक्षत किया गया है। उदाहरण के तौर पर नन्हे बच्चों को सिखाया जाता है कि दूसरों को चोट ना पहुँचायें। आगे चलकर अनेक बच्चे नियमित रूप से कृपया और धन्यवाद बोलना आरम्भ कर देते हैं। यह पहले से योजनाबद्ध नहीं होता है वरन बाह्य प्रशिक्षण से अंतर्निविष्ट किया जाता है।

MADHYAM IAS

नैतिक कर्म को कर्म की अन्य प्रजातियों से क्या अलग करता है? हम कैसे जानते हैं कि हमारे द्वारा निष्पादित कर्म नैतिक कर्म हैं? सारभूत रूप से नैतिक कर्म नैतिक मूल्यों वाला कर्म होता है जिसमे नैतिक अनुक्रिया के दौरान व्यक्ति की नैतिक चेतना क्रिया में सम्मिलित होती है। नैतिक कर्म सिर्फ एक बार नहीं होता है वरन यह अनवरत चलने वाली प्रक्रिया है। यह कहा जा सकता है कि शुभ के चयन के द्वारा हम शुभ बनते हैं। सत्य बोलने का चयन कर के एक व्यक्ति ईमानदार बन सकता है जैसा कि उस लड़के का मामला जिसने 500 रूपये चुराये थे। हालाँकि एक बार ईमानदारी का प्रदर्शन व्यक्ति को ईमानदार नहीं बनाता है उसे ईमानदार होने के लिए अनवरत ईमानदारी का चयन करना होगा। यह स्पष्ट और सूत्रबद्ध प्रतीत हो सकता है किन्तु नैतिक कर्म कहीं अधिक जटिल हो सकते हैं। अतः शुभ बनना 'बनने' के अर्थ की भांति सतत संघर्ष समाहित करता है। प्रत्येक कर्म चिंतन एवं निर्णय लेने की मांग करता है और प्रत्येक नैतिक कर्म बौद्धिक विमर्श एवं मानवीयता के प्रतिज्ञापन की मांग करता है। नैतिक कर्म हमारे नैतिक आदर्शों पर अवलंबित होते हैं। हमारे नैतिक आदर्श इस विषय पर आधारित होते हैं कि मनुष्य के लिए सुयोग्य जीवन क्या निर्मित करता माना जाता है, यह नैतिक आदर्श पीढ़ियों का उत्पाद हैं जो परम्पराओं के द्वारा रूप लेते हैं और जो कर्मों के द्वारा सामने आते हैं। वह क्रियाकलाप जो शरीर की प्राकृतिक योजनाओं से उदभूत होते हैं, स्वतः

प्रवृत क्रियाकलाप, विचारहीन गतिविधियों, आदतों एवं प्रत्यावर्ती क्रियाओं को नैतिक कर्म नहीं माना जाता है क्योंकि वह मानवीय कर्ता के नियंत्रण से बाहर होते हैं। इसी प्रकार एक ईमानदार व्यक्ति द्वारा अज्ञानवश किये गए कार्य भी नैतिक कर्म के दायरे में नहीं आते हैं। नैतिक कर्म मानव के सयास संकल्प स्वातंत्र्य से उदभूत होते हैं। प्रत्येक मानवीय कर्म जो सोद्देश्य विवेक से उदभूत होता है उसे शुभ या अशुभ होना चाहिए। नैतिक कर्म वह कर्म है जो एक सचेत, बौद्धिक, एवं स्वतन्त्र मनुष्य से सम्बंधित होता है। आइये नैतिक क्रियाओं के महत्वपूर्ण अवयवों को चिन्हांकित करते हैं–:

(1) नैतिक कर्म एक कर्ता के द्वारा ज्ञान या चेतना द्वारा सम्पादित होते हैं अर्थात अज्ञानवश किये गए कर्मों के विपरीत यह कर्म ऐच्छिक होते हैं। यहाँ ज्ञान, उस स्थिति का चरित्रगत लक्षणों को बताने वाले तथ्यों, उपस्थित विकल्पों एवं विकल्पों के सम्भावित परिणामों के ज्ञान के बारे में होता है। उदाहरण के लिए एक व्यक्ति इस बात से अनभिज्ञ होते हुए कि उसका मित्र प्याज से एलर्जी रखता है, उसे प्याज का कटलेट परोस देता है अगर उसे मालूम होता उसकी एलर्जी के बारे में तो उसने कोई दूसरा कटलेट परोसा होता। इस मित्र द्वारा स्थिति की चिकित्सकीय नजरंदाजी नैतिक दायित्व को समाप्त कर देती है बशर्ते इस प्रकार की नजरंदाजी सुधारी ना जा सके।

(2) नैतिक कर्म स्वतंत्रता को समाहित करते हैं।

नैतिक कर्म वह कोई भी किया जाने वाला कार्य होता है कि किसी समाज में जहाँ कार्य सम्पादित होता है, वहाँ स्वीकार्य और शुभ मूल्यों वाला माना जाता है। हर समाज में कुछ मूल्य, कुछ बुनियादी नियम होते हैं जो शुभ एवं अशुभ का निर्धारण करते हैं। यह अनेक कारकों यथा इतिहास, संस्कृति, प्रभुत्वशाली धर्म, आर्थिक स्थितियों, शिक्षा के स्तर इत्यादि पर निर्भर करता है। समय के अनुसार मूल्य परिवर्तित होते रहते हैं। जिस समुदाय अथवा समाज में हम रहते हैं वह नैतिकता के मानक तय करता है। यह विभिन्न संस्कृतियों तथा प्रकृति एवं अन्य मनुष्यों की अनुक्रियाओं पर भी निर्भर करता है।

बोध–प्रश्न I

ध्यातव्यः क) उत्तर हेतु दिये गये रिक्त स्थान का प्रयोग कीजिए।

ख) अपने उत्तर का मिलान इकाई के अन्त में दिये गये उत्तर से कीजिए।

1. नैतिक कर्म पर संक्षिप्त टिप्पणी कीजिए।

.....

.....

.....

.....

2. नैतिक कर्म किस प्रकार निर्नैतिक कर्म से भिन्न हैं?

.....

.....

.....

.....

2.3 धार्मिक मत

धार्मिक अनुभव एक ढांचा उपलब्ध कराते हैं जिसका अंश नैतिक व्यवहार हैं। धार्मिक दृ ष्टिकोण से एक नैतिक कर्म वह है जो मनुष्य को निरपेक्ष लक्ष्य अर्थात् चरम लक्ष्य अर्थात सर्वोच्च शुभ–ईश्वर तक पहुँचने में सहायक है। परिणामतः वे कर्म एक मनुष्य के लिए शुभ हैं जो उसे ईश्वर के निकट ले जाते हैं, जोकि मनुष्य के अस्तित्व का चरम साध्य है। हम हिन्दू ,बौद्ध, जैन, इस्लाम एवं ईसाई धर्म के अनुसार नैतिक कर्मों की चर्चा करेंगे।

2.3.1 हिन्दू

नैतिक कर्म सर्वाधिक प्रसिद्ध ग्रन्थ भगवद्गीता में वर्णित एवं प्रस्तुत किया गया है। गीता का परमार्थ ईश्वर का साक्षात्कार है अथवा समाज का एकीकरण (लोकसंग्रह) है। उस चरम लक्ष्य के साक्षात्कार हेतु साधन वर्ण आश्रम, नित्य धर्म और नैमित्तिक धर्म इत्यादि के नाम से जाने जाते हैं। हिन्दू धर्म के आधारभूत दो सिद्धान्त हैं– धर्म एवं कर्म के सिद्धान्त जो नैतिक विचार एवं कर्म को समझाते हैं। भगवद्गीता का मुख्य उपदेश है निष्काम कर्म। इसका अर्थ अनासक्त कर्म नहीं है और ना ही किसी स्वार्थ सिद्धि की इच्छा के लिए कर्म ना करना, जैसा कि इसका अर्थ बताया जाता है, वरन लोकहित अथवा ईश्वर के साक्षात्कार हेतु कर्म करना है। इसका अर्थ है कि जब बिना किसी कामना, उद्देश्य अथवा परिणाम की चिंता के आवंटित कर्म किया जाता है तब वह मनस को शुद्ध करता है और उत्तरोत्तर व्यक्ति को विवेक के मूल्य और नैष्कर्म्य के महत्त्व को समझने हेतु योग्य बनाता है। ईश्वर कर्मों के परिणाम को नियंत्रित करता है परन्तु इस क्रम को समझ कर दैवीय कर्मों के गत्यात्मक निकाय का उपकरण बनने एवं ईश्वर के प्रति पूर्ण समर्पण हेतु दृढ संकल्प से कर्म करना महत्वपूर्ण है। वास्तविक आत्म साक्षात्कार स्वसमर्पण में निहित है। हिन्दू धर्म में 'धर्म' एक व्यापक पद है। इसका आशय धर्म, विधि, कर्तव्य, क्रम, नैतिकता, न्याय आदि हो सकता है। धर्म हिन्दू नैतिकता का आधारभूत सिद्धान्त है। कर्तव्य का पालन करना सारभूत रूप से उचित कर्म करना है, उचित क्या है यह निर्माणक सामग्री से निर्धारित होता है जिसमे कर्म किया जाता है और बताया जाता है कि

कौन कर्म कर रहा है। इस सन्दर्भ में कर्म धर्म से घनिष्ठ रूप से संयोजित है। सकारात्मक कर्मों के सकारात्मक परिणाम होते हैं और नकारात्मक कर्मों से नकारात्मक परिणाम उत्पन्न होते हैं। धर्म के अनुसार कर्म करना सकारात्मक रूप से कर्म का पालन करना है। जब एक व्यक्ति धर्म का पालन करता है तभी वह सकारात्मक कर्म उत्पन्न करता है।

2.3.2 जैन

जैन मत आत्म उद्यम की अनिवार्यता पर जोर देता है ताकि आत्मा मोक्ष एवं दैवीय चेतना की तरफ द्रवित हो सके। किसी भी जीव को अपने आन्तरिक शत्रुओं पर विजय प्राप्त करने हेतु पांच नैतिक सिद्धान्तों का पालन करने की अनुसंशा की गई है– अहिंसा, सत्य, अस्तेय, अपरिग्रह और ब्रह्मचर्य। जैन मत की मुख्य शिक्षा यह है कि प्रत्येक जीव यहाँ या इसके बाद अपने जीवन का निर्माता होता है। बौद्धों एवं हिन्दुओं की भांति जैनी भी विश्वास करते हैं कि शुभ आचरण जीवन में बेहतर अवस्थाओं की तरफ अग्रसर करते हैं और दुराचरण बदतर अवस्थाओं की तरफ अग्रसर करते हैं। जैन मत का मानना है कि त्रिरत्न (सम्यक दर्शन, सम्यक ज्ञान एवं सम्यक चरित्र) उचित कर्म के साक्षात्कार का मार्ग उपलब्ध करते हैं। चूंकि वह कर्म को पौदगलिक (पूरयन्ति गलन्ति च; जो बनता और बिगड़ता है) मानते हैं जो जीव को शरीर से बद्ध करता है अतः शुभ एवं अशुभ कर्म दोनों शरीर के पुनर्जन्म की तरफ ले जाते हैं। कोई भी कर्म मनुष्य को पुनर्जन्म से मुक्ति दिलाने में सहायता नहीं कर सकता है। जैन मत के अनुसार नैतिक जीवन वह है जो सभी सांसारिक चीजों के बन्धनों, जिनमे ऐन्द्रिक सुख भी सम्मिलित हैं, से मुक्त हो। यह व्यक्ति के स्वविवेक और आत्म नियंत्रण द्वारा आध्यात्मिक विकास को प्रोत्साहित करता है।

MADHYAM IAS
'way to achieve your dream'

2.3.3 बौद्ध

बौद्ध धर्म में नैतिक कर्म वह है जो दुःख से मुक्त हो क्योंकि यह जीवन की पवित्रता पर बहुत जोर देता है। बौद्ध धर्म में चार आर्यसत्य नैतिक चिंतन एवं कर्म के नियामक सिद्धान्त हैं, विशेषकर जैसा कि अष्टांगिक मार्ग में बताया गया है। आर्य सत्यों के पालन का उद्देश्य शुभ होना नहीं है वरन उस चरम लक्ष्य तक पहुंचना है जिसे बौद्ध बोधि कहते हैं। अष्टांगिक मार्ग उचित या स्वीकार्य व्यवहार हेतु नियमों का एक समूह है। आरंभिक बोध सभी सजीव प्राणियों के प्रति अहिंसा है। अष्टांगिक मार्ग के आठ अंगो को बहुधा तीन श्रेणियों में विभक्त किया जाता हैः प्रज्ञा, शील और समाधि। प्रज्ञा के अन्तर्गत दो अंग हैं– (1) सम्यक् दृष्टि, और (2) सम्यक् संकल्प । शील के अन्तर्गत तीन अंग हैं– (3) सम्यक् वचन(4) सम्यक कर्म (5) सम्यक् आजीविका। समाधि के अन्तर्गत हैं– (6) सम्यक् व्यायाम (7) सम्यक् स्मृति (8) सम्यक् समाधि। यह अष्टांगिक मार्ग आरम्भिक रूप से साधक को बुद्धत्व के चरम लक्ष्य की तरफ अग्रसर करते हैं,जो व्यवहार के भी निदेशक सिद्धान्त हैं। यह कभी भी अंधविश्वास की मांग

नहीं करता है, यह कभी भी आत्म–अन्वेषण की प्रक्रिया सिखाने के लिए प्रोत्साहित नहीं करता है। बौद्ध धर्म में नैतिक कर्म वह है जो सम्मान, उदारता, आत्म नियंत्रण, ईमानदारी और करुणा समाहित करता है।

2.3.4 इस्लाम

इस्लामिक नैतिक चिंतन का आरम्भ इस आधार वाक्य से होता है कि मानव जीवन में सर्वाधिक आधारभूत सम्बन्ध ईश्वर के साथ सम्बन्ध है। इस्लाम के लिए नैतिक कर्म वह है जो इन पांच श्रेणियों से व्युत्पन्न होता हैः विधि (बाध्यकारी), निषिद्ध, आवश्यकता से अधिक, अरुचिकर और उदासीन। मुस्लिम जीवन के सर्वाधिक महत्वपूर्ण आयामों में से एक है उच्च नैतिक मानक रखना। इस्लाम का दृष्टिकोण है कि ब्रह्माण्ड ईश्वर की रचना है और सब कुछ उसके अधीन कार्यरत है। सामान्य धारणाओं के विपरीत कि मनुष्य स्वाभाविक रूप से अशुभ होता है इस्लाम की मान्यता है कि मनुष्य नैतिक रूप से शुभ प्रकृति के साथ पैदा होता है जो आस्था एवं नैतिक मूल्यों पर प्रतिक्रिया देता है। कालक्रम में यह लालच और मनुष्य की कामनाओं पर नियंत्रण रखने की असमर्थता के कारण भ्रष्ट हो सकता है। इस्लाम के अनुसार मनुष्य के व्यवहार के नैतिक होने के लिए दो शर्तें हैं जिनका पूरा होना जरुरी हैः एक व्यक्ति का इरादा शुभ होना चाहिए और उसके कर्म ईश्वरीय निर्देशों के अनुरूप होने चाहिए। उदाहरण के लिए यदि नेक इरादे से बुरे कर्म किये गए हों और वह अन्ततोगत्वा वह शुभ परिणाम उत्पन्न करते है तब भी उसे नैतिक नहीं कहा जा सकता है। यदि प्रारंभ में इरादे नेक ना रहे हों और परिणाम आकस्मिक रूप से शुभ हों तो नैतिक व्यवहार का सवाल ही नहीं उठता है। नेक इरादे और नेक कर्म सहगामी होने चाहिए।

MAADHYAM IAS
'way to achieve your dream'

2.3.5 ईसाई

ईसाई धर्म के अनुसार जीवन ईश्वर की आराधना होना चाहिए जो ना केवल अनुष्ठानों एवं प्रार्थनाओं में दृष्टिगोचर हो वरन ईसाई अनुयायी के जीवन में भी परिलक्षित हो। एक नैतिक जीवनयापन के प्रयास में ईसाई, ईश्वर द्वारा समादेशित और बाइबिल में विहित आचरण के नियमों का पालन करने का प्रयास करते हैं। ईसाइयत के अनुसार नैतिकता ईश्वर से व्युत्पन्न है और चूंकि ईश्वर दयालु है अतः उसके निर्देश नैतिक रूप से शुभ हैं। ईश्वर वह मानक है जिसका हमें सन्दर्भ लेना है। नैतिक कर्मों का पालन अपने पापों का स्वीकरण है क्योंकि ऐसी स्वीकारोक्ति ईश्वर की इच्छा एवं प्रेम का स्वीकरण होती है। कर्म नैतिक रूप से शुभ होते हैं क्योंकि ईश्वर उनका निर्देश देता है और ईश्वर जिनका निर्देश देता है वह नैतिक रूप से शुभ है क्योंकि वह ईश्वर के निर्देश हैं।

बोध प्रश्न II

ध्यातव्यः क) उत्तर हेतु दिये गये रिक्त स्थान का प्रयोग कीजिए।

ख) अपने उत्तर का मिलान इकाई के अन्त में दिये गये उत्तर से कीजिए।

1. बौद्ध एवं जन धर्म के नैतिक कर्म सम्बन्धी दृष्टिकोण पर संक्षिप्त टिप्पणी कीजिए?

.....

.....

.....

.....

2.4 दार्शनिक मत

नैतिक कर्म के विषय में विभिन्न दार्शनिकों के द्वारा दिए गए विभिन्न दार्शनिक सिद्धान्तों से दार्शनिक मत व्याख्यित किये गए। यह इकाई यह समझाने का प्रयास करेगी कि विभिन्न नैतिक सिद्धान्तकार यह समझने का प्रयास करते हैं कि एक नैतिक कर्म क्या है? एक नैतिक सिद्धान्त का चरम लक्ष्य नैतिक या निर्नैतिक जैसे विभिन्न कर्मों से सम्बंधित निर्णय लेने हेतु दिशानिर्देश प्रदान करना होता है। नैतिक सिद्धान्तों को मोटे तौर पर तीन वर्गों में विभक्त किया गया हैः परिणाम सापेक्ष सिद्धान्त या परम उद्देश्यवाद, परिणाम निरपेक्ष सिद्धान्त या कर्तव्यशास्त्र तथा सद्‌गुण सिद्धान्त। इन सभी नैतिक सिद्धान्तों ने अपने नैतिक मानक भिन्न भिन्न दृष्टीकोण से प्रस्तुत किया है। इन सिद्धान्तों पर उनके कर्म सिद्धान्त के अनुसार अलग अलग विचार करते हैं।

MAADHYAM IAS
'way to achieve your dream'

2.4.1 परिणाम सापेक्ष सिद्धान्त : अंग्रेजी भाषा का शब्द टिलियोलोजी (teleology) ग्रीक शब्द टिलोस (telos) से व्युत्पन्न हुआ है जिसका अर्थ होता है लक्ष्य या प्रयोजन। टिलियोलोजी (teleology) लक्ष्य, साध्य एवं प्रयोजन का अध्ययन है। एक नैतिक सिद्धान्त यदि एक उचित कर्म को सुखद हालत लाने के पदों में परिभाषित या व्याख्यित करता है तब उसको परिणाम सापेक्ष सिद्धान्त माना जाता है। यह नैतिक शुभत्व को हमारे व्यवहारों के परिणामों में स्थापित करता है ना कि स्वयं व्यवहार में। दूसरे शब्दों में एक कर्म नैतिक रूप से उचित या शुभ होगा यदि उस कर्म के परिणाम प्रतिकूल होने के बजाय अनुकूल हों। परिणाम सापेक्षवादी सिद्धान्तकारों के अनुसार जो नैतिक रूप से उचित, शुभ या बाध्यकारी है वह शुभ परिणाम उत्पन्न करता है। कुछ भी स्वाभाविक रूप से शुभ या अशुभ नहीं है। परिणाम सापेक्षवादी सिद्धान्त सुख आनन्द तथा व्यक्ति के शुभ जैसे चिंतनशील कामनाओं पर आधारित हैं। व्यक्ति की यह विचारात्मक कामनाएं साध्य हैं और कर्मों को नैतिक पर्यालोचन का केन्द्रबिंदु होना चाहिए। कर्म का उचित या अनुचित होना उसके परिणामों के शुभत्व और अशुभत्व पर निर्भर करता है। परिणाम सापेक्षवादी नैतिक सिद्धान्त के अनुसार सभी बौद्धिक मानवीय कर्म इस अर्थ

में परिणामसापेक्ष होती हैं कि हम कुछ सुनिश्चित साध्यों को अर्जित करने हेतु साधनों के विषय में चिंतन करते हैं। उदाहरण के लिए झूठ बोलने अथवा किसी को जानबूझ कर हानि पहुँचाने का अनुचित होना इस बात पर निर्भर करता है कि यह कर्म शुभ परिणाम देते हैं अथवा अशुभ परिणाम। एक झूठ यदि कष्ट की रोकथाम करता है तब परिणामसापेक्षवादी सिद्धान्तकार हेतु वह उचित कर्म है। नैतिक व्यवहार लक्ष्योन्मुख होता है अतः परिणाम सापेक्षवादी दृष्टिकोण से मानव व्यवहार स्वयं में ना तो उचित होता है और ना ही अनुचित। हालाँकि परिणाम सापेक्षवादी दृष्टिकोण से अभिप्रेरणाओं का कर्म के उचित या अनुचित होने से कोई सरोकार नहीं है। जो मायने रखता है वह यह कि दिये गए सन्दर्भ में उन कर्मों का परिणाम क्या होगा। परिणाम सापेक्षवादी सिद्धान्तों को मानवीय व्यवहार के परिणामों को शुभ/अशुभ, उचित/अनुचित तथा नैतिक/अनैतिक के बुनियादी अवधारणाओं से संयोजित करना पड़ेगा। अधिकतर परिणाम सापेक्षवादी सिद्धान्तों की विशिष्टता यह है कि वह इन नैतिक प्रत्ययों को सुख या दुःख से तदात्मीकरण करते हैं। अतः नैतिक कर्म शुभ, उचित या नैतिक हैं जब वह सुखद परिणामों की तरफ अग्रसर करते हैं और नैतिक कर्म अशुभ, अनुचित या अनैतिक हैं जब वह दुखद परिणामों की तरफ अग्रसर करते हैं। तीन प्रकार के परिणाम सापेक्षवादी सिद्धान्त हैं –

2.4.1.1 नैतिक स्वार्थवाद (Ethical egoism)– इस सिद्धान्त के अनुसार एक कर्म नैतिक रूप से उपयुक्त है यदि उस कर्म के परिणाम नैतिक कर्ता मात्र हेतु हानिप्रद होने से कहीं अधिक लाभप्रद हैं। एपिक्युरियस, हाब्स, नीत्से एवं एडम स्मिथ इस सिद्धान्त के समर्थक हैं।

MAADHYAM IAS

2.4.1.2 नैतिक परार्थवाद (Ethical Altruism)– इस सिद्धान्त के अनुसार एक कर्म नैतिक रूप से उचित है यदि उस कर्म के परिणाम नैतिक कर्ता के अतिरिक्त अन्य सभी हेतु हानिप्रद होने से कहीं अधिक लाभप्रद हैं। नैतिक परार्थवाद एक व्यक्ति को अपनी व्यक्तिगत परियोजनाओं का त्याग करने एवं दूसरों को समर्पित करने के लिए हेतु प्रेरित करता है ताकि इसे एक कर्म के सर्वाधिक लाभप्रद कारण के रूप में संसाधित किया जा सके।

2.4.1.3 नैतिक उपयोगितावाद (Ethical Utilitarianism)– इस सिद्धान्त के अनुसार एक कर्म नैतिक रूप से उचित है यदि उस कर्म के परिणाम सभी हेतु हानिप्रद होने से कहीं अधिक लाभप्रद हैं। शास्त्रीय या नैतिक उपयोगितावाद उन प्रमुख सिद्धान्तों में से एक है जो परिणाम सापेक्षवादी नीतिशास्त्र के शीर्षक के अन्तर्गत लाये गए। इसे पुनः दो हिस्सों में विभाजित किया गया है– मूल्य सिद्धान्त तथा कर्म सिद्धान्त। प्रथमतः यह मूल्य सिद्धान्त के रूप में सुखवाद का समर्थन करता है। सुखवाद का अर्थ है कि सुख या आनन्द जीवन का चरम साध्य है। दूसरे यह कर्म सिद्धान्त के रूप में परिणाम सापेक्षवाद का समर्थन करता है। जेरमी बेन्थम और जे. एस. मिल इस सिद्धान्त के मुख्य प्रवर्तक हैं। उन्होंने अधिकतम व्यक्तियों के अधिकतम सुख के कर्म के शुभत्व या अशुभत्व का मानक होने का विचार विकसित किया। मिल ने उपयोगिता

सिद्धान्त प्रतिपादित किया जिसे वह आधारभूत नैतिक सिद्धान्त मानते हैं। उपयोगिता सिद्धान्त से उनका तात्पर्य उस सिद्धान्त से है जो प्रत्येक कर्म को अनुमोदित या अस्वीकृत करता है, उस प्रवृत्ति के अनुसार जो आकृष्ट पक्ष की खुशी को बढ़ाने या खारिज करने के लिए प्रकट होती है।

बोध–प्रश्न III

ध्यातव्यः क) उत्तर हेतु दिये गये रिक्त स्थान का प्रयोग कीजिए।

ख) अपने उत्तर का मिलान इकाई के अन्त में दिये गये उत्तर से कीजिए।

1. नैतिक कर्मों के विषय में परिणाम सापेक्ष सिद्धान्तों ने क्या युक्तियाँ दीं हैं?

.....

.....

.....

.....

2.4.2 परिणाम निरपेक्ष सिद्धान्त या कर्तव्यशास्त्र

परिणाम निरपेक्षवादियों के लिए एक नैतिक कर्म सारभूत रूप से नियमों के एक समुच्चय का पालन करने के बारे में है, जो कुछ कर्मों को निषिद्ध मानते हैं या कुछ कर्मों को आवश्यक मानते हैं। ये नियम प्रश्नाधीन नियम के विषय में उचित या अनुचित कार्यों को निर्दिष्ट करते हैं। डीआंटोलॉजी (deontology) शब्द ग्रीक शब्द डियोन (deon) और लोगोस (logos) से लिया गया है जिसका अर्थ है कर्तव्य और अध्ययन, इसलिए डीआंटोलॉजी कर्तव्य का अध्ययन है। डीआन्टोलॉजिकल सिद्धान्तकारों का मानना है कि नैतिक शुभत्व का आनंद, खुशी और परिणाम उत्पन्न करने से कोई लेना–देना नहीं है। किसी कर्मका अनुचित होना आंतरिक होता है या उस तरह के कर्मों में निहित होताहै जो परिणाम निरपेक्ष होते हैं। परिणाम निरपेक्षवादी उचित या अनुचित कर्मों को नैतिक नियमों की आज्ञाकारिता या अवज्ञा के साथ समीकृत करते हैं। उनका मानना है कि उचित या अनुचित कुछ प्रकार के कर्मों में अन्तर्भूत होते हैं। वे आचरण के निश्चित सिद्धांतों के साथ एक कर्म की शुद्धता और अशुद्धता की पहचान करते हैं। यह एक कर्म की नैतिकता का मूल्यांकन उस कर्म में अंतर्विष्ट आंतरिक मूल्य के आधार पर करता है। परिणाम निरपेक्षवादी नैतिकता के अनुसार कर्ता गलत विकल्प नहीं चुन सकते हैं और अगर करता भी है तो नियम बना कर ऐसे त्रुटिपूर्ण चयन न्यूनतम किये जा सकते हैं। परिणाम निरपेक्षवादी विचारकों हेतु नैतिक मानक से अनुरूपता चयन को उचित बनाती है। प्रत्येक नैतिक कर्ता द्वारा ऐसे नैतिक मानकों का अनुपालन होना चाहिए। इस अर्थ में परिणाम निरपेक्षवादी विचारकों हेतु उचित होना, शुभ होने से ज्येष्ठता रखता है। कुछ कर्म भले ही शुभ

परिणाम उत्पन्न ना करें तब भी उचित होते हैं क्योंकि ऐसे कर्मों का उचित होना कुछ मानकों पर निर्भर करता है। परिणाम निरपेक्षवादी सिद्धान्त अपनी परिभाषा के अनुसार कर्तव्य पर आधारित हैं। कहने का आशय है कि नैतिकता नैतिक अनुग्रहों एवं कर्तव्यों के पालन में निहित है। पुनः कर्तव्य निरपेक्ष नैतिक नियमों के पालन से जुड़े हुए हैं। मनुष्य को नियमों को कायम रखने के लिए कुछ सुनिश्चित कर्म करने पड़ते हैं। नैतिक नियमों का शुभत्व अथवा अशुभत्व परिणामों अथवा सुख से स्वतन्त्र रूप से निर्धारित होता है।

इमैन्युएल काण्ट का सिद्धान्त संभवतः परिणाम निरपेक्षवादी दृष्टिकोण का सबसे प्रसिद्ध उदाहरण है। काण्ट के लिए, एक कर्म का नैतिक मूल्य तब और केवल तब हो सकता है जब यह कर्तव्य भाव से किया जाता है। कर्तव्य भाव से कर्म करने की उनकी धारणा की मानक समझ यह है कि नैतिक नियम के अनुसार उचित कर्म करना। एक कर्म नैतिक रूप से अनुमन्य है या नहीं यह इस बात पर निर्भर करेगा कि यह नैतिक नियम अर्थात् निरपेक्ष आदेश के अनुरूप है या नहीं। निरपेक्ष आदेश शर्तरहित आदेश हैं। इसके तीन अलग–अलग निरूपण हैं:

(1) पहला सूत्रीकरण– केवल उस नियम के आधार पर आचरण करो, जिसको एक सार्वभौमिक नियम के रूप में स्वीकार करने का संकल्प कर सको।

(2) दूसरा सूत्रीकरण– इस प्रकार कार्य करो कि स्वयं तुममे और दूसरे व्यक्ति में निहित मानवता एक साधन मात्र न रह कर सदैव अपने आप में साध्य बनी रहे।

(3) तीसरा सूत्रीकरण– प्रत्येक बौद्धिक प्राणी को इस प्रकार कार्य करना चाहिए कि वह इस सूत्र के माध्यम से अपने आप को साध्यों के राज्य का नियम विधायक सदस्य समझ सके।

हमारे कर्तव्यों को इस निरपेक्ष आदेश के सम्मान के सन्दर्भ में समझा जाना चाहिए। कान्ट का मानना था कि आदेश को सापेक्ष नहीं होना चाहिए क्योंकि यह व्यक्ति के संकल्प से बाहर स्थित किसी साध्य से व्युत्पन्न नहीं हो सकता है। निरपेक्ष आदेश किन्ही बाह्य साध्यों के विषय में नहीं होता है वरन स्वयं संकल्प की दिशा में होता है। एक जिम्मेदार कर्ता बनने की लिए मनुष्य की पहुँच नैतिक सत्य तक होनी चाहिए। पुस्तक *ग्राउंडवर्क ऑफ मेटाफिजिक्स ऑफ मॉरल्स* में कान्ट का तर्क है कि नैतिक कर्म वह है जो नैतिक नियम के लिए किया जाता है। नैतिक नियम में कोई विशिष्ट सामग्री नहीं होती है अतः यह नहीं बता सकता है कि हमारे कर्मों में क्या अवयव निहित होने चाहिए वरन यह मात्र हमें निर्देशित कर सकता है। उदाहरण के लिए हम अपने वचन का पालन करने हेतु बाध्य हैं तब भी जब वचन पालन के परिणाम कम शुभ हों। काण्ट का मानना था कि नैतिकता प्रागानुभविक (अनुभव से पूर्व या अनुभव–निरपेक्ष) होती है और नैतिकता के अन्वेषण के लिए हमें व्यावहारिक बुद्धि का अवलोकन करना चाहिए। उनके अनुसार आरम्भ में विवेक ही हमें नैतिकता हेतु समर्थ बनाता

है। कोई भी आचरण जो बुद्धि पर आश्रित ना होकर भावनाओं पर अवलम्बित हो उसे सही अर्थों में सद्‌गुण युक्त नहीं कहा जा सकता है। काण्ट के नीति–दर्शन का आदेश है कि कर्म के समय सिर्फ उचित आचरण का क्रियान्वयन ही आवश्यक नहीं है वरन मनोभावों का उचित होना भी जरुरी है। उनके लिए एक कर्म नैतिक रूप से शुभ है यदि वह एक व्यक्तिनिष्ठ सिद्धान्त से प्रवृत्त हुआ हो जिसे एक सार्वभौमिक नियम बनाया जा सकता हो। मिल के विपरीत काण्ट का मानना था कि कुछ प्रकार के कर्म (हत्या, चोरी और झूठ बोलना) निषिद्ध हैं भले ही वह अन्य विकल्पों के मुकाबले अधिक सुख लाते हों।

बोध–प्रश्न IV

ध्यातव्यः क) उत्तर हेतु दिये गये रिक्त स्थान का प्रयोग कीजिए।

ख) अपने उत्तर का मिलान इकाई के अन्त में दिये गये उत्तर से कीजिए।

1. इमानुएल काण्ट के अनुसार, नैतिक कर्म क्या है?

.....

.....

.....

.....

MAADHYAM IAS

2.4.3 सद्‌गुण नीति–दर्शन

सद्‌गुण नैतिकतावादियों के लिए, कोई कर्म नैतिक या पुण्य है अगर यह व्यावहारिक विचार–विमर्श के माध्यम से किया जाता है ना कि अज्ञानतावश। नैतिकता व्यक्ति के कर्मों का प्रतिबिंब होने के बजायव्यक्ति की पहचान या चरित्र से उपजी है। अरस्तू सदाचार नैतिकता की प्रेरणा का मुख्य स्रोत रहा है। अपने *निकोमेकियन एथिक्स* में, उन्होंने आग्रह किया कि एक मानव जीवन का सर्वोत्कृष्ट आदर्श परम आनन्द (यूडाइमोनिया) है जो सद्‌गुणों या उत्कृ ष्टताओं के अभ्यास पर आधारित है। वह कहते हैं कि सद्‌गुणों के अभ्यास के अलावा जीवन में कुछ भी नहीं है। यह एक अवधारणा है जिसे स्टोइक ने भी प्रोत्साहित किया है। सदाचार नैतिकता कान्ट द्वारा निर्धारित नियमों के बजाय नैतिक व्यवहार के लिए एक नैतिक कर्ता के चरित्र को संचालक शक्ति के रूप में बताती है। सद्‌गुण नैतिकतावादी सद्‌गुणों के बारे में उचित कर्म को परिभाषित करते हैं, बजाय कर्म के विषय में सद्‌गुणों को परिभाषित करने के।

सद्‌गुण मूल्यांकन का प्राथमिक विधि है नाकि कर्म जो उचित या अनुचित के रूप में मूल्यांकित होता है। सद्‌गुण या पुण्य वह आदत या गुण है जो वाहक को उसके या उसके उद्देश्य के प्रत सफल होने की अनुमति देता है। उदाहरण के लिए, चाकू का सद्‌गुण तीक्ष्णता

है और रेस के घोड़े के लिए सद्गुण गति है। इस प्रकार, मानव के लिए सद्गुणों की पहचान करने के लिए, किसी व्यक्ति के पास मानव उद्देश्य क्या है, इसका लेखा–जोखा होना चाहिए। अरस्तू के अनुसार, सद्गुण को एक गुण के रूप में देखा जाता है जो यूडाइमोनिया या कल्याण की ओर जाता है। उन्होंने सदाचार को नैतिक और बौद्धिक सद्गुण के रूप में वर्गीकृत किया।

हालांकि, एक सद्गुण नैतिकतावादी किसी विशेष उदाहरण में झूठ बोलने पर कम ध्यान केंद्रित करता है और इसके बजाय व्यक्ति के चरित्र और नैतिक व्यवहार के बारे में– एक झूठ को बताने या झूठ को न बताने के निर्णय पर, विचार करता है। यह मानक कृत्यों के संग्रह को संदर्भित करता है जो करने के बजाय होने पर जोर देता है। एक सद्गुण नैतिकतावादी दार्शनिक उन सदगुणों की पहचान करेगा, वांछित विशेषताओं की पहचान, जो कि एक नैतिक या सदाचारी व्यक्ति धारण करता है।

इन सदगुणों को धारण करना एक व्यक्ति को नैतिक बनाता है और एक व्यक्ति की क्रियाएं उसकी आंतरिक नैतिकता का एक प्रतिबिंब मात्र है। एक कर्म को नैतिकता के सीमांकन के रूप में उपयोग नहीं किया जा सकता है क्योंकि एक पुण्य कर्म में कर्म के एक साधारण चयन से कहीं अधिक शामिल है। इसके बजाय, यह होने के तरीके के बारे में है जो पुण्य का प्रदर्शन करने वाले व्यक्ति के प्रत्येक स्थिति में लगातार एक निश्चित पुण्य चयन करने का कारण होगा। कर्ता सद्गुण का चयन करता है और पुण्य कार्य करने का चयन करता है लेकिन सद्गुपणी कार्य को चुनने में कर्ता व्यावहारिक ज्ञान, वह क्या कर रहा है और क्यों अच्छा है, का ज्ञान प्रदर्शित करता है। यह आपादित करता है कि सद्गुगणी कर्ता अज्ञानता से कार्य नहीं कर सकता है। अन्यथा, वह वास्तव में चयन नहीं होगा और व्यावहारिक ज्ञान का प्रदर्शन नहीं करेगा। उदाहरण के लिए, दो व्यक्ति हैं कार्ब और बार्ब– कार्ब एक स्वाभाविक रूप से अच्छा व्यक्ति है, जो दूसरों की मदद करने में आनंद लेता है– वह बहुत कुशाग्र नहीं है, लेकिन उसकी प्रकृति ऐसी है कि दयालुता के कारण वह लोगों की मदद करता है। उसकी इस दयालुता को उत्पन्न नहीं किया गया है; यह उसके व्यक्तित्व, उसके मूल स्वभाव का एक हिस्सा मात्र है। दूसरी ओर, बार्ब भी एक दयालु व्यक्ति है, लेकिन एक ऐसा व्यक्ति जिसने अच्छी आदतें विकसित करके ऐसा किया है। वह अच्छा है क्योंकि उसने ऐसा होना चुना हैय उसने तर्कसंगत रूप से और प्रभावी रूप से सद्गुण का समर्थन किया और सदाचारी होने के लिए एक मार्ग व्यवस्थित किया है। अच्छे माता–पिता के द्वारा अच्छे संस्कारों को पैदा करने में उसको मदद मिली हो सकती है, लेकिन फिर भी, बड़े होने पर यह चुनाव उसका था। वह तर्कसंगत रूप से अपने चरित्र पर विचार करने और क्या सुधार करना है और किसका समर्थन करना है के बारे में निर्णय लेने में सक्षम थी। अरस्तू के दृष्टिकोण के अनुसार, कार्ब एक ऐसा व्यक्ति है जिसके पास प्राकृतिक अच्छाई है लेकिन सच्चा सद्गुण नहीं है। दूसरी ओर, बार्ब के

पास एक वास्तविक सद्गुण है क्योंकि उसने सद्गु ण चुना हैः उसने व्यावहारिक ज्ञान प्रदर्शित किया। कार्ब ने ऐसा नहीं किया है और इसलिए उसका शुभत्व एक तरह से आकस्मिक है क्योंकि यह एक प्रकार की नासमझ प्रवृत्ति से संचालित हो रहा है। अरस्तू के लिए, एक गुणी व्यक्ति वह व्यक्ति है जो सामंजस्यपूर्ण ढंग से कार्य करता है– उसकी इच्छाओं और भावनाओं तथा जो वह उचित जानता है के बीच संघर्ष नहीं होता है ।

डेविड ह्यूम ने भी सदाचार नैतिकता के विषय पर लिखा। वह गुणों को मानसिक गुणों के रूप में देखते हैं, सुखदायक के रूप में देखते हैंः वे सुखद होते हैं क्योंकि वे कुछ मामलों में सामाजिक उपयोगिता के अनुकूल होते हैं। इस प्रकार, वह सद्गुण पर कोई भारी मनोवैज्ञानिक आवश्यकताएं नहीं आरोपित करते हैं। सद्गुणी होने का अर्थ है कि एक सुखदायक गुण से युक्त होना। सद्गुणी व्यक्ति को ज्ञान या बुद्धिमत्ता रखने की आवश्यकता नहीं है, विचार स्वयं बौद्धिक गुणों के रूप में गिना जाएगा क्योंकि वे सुखदायक और उपयोगी गुण हैं। ह्यूम का मत मानव प्रकृति के एक निश्चित दृष्टिकोण पर निर्भर करता है। हम ऐसे प्राणी हैं जो दूसरों के लिए सहानुभूति की भावनाओं से प्रवृत होतें हैं और इसके साथ–साथ खुद के लिए भी सरोकार रखते है। उनका मानना था कि लोग स्वार्थ से प्रेरित होते हैं लेकिन वे दूसरों के लिए प्यार और सहानुभूति से भी प्रेरित होते हैं। यह सहानुभूति नैतिकता का आधार बनती है। दूसरे का दर्द बुरा है, और जब मैं यह देखता हूं, तो मैं उस व्यक्ति के प्रति सहानुभूतिपूर्वक प्रतिक्रिया करता हूं। उदाहरण के लिए, मैं शायद किसी व्यक्ति के लिए दया महसूस करूंगा अगर मैं उसे प्रताड़ित होते हुए देखूंगा। उन्होंने कहा कि जब हम नैतिक मूल्यांकन करते हैं तो हम जिस चीज के बारे में सबसे ज्यादा चिंतित होते हैं, वह हैं अभिप्रेरणा। नैतिक मूल्यांकन का प्राथमिक फोकस आंतरिक अवस्थाएं हैं, सद्गुण युक्त कर्ता या सदचरित्रयुक्त कर्ता।

बोध–प्रश्न V

ध्यातव्यः क) उत्तर हेतु दिये गये रिक्त स्थान का प्रयोग कीजिए।

ख) अपने उत्तर का मिलान इकाई के अन्त में दिये गये उत्तर से कीजिए।

1. डेविड ह्यूम के अनुसार एक नैतिक कर्म की प्रकृति क्या है?

.....

.....

.....

.....

2.5 सारांश

इस प्रकार नैतिकता, मानव जीवन की एक संस्था है जिसके अन्तर्गत, 'कौन सा आचरण उचित है और कौन सा अनुचित?', 'कौन सा चरित्र शुभ है और कौन सा अशुभ है?' जैसे प्रश्न उठाए जाते हैं और उत्तर दिए जाते हैं। हालाँकि नैतिकता, नैतिक शुभ या नैतिक रूप से उचित होने का पर्यायवाची है। यह कहना कि कुछ कृत्य नैतिक है इस अर्थ में यह कहना नहीं है कि इसे उचित या अनुचित के रूप में आंका जा सकता है, वरन यह कहना है कि यह उचित है। नैतिकता का सार दूसरों के कल्याण को बढ़ावा देने में है, अथवा अहिंसा या इंद्रियों पर नियंत्रण करने आदि का अभ्यास करने में है। नैतिक होने का मतलब केवल उचित होना या शुभ आचरण और चरित्र होना नहीं है, बल्कि एक नैतिक एजेंट होना भी है जिसकी क्रिया या कार्यों को उचित या अनुचित के रूप में आंकलित किया जा सकता है। नैतिक कर्म की अवधारणा ऊपर वर्णित धार्मिक और दार्शनिक दोनों दृष्टिकोणों के अनुसार अलग–अलग है। कई विचारकों ने एक कर्म में निहित नैतिकता की विषय सामग्री को विभिन्न सूत्रीकरणों के माध्यम से समझाया है। उनके सूत्रीकरणों का प्रतिनिधित्व परिणाम सापेक्ष, परिणाम निरपेक्ष और सदाचार नैतिकता सिद्धांतों के रूप में किया गया है ।

2.6 कुंजी शब्द

नैतिकता (Morality) : नैतिकता उन रीति–रिवाजों और आदतों का एक समूह है जो हम कैसे सोचते हैं कि हमें कैसे रहना चाहिए या एक अच्छा मानव जीवन कैसा होना चाहिए को निर्मित करते हैं।

MAADHYAM IAS

कर्म (Action) : यह एक मानवीय एजेंट द्वारा एक जानबूझ कर की गई गतिविधि है।

इरादा/प्रयोजन (Intention) : यह इच्छा मात्र से कहीं अधिक है, एक विशिष्ट परिवर्तन जिसे हम लाने का लक्ष्य रखते हैं।

2.7 अन्य सहायक अध्ययन–सामग्री एवं सन्दर्भ

गर्ट , बर्नार्ड. "द डेफिनिशन ऑफ मॉरालिटी". प्रथम प्रकाशन बुद्धवार अप्रैल 17, 2002; संशोधित एवं परिवर्धित संस्करण सोमवार फरवरी 8, 2011.

टिम्मरमन्न, जेन्स. *काण्ट'स ग्राउंडवर्क ऑफ मॉरल्स.* कैम्ब्रिजः कैम्ब्रिज यूनिवर्सिटी प्रेस, 2007.

जैन, पी. *एथिक्स.* आगराः लक्ष्मी नारायण अग्रवाल पब्लिशर, 2015.

मैक्केंजी, जॉन एस. *ए मैन्युअल ऑफ एथिक्स.* देल्हीः सुरजीत पब्लिकेशन्स, 2016.

तिवारी, केदारनाथ. *क्लासिकल इंडियन एथिकल थॉटः ए फिलोसोफिकल स्टडी ऑफ हिन्दू ,जैन, एंड बुद्ध थॉट.* देल्हीः मोतीलाल बनारसीदास पब्लिशर्स प्राइवेट लिमिटेड, 2014.

हैरिसन, बर्नार्ड. "मॉरल जजमेंट, एक्शन एंड इमोशन". कैंब्रिज यूनिवर्सिटी प्रेस, 59/229: 295–312.

2.8 बोध–प्रश्नों के उत्तर

बोध–प्रश्न I

1. नैतिक कर्म एक ऐसा कर्म है जो किसी व्यक्ति के विमर्शी लक्ष्यों को पूरा करने के संकल्प या इरादे से की जाती है। जब किसी की तर्क क्षमता के माध्यम से कार्य किया जाता है तो वह कार्य नैतिक कर्म है। यह देखते हुए किमानव विवेकशील कर्ता हैं, इसलिए उनके कार्यों का हमेशा मूल्यांकन किया जाता है क्योंकि प्रत्येक मानवीय कर्म नैतिक नहीं हो सकता है। इसलिए, सभी मानवीय कार्यों का मूल्यांकन नैतिक रूप से शुभ या अशुभ और उचित या अनुचित के रूप में किया जाता है। जब शब्द 'नैतिक कर्म' का उपयोग किया जाता है, तो नैतिक शुभ के संबंध में प्रस्तुत किया जाता है यह इंगित करने के लिए कि हम चरित्र के शुभत्व का लक्ष्य रखते हैं ।

दो तत्व एक नैतिक कार्रवाई की प्रकृति की व्याख्या करते हैं। वे हैं– ज्ञान या स्वैच्छिकता और स्वतंत्रता।

MAADHYAM IAS

2. नैतिक कर्म नैतिक मूल्य वाला एक कर्म है जहाँ पर एक नैतिक चेतना एक नैतिक प्रतिक्रिया निर्मित करने में सहयोगी होती है। एक निर्नैतिक कर्म वह है जो नैतिक गुणवत्ता और नैतिक निर्णय के दायरे से रहित है। अनैतिक कार्य वह है जो किसी दिए गए समाज में स्वीकृत उचित और अनुचित के सिद्धांतों का उल्लंघन है।

बोध–प्रश्न II

1. नैतिक कर्म के सवाल पर बौद्ध और जैन दृष्टिकोण कमोबेश समान हैं। अष्टांगिक मार्ग और त्रिरत्न स्वीकार्य या उचित व्यवहार के लिए दिशानिर्देशों के समुच्चय हैं। कर्म अच्छे या बुरे बाह्य परिणामों के सन्दर्भ में नहीं हैं जिन्हें वह उत्पन्न करते हैं, बल्कि वे आंतरिक उद्देश्य जो उन्हें उद्यत करते हैं वही कर्म को शुभ या अशुभ बनाते है। उनके अनुसार एकमात्र परिणाम कर्म की उचितता या अनुचितता का निर्धारण नहीं करता है।

बोध–प्रश्न III

1. परिणाम सापेक्षवादी सिद्धान्त के अनुसार, नैतिक रूप से सही, गलत या अनिवार्य वह है जो अच्छा परिणाम देता है। कुछ भी आंतरिक रूप से अच्छा या बुरा नहीं है। नैतिक व्यवहार एक लक्ष्य–निर्देशित व्यवहार है, इसलिए परिणाम सापेक्षवादी दृष्टिकोण से, मानव व्यवहार न तो अपने आप में सही है और न ही गलत है। हालांकि, परिणाम सापेक्षवादी दृष्टिकोण से इरादों का वास्तव में कर्मों की उचितता या अनुचितता से कोई लेना–देना नहीं है। परिणाम सापेक्षवादी सिद्धान्त के अन्तर्गत तीन अलग–अलग सिद्धान्त हैं– नैतिक स्वार्थवाद, नैतिक परार्थवाद, और नैतिक उपयोगितावाद।

बोध–प्रश्न IV

1. इम्मेनुएल काण्ट का मानना है किनैतिक शुभत्व का आनंद, खुशी और परिणाम उत्पन्न करने से कोई लेना–देना नहीं है। किसी कर्म का अनुचित होना आंतरिक होता है या उस तरह के कर्मों में निहित होता है जो परिणाम निरपेक्ष होते हैं काण्ट के लिए, एक कर्म का नैतिक मूल्य तब और केवल तब हो सकता है जब यह कर्तव्य भाव से किया जाता है। कर्तव्य भाव से कर्म करने की उनकी धारणा की मानक समझ यह है कि नैतिक नियम के अनुसार उचित कर्म करना। एक कर्म नैतिक रूप से अनुमन्य है या नहीं यह इस बात पर निर्भर करेगा कि यह नैतिक नियम अर्थात् निरपेक्ष आदेश के अनुरूप है या नहीं।

बोध–प्रश्न V

1. डेविड ह्यूम के अनुसार नैतिक मूल्यांकन का प्राथमिक केन्द्र बिंदु आंतरिक अवस्थाएं हैं, जो एजेंट के सदाचार या अच्छे चरित्र लक्षण के साथ जुड़ा हुआ है। उनका मानना था कि नैतिकता का आधार यह है कि लोग आत्म–रुचि से प्रेरित होते हैं लेकिन वे दूसरों के प्रति प्रेम और सहानुभूति से भी प्रेरित होते हैं।

MADHYAM IAS

इकाई 3 सद्‌गुण और अवगुण*

रूपरेखा

3.0 उद्देश्य

3.1 परिचय

3.2 सद्‌गुण का अर्थ

3.3 सुकरातः सद्‌गुण ज्ञान है

3.4 प्लेटो के चार प्रधान सद्‌गुण

3.5 अरस्तू की सद्‌गुण की अवधारणा

3.6 हिन्दू धर्म में सद्‌गुण

3.7 इस्लाम धर्म में सद्‌गुण

3.8 अवगुण

3.9 सारांश

3.10 कुंजी शब्द

3.11 अन्य सहायक अध्ययन–सामग्री एवं सन्दर्भ

3.12 बोध–प्रश्नों के उत्तर

MAADHYAM IAS
'way to achieve your dream'

3.0 उद्देश्य

इस इकाई में हम नीतिशास्त्रीय दृष्टिकोण से सद्‌गुण और अवगुण का अध्ययन करेंगे। यह इकाई आपको निम्न बातें समझाएगीः

- सद्‌गुण का अर्थ,

* डॉ. विल्फ्रेड डी'सूजा, पुष्पाश्रम महाविद्यालय, मैसूर, अनुवादक–

- ग्रीक भाषा के तीन प्रमुख दार्शनिकों सुकरात, प्लेटो अरस्तू के अनुसार सद्‌गुण की अवधारणा,
- हिन्दू और इस्लाम धर्मों में निहित सद्‌गुण की अवधारणा,
- ईसाई धर्म में वर्णित अवगुण या पाप की अवधारणा।

3.1 परिचय

मनुष्य व्यक्ति और समूह के रूप में प्रसन्नता की खोज करता है। ग्रीक दार्शनिकों ने प्रसन्नता की खोज के साधन के रूप में सद्‌गुणों के विकास पर जोर दिया है। भारतीय दर्शनों में भी मानव–कल्याण में योगदान देने वाले गुणों पर चर्चा है, परन्तु प्रायः भारतीय दर्शन में सद्‌गुण की अवधारणा मानव प्रसन्नता पर केन्द्रित होने के स्थान पर मोक्ष एवं पुनर्जन्म से गुंथा हुआ है। ग्रीक दर्शन और ईसाई मत की साक्षात्कार (इलहाम) की अवधारणा के सम्मिलन के पश्चात् बहुत कुछ ऐसा ही पश्चिमी दर्शन में भी हुआ। किन्तु इस इकाई में हम सद्‌गुण के धार्मिक और धर्मशास्त्रीय विचारों के बारे में नहीं पढ़ेंगे बल्कि केवल उन तत्वों का अध्ययन करेंगे जो कमोबेश सार्वभौम मानवीय बुद्धि की सामान्य झलक देते हैं।

3.2 सद्‌गुण का अर्थ

ग्रीक भाषा में सद्‌गुण (virtue) के लिए आरते (arete; हिन्दी उत्कृष्टता या उत्कर्ष) शब्द का प्रयोग होता है। आरते किसी भी प्रकार की श्रेष्ठता के लिए प्रयुक्त होता है। किंतु श्रेष्ठता व्यक्ति के सन्दर्भ में प्रयोग की जाती है। इस प्रकार सद्‌गुण को मानवीय श्रेष्ठता के रूप की तरह वर्णित किया जा सकता है। लैटिन में वर्च्यु (virtue) को वर्च्युअस (virtue) कहते हैं; जिसका अर्थ है नैतिक श्रेष्ठता। सद्‌गुण शुभ होने की चारित्रिक विशेषता या गुण है। वैयक्तिक सद्‌गुण वे चारित्रिक गुण हैं जो वैयक्तिक और सामाजिक कल्याण को बढ़ावा देते हैं, इसलिए पारिभाषिक रूप से शुभ होते हैं। सद्‌गुण (virtue) का विपरीतार्थक अवगुण अथवा दुर्गुण (vice) है। नीतिशास्त्र में सद्‌गुण का प्रयोग दो भिन्न अर्थों में होता है (अ) सद्‌गुरण चरित्र का गुण है– किसी विशेष स्थिति में जो उचित है उसे करना, अथवा सार्वभौमिक कर्तव्यों में से किसी का पालन करने का संस्कार, (ब) सद्‌गुण व्यवहार करने की आदत भी है, जो चरित्र के किसी गुण या संस्कार से सम्बन्धित (संवादित) हम किसी व्यक्ति की ईमानदारी या सभी से समान रूप से पेश आने की ईमानदारी को सद्‌गुण कह सकते हैं।

सद्‌गुण को विस्तृत मूल्य क्षेत्र में रखा जा सकता है। प्रत्येक व्यक्ति की अपनी मूल्य व्यवस्था होती है जो उसके विश्वास–तंत्र, विचारों अथवा मत निर्माण में योगदान देती है। मूल्य के पालन में एकता इसकी निरंतरता को सुनिश्चित करती है। और यह निरंतरता मूल्य को

विश्वास, मत एवं विचारों से अलग करती है। इस सन्दर्भ में (जैसे–सत्य अथवा समानता अथवा धर्म) मूल्य ही केन्द्र बिंदु है जहाँ से हम कार्य करते हें या प्रतिक्रिया देते हैं। समाज में मूल्य होते हैं जिनका पालन उस संस्कृति में प्रत्येक व्यक्ति करता है। आमतौर पर व्यक्ति की मूल्य व्यवस्था समाज की मूल्य व्यवस्था ही होती है, लेकिन पूर्ण रूप से नहीं। व्यक्तिगत सद्गुणों को मूल्यों की चार श्रेणियों में विभाजित किया जा सकता है– नीतिशास्त्र (सद्गुण–दुर्गुण, अच्छा–बुरा, अनैतिक–निर्नैतिक, सही–गलत, अनुमोदित–अननुमोदित), सौन्दर्यशास्त्र (सुंदर, कुरूप, असंतुलित, आकर्षक), सैद्धान्तिक (राजनीतिक, आदर्श, धार्मिक अथवा सामाजिक विश्वास एवं मूल्य) और सहजातध्जन्मजात मूल्य (जन्मजात मूल्य जैसे कि संतानोत्पत्ति और जीवन–संरक्षण)।

लायर्ड ने सद्गुणों को तीन वर्गों में विभक्त किया हैः

(क) वह सद्गुण जिसे 'उचित गुण कहते हैं'। यह सद्गुण किसी विशेष प्रकार के कर्तव्य के निष्पादन की आदत और उस चरित्र को निर्देशित करता है जो ऐसी कर्तव्यपरक क्रिया को सम्पन्न करने में सहायक होता है। इस प्रकार के सद्गुणी आचरण और उचित आचरण के मध्य अन्तर केवल यह है कि 'सद्गुणी आचरण' पद जो उचित है उसके आदतन निष्पादन पर बल देता है।

(ख) 'अपेक्षित गुण' सम्बन्धी सद्गुण। सद्गुणी चरित्र के लिये ये अनिवार्य हैं किन्तु ये दुर्गुण चरित्र में भी पाये जाते हैं, और वास्तव में बुरे व्यक्ति में दुराचरण को बढ़ा सकते हैं। ऐसे सद्गुण बुद्धिमता और धीरज हैं। धैर्यवान खलनायक धैर्यहीन खलनायक की अपेक्षा कहीं अधिक घातक होता है।

(ग) 'उदार गुण' सम्बन्धी सद्गुण। ये प्रमुख रूप से भावनात्मक (सम्वेगात्मक) प्रकार के होते हैं परन्तु ऐसे कर्मों में, जो अन्यथा उचित है, कुछ ऐसे तत्वों को जोड़ते हैं जो दृढ़ रूप से परिभाष्य नहीं हैं परन्तु जो सौन्दर्य अथवा नैतिक आन्तरिक मूल्य की प्रकृति का है। कभी–कभी ये नैतिक रूप से अनुचित आचरण को भी श्रेष्ठता का विचित्र गुण प्रदान कर देते हैं। इस सद्गुण को हम रोमांचकारी साहसिक क्रियाओं में भी पाते हैं। ये कभी–कभी लुटेरों तथा कभी–कभी निष्ठा के अयोग्य व्यक्तियों के प्रति प्रदर्शित निष्ठा में भी होते हैं। इस प्रकार के सद्गुणों में कुछ आन्तरिक मूल्य का होना प्रतीत होता हैय कम से कम इसका संकेत उस मूल्य के द्वारा किया जाता है जिसमें हम ऐसे सद्गुणों का आरोपण ऐसे व्यक्तियों के आचरण में करते हैं जहाँ उनके कर्मों में इन सद्णों के उपस्थित होने से भी कोई अच्छा निष्कर्ष प्राप्त नहीं होता है।

इनमें से नैतिक जीवन में सबसे महत्वपूर्ण सद्गुण 'उचित गुण' है। अपेक्षित सद्गुण स्पष्टतः उचित सद्गुण के आधीन रहता है, क्योंकि वे तभी मूल्यवान होते हैं जब वे ऐसे सद्गुण के

MADHYAM IAS
'way to achieve your dream'

साथ रहते हैं। उदारता सम्बन्धी सद्गुण अन्य दो सद्गुणों की अपेक्षा कहीं अधिक प्राकृतिक प्रतिभा पर निर्भर होते हैं और केवल कर्तव्यपरायणता से कठिनाईपूर्वक प्राप्त होते हैं। इस प्रकार के सद्गुण का आग्रह नैतिकता की अपेक्षा कलात्मकता अधिक लिये होता है, किन्तु ये भी शुभत्व को एक रंगत और रोमांचक वातावरण प्रदान करते हैं, जिसका अभाव कभी–कभी उचित गुण सम्बन्धी सद्गुण में होता है।

3.3 सुकरातः सद्गुण ज्ञान है

सुकरात के दर्शन का मुख्य सार सद्गुण है सुकरात के अनुसार, सद्गुण मनुष्य का गहनतम और आधारभूत गुण है। यह सद्गुण ज्ञान है। "यदि यदि ज्ञान सभी अच्छाईयों को समाहित करता है तो हम अपने इस संशय में सही हैं कि सद्गुण ज्ञान है।" यदि सद्गुण ज्ञान है तब इसे जाना जा सकता है और सतत सिखाया भी जा सकता है। यही ''स्वयं को जानना'' आदेश का अर्थ है। स्वयं को जानो का तात्पर्य अपने आन्तरिक आत्म को प्रकाशित करना है। आत्मज्ञान से मनुष्य स्वयं को आत्मनियंत्रित कर सकता है, जिसमें व्यक्ति स्वयं का स्वामी हो जाता है।

सुकरात के अनुसार, सद्गुण सर्वोच्च उद्देश्य और महानतम शुभ (अच्छाई) है, जिसे प्रत्येक व्यक्ति को अपने जीवन में धारण करना चाहिए। वे जोर देते हैं कि यदि यह सर्वोच्च उद्देश्य और महानतम शुभ है, तो इसमें सार्वभौमिक संगतता होनी चाहिए और यह सभी के लिए समान होना चाहिए। अब, जो भी सार्वभौमिक संगतता लिये है और सभी के लिए समान है, वह वह ज्ञान है जिसे सभी में सामान्य तर्कबुद्धि के प्रयोग के द्वारा अवधारणाओं के माध्यम से जाना जा सकता है। 'सद्गुण व ज्ञान के मध्य का सम्बन्ध अपृथक्करणीय है। क्योंकि सुकरात सोचते हैं कि शुभ के आमतौर पर माने जाने वाले विभिन्न रूप जैसे स्वास्थ्य, धन, सौंदर्य, साहस, सहनशीलता इत्यादि केवल तभी शुभ हैं यदि वे प्रज्ञा द्वारा निर्देशित हैं। यदि ये बुरे विवेक द्वारा निर्देशित हों तो यह बुराई का रूप धारण कर लेते हैं।'

सुकरात के अनुसार नीतिशास्त्र का दूसरा आयाम भी है। यह शुभ के प्रत्यय के ज्ञान के ग्रहण मात्र से नहीं रुकता है। शुभ के प्रत्यय का ज्ञान मनुष्य के अन्य दूसरे सम्प्रत्ययों को नियंत्रित करता है और अंततः समग्र मनुष्य को, उसकी इच्छाशक्ति और भावनाओं के साथ, अनिवार्यतः अच्छे कर्मों की ओर ले जाता है। इसलिए, नैतिक ज्ञान आत्मा को सुसंस्कृत करता है जिससे आत्मा अपनी विशुद्ध गरिमा को फिर से प्राप्त कर लेती है। इसी आधार पर सुकरात यह मानते हैं कि ''कोई भी व्यक्ति जानबूझकर गलत कार्य नहीं करता है'' और ''ज्ञान ही सद्गुण है''।

MAADHYAM IAS

सुकरात कहते हैं कि सद्‌गुण व शुभत्व एक हैं यद्यपि उनका अभ्यास हम विभिन्न रूपों में करते हैं। प्लेटो के प्रोटागोरस में सुकरात कहते हैं कि यद्यपि विवेक या प्रज्ञा, सहनशीलता, साहस, न्याय और पवित्रता ये सभी सद्‌गुण के प्रधान रूप हैं, परन्तु इन सबमें विराजित सत्य एक ही है। तथापि एक दूसरे स्थानय प्लेटो की *मीनो* में, हम सुकरात को एक ऐसे सद्‌गुण की खोज करते हुए पाते हैं जिसमें अन्य सभी सद्‌गुण व्याप्त हों।

सुकरात इसके लिये स्वस्थ शरीर का उदाहरण लेते हुए इसकी व्याख्या करते हैं। उनके अनुसार, शारीरिक स्वास्थ्य से ही अन्य शारीरिक श्रेष्ठताएं बनी होती हैं। इसी तरह से अन्य सभी सद्‌गुण आत्मा के स्वास्थ्य पर निर्भर करते हैं। आत्मा के स्वास्थ्य का क्या अर्थ है? आत्मा के कई कार्य हैं। आत्मा का स्वास्थ्य इन विभिन्न कार्यों की व्यवस्था से विकसित होता है। प्लेटो के *गॉर्जियस* में सुकरात कहते हैं कि आत्मा का कार्य तर्क, सहनशीलता व इच्छा है। तर्कशक्ति के कार्य का उद्देश्य विवेक या प्रज्ञा, सहनशीलता के कार्य का उद्देश्य साहस, और इच्छा का के कार्य उद्देश्य संयम को प्राप्त करना है। इन कार्यों का एक–दूसरे से व्यवस्थित सम्बन्ध आत्मा के स्वास्थ्य का आधार है। इन कार्यों की क्रमबद्ध व्यवस्था निम्नवत् है; विवेक आदेश देता है और सहनशीलता आदेशों के निष्पादन में सहायता करता है जबकि इच्छा इन आदेशों के वास्तविक रूप में फलीभूत होने के लिए भौतिक आधार प्रदान करती है। प्रत्येक व्यक्ति का उद्देश्य सद्‌गुण के माध्यम से प्रसन्नता को प्राप्त करना है। सद्‌गुणों की एकता या एकत्व का उद्देश्य व्यक्ति का परम आनंद है। ''तर्क बुद्धि के निर्देशन में सद्‌भावपूर्ण गतिविधियों की सक्रियता ही आनंद प्रदान करती है।'' इस प्रकार, सुकरात की सद्‌गुण की एकात्म अवधारणा का अर्थ है; ''अच्छे व्यक्ति की आत्मा उसके सभी कार्यों की जैविक एकता है।''

MADHYAM IAS
'way to achieve your dream'

सुकरात की सद्‌गुण की एकात्म की अवधारणा अन्ततः यह प्रतिपादित करती है कि शुभ एक है, जो मानव की सभी आन्तरिक रूप से अच्छी नैतिक क्रियाओं के मूल में है। सुकरात प्लेटो की *रिपब्लिक* में कहते हैं कि ज्ञेय वस्तुओं के संसार में अन्तिम और बमुश्किल ज्ञेय वस्तु शुभ का प्रत्यय है, और यही वास्तव में जो भी उचित और सुन्दर है, उसका कारण है, दृश्य जगत में प्रकाश की जननी, और प्रकाश का रचयिता और बोधगम्य जगत में सत्य और तर्कबुद्धि का स्वयं स्रोत है, और व्यक्तिगत या सामाजिक जीवन में बुद्धिमत्तापूर्ण ढंग से आचरणकर्ता की दृष्टि है।

बोध–प्रश्न I

ध्यातव्यः क) उत्तर हेतु दिये गये रिक्त स्थान का उपयोग कीजिए।

ख) अपने उत्तर का मिलान इकाई के अन्त में दिये गये उत्तर से कीजिए।

1. सद्‌गुण का तात्पर्य क्या है?

.....

.....

.....

.....

2. सुकरात की उक्ति ''सद्गुण ही ज्ञान है?'' की व्याख्या कीजिए।

.....

.....

.....

.....

3.4 प्लेटो के चार प्रधान सद्गुण

प्लेटो ने जिन चार सद्गुणों का वर्णन *रिपब्लिक* में किया है उन्हें बाद में प्रधान सद्गुण कहा गया। अंग्रेजी शब्द कार्डिनल (cordinal) लैटिन भाषा के कार्डो (cardo) से बना है जिसका अर्थ है; चौखट। प्रधान सद्गुण वे सद्गुण हैं जो नैतिक जीवन को वैसे ही चारों ओर से बांधे रहते हैं जैसे चौखट दरवाजे को। ये चार प्रधान या मुख्य सद्गुण निम्नलिखित हैं–

MAADHYAM IAS
'way to achieve your dream'

(1) विवेक (आंकलनात्मक) – सम्पूर्ण को देखना

(2) साहस (आत्मा या स्पिरिट) – सभी का संरक्षण

(3) सहनशीलता या संयम (सम्वेदना या एपिटाइट) – सभी की सेवा

(4) न्याय (आधारभूत/संरक्षण सद्गुण) – ''स्वयं में कार्यरत रहना''। उदाहरण के लिए –"आनी आत्मा की ओर झुकना"/''स्वयं को जाना''।

प्लेटो यह बताते हैं कि व्यक्ति इन सद्गुणों को कैसे प्राप्त कर सकता है: विवेक बुद्धि के अभ्यास से आता है; साहस भावनाओं पर नियन्त्रण से आता है; सहनशीलता (या संयम) इच्छाओं पर बुद्धि की विजय से आती है और इन सबसे न्याय उत्पन्न होता है। न्याय ऐसी अवस्था है जिसमें मन के सभी तत्व एक दूसरे के साथ सहअस्तित्व में होते हैं। प्लेटो ने न्याय को मूल एवं संरक्षण सद्गुण इसलिए माना है क्योंकि जब कोई एक बार न्याय को समझ लेता है तब वह तीनों अन्य सद्गुणों को प्राप्त कर सकता है। और जब व्यक्ति चारों सद्गुणों को धारण करता है, तब वह न्याय ही है जो सब सद्गुणों को एक साथ रखता है।

3.5 अरस्तू की सद्गुण की अवधारणा

अरस्तू ने कहा कि नैतिक उद्देश्य परम–आनन्द (या परम सुख) (Eudaimonia) है, जिसे प्रसन्नता कहा जा सकता है, और यह व्यक्ति की आत्मा के सद्गुणों के अनुकूल आचरण में निहित है। अरस्तू की अपनी पदावली में 'परम आनन्द' उद्देश्य अथवा वह तत्व है जिसे बाद में नैतिक जीवन का अन्तिम कारण कहा गया, जबकि सद्गुण वह है जिसे बाद में 'आकार या रूप' अथवा नैतिक जीवन का आकारिक कारण कहा गया। 'आकार या रूप' चित्रकार के मन में विराजित चित्र की अवधारणा या सम्प्रत्यय के अनुरूप है, जो कृत्य को निर्देशित और सीमित करती है, और रचना को आकार प्रदान करती है। अरस्तू ने सद्गुण को चुनाव करने की आदत कहा है, जिसकी विशेषताएं साधन के अवलोकन अथवा सहनशीलता में निहित होती हैं, जो जैसी कि बुद्धि द्वारा निर्धारित की जाती हैं या वैसी जैसा व्यवहार–कुशल व्यक्ति निर्धारित करता है।

अरस्तू ने सद्गुण को कार्यों की आदत के रूप में प्राथमिक रूप से तथा चरित्र की विशेषता के रूप में द्वितीयक रूप में देखा है। सद्गुण केवल आदत नहीं है, बल्कि चुनाव की आदत है। अरस्तू ने चुनाव को बुद्धि द्वारा जांच पड़ताल के बाद हमारी अपनी सामर्थ्य के अनुसार वस्तुओं की सोद्देश्य इच्छा के रूप में परिभाषित किया है। कुछ अर्थों में चुनाव वस्तुओं के प्रति व्यवहार से स्वतंत्र होता है। बार–बार ऐसे चुनावों का उद्देश्यपूर्ण दुहराव नैतिक आचरण की आदत बना जाता है, जिसे हम सद्गुण कहते हैं। उदाहरण के लिए, कष्ट सहते हुए कर्म करते चले जाना जब आदत बन जाता है, तो यह साहस हो जाता है। कोई अच्छा कार्य करना संयोग या केवल आवेग हो सकता है, इसका बार–बार आदतन दुहराव सद्गुण बन जाता है।

अरस्तू की परिभाषा का सबसे चर्चित बिन्दु उनका मध्यम मार्ग है। सद्गुण को दो अवगुणों के मध्य को माना गया हैय उदाहरण के लिए, साहस बिना सोचे–समझे किये गये कार्य और कायरता के मध्य अवस्थित है। और उदारता अतिव्ययता एवं कंजूसी के मध्य की स्थिति है। चरम पर स्थित अवगुणों के सापेक्ष मध्यम बिन्दु का स्थान प्रत्येक व्यक्ति की अपनी–अपनी परिस्थितियों पर निर्भर करता है। एक राजनेता की तुलना में एक सैनिक का साहस बिना सोचे–समझे करने के प्रवृत्ति के अधिक निकट होगा, सैनिक के सन्दर्भ में जोखिम लेना उसका कार्य से जुड़ा है, जबकि यह जोखिम लेना राजनेता के सन्दर्भ में आपराधिक कृत्य होगा। यह विचार निश्चित रूप से कला में अनुपात और सामंजस्य पर ग्रीक के प्रभाव से सहमति रखता है, जैसाकि इस कहावत 'अति नहीं' या 'सद्गुण मध्य में अवस्थित हैं' से अभिव्यक्त होता है।

बोध–प्रश्न II

ध्यातव्यः क) उत्तर हेतु दिये गये रिक्त स्थान का उपयोग कीजिए।

ख) अपने उत्तर का मिलान इकाई के अन्त में दिये गये उत्तर से कीजिए।

1. प्लेटो के अनुसार चार प्रधान सद्गुणों की व्याख्या कीजिए।

.....

.....

.....

.....

2. अरस्तू की सद्गुण की अवधारणा की व्याख्या कीजिए।

.....

.....

.....

.....

3.6 हिन्दू धर्म में सद्गुण

हिन्दु धर्म में सद्गुण केन्द्रीय भूमिका में है, जिसका धर्म का अनुसरण करने वाले प्रत्येक व्यक्ति को इसका पालन करने के लिए कहा गया है। ये मनुष्य के भेदक गुण हैं जो व्यक्ति को शुभ वातावरण में रहने देते हैं। वेदों एवं धर्मशास्त्रों (जैसे, *सांख्यकारिका, चरकसंहिता*) में तीन भौतिक गुणों का वर्णन किया गया हैः सत्त्व (शुभ, रचना, शांति एवं बुद्धि), रजस (कामना, गतिशीलता, ऊर्जा एवं सक्रियता) तथा तमस (अज्ञानता, अनदेखी, जड़त्व एवं विध्वंस)। सभी व्यक्तियों में इन तीनों का मिश्रण होता है लेकिन किसी में किसी तत्व की प्रधानता होती है तो दूसरे व्यक्ति में अन्य तत्व की। जिसमें सत्त्वगुण प्रधान हैं उसके स्वभाव में भी इसकी प्रधानता होगी, जिसकी प्राप्ति व्यक्ति धर्म के गुणों के पालन से होती है।

सत्व गुण की निम्नलिखित अवस्थाएं हैंः **परार्थवादः** संपूर्ण मानवता की निःस्वार्थ सेवा; **संयम एवं संतुलनः** सभी मामलों में संयमित एवं संतुलित होना। यौन–सम्बन्ध, भोजन एवं अन्य आनंददायी चीजें संतुलित मात्रा में होनी चाहिए। यह सम्प्रदाय और विश्वास पर निर्भर करता है, कुछ लोग विश्वास करते हैं कि इसका आशय है ब्रह्मचर्य, जबकि कुछ संतुलन के स्वर्ण मार्ग में विश्वास करते हैंः जैसे–मानवीय कामनाओं का न तो बलपूर्वक दमन किया जाय और न मानवीय सुख का परित्याग, लेकिन न ही उसमें पूरी तरह से आसक्त हुआ जाय और न संतुलन का परित्याग। **ईमानदारीः** व्यक्ति का अपने प्रति, परिवार के प्रति, समाज के प्रति एवं

मानवता के प्रति ईमानदार होना आवश्यक है। **निर्मलता:** बाहरी निर्मलता स्वास्थ्य एवं सफाई के लिए तथा आंतरिक स्वच्छता ईश्वर के प्रति समर्पण, निःस्वार्थता, अहिंसा एवं अन्य दूसरे गुणों के अभ्यास से आती है, जिसे नशे से विरत होकर और पृथ्वी के संरक्षण और सम्मान से बनाये रखा जाता है। **सार्वभौमिकता:** प्रत्येक व्यक्ति, प्रत्येक वस्तु और विश्व की गति के प्रति सहनशीलता और सम्मान प्रदर्शित करना। **शांति:** अपने एवं अपने आस–पास के व्यक्तियों के लाभ के लिए व्यक्ति का शांतिपूर्ण व्यवहार करना। **अहिंसा:** इसका अर्थ है हत्या न करना अथवा किसी प्राणी के प्रति किसी भी ढंग से हिंसक न होना। इसीलिए हिंसा धर्म का पालन करने वाले शाकाहारी होते हैं, क्योंकि स्वास्थ्यपूर्ण भोजन के लिए कम हिंसक साधन उपलब्ध होने पर भोजन के लिए पशुओं की हत्या को वे हिंसक मानते हैं। **बुजुर्गों एवं गुरुओं के प्रति सम्मान:** बुद्धिमान एवं निःस्वार्थी लोगों के प्रति सम्मान एक महत्पूर्ण सद्गुण है। गुरु अथवा आध्यात्मिक गुरु अनेक वेद आधारित आध्यात्मिकताओं में सर्वश्रेष्ठ सिद्धांतों में से एक है, और ईश्वर के समान माना जाता है।

3.7 इस्लाम धर्म में सद्गुण

मुस्लिम परंपरा के अनुसार कुरान ईश्वर का वचन है। यह सभी सद्गुणों का महान भंडार है। पैगंबर ने हदीस के माध्यम से मानवीय सद्गुणों का वर्णन किया है। इस्लाम का अर्थ है 'स्वीकृति'। यह ईश्वर की इच्छा के प्रति समर्पण है, यह वस्तुओं जैसी हैं उसका स्वीकरण है। दया और करुणा ईश्वर के सबसे प्राथमिक गुण हैं, धार्मिक भाषा में यही रहमान एवं रहीम हैं। कुरान के सभी 114 अध्याय, एक अपवाद को छोड़कर, इस पद से शुरू होते हैं– ''करुणामय, दयालु ईश्वर के नाम पर''। अरबी में करुणा के लिए 'रहम' शब्द है। सांस्कृतिक प्रभाव के रूप में इसकी जड़ें कुरान में भी हैं। एक सच्चा मुसलमान प्रत्येक दिन, प्रत्येक प्रार्थना, और प्रत्येक महत्वपूर्ण कार्य दयालु एवं करुणामय ईश्वर से आग्रह के साथ शुरू करता है। उदाहरण के लिए – बिस्मिल्लाह अल–रहमान अल–रहीम के उच्चारण से शुरू करता है। मुस्लिम धर्मग्रंथ, बंधक यौद्धाओं, विधवाओं, अनाथों एवं गरीबों के प्रति करुणा की सीख देते हैं। परंपरागत रूप से जकात (एक प्रकार का आर्थिक कर), जो निर्धन एवं जरूरतमंद लोगों के लिए इकट्ठा किया जाता है, को देना प्रत्येक मुसलमान के लिए अनिवार्य है। रमजान के महीने में उपवास या सव्म का व्यावहारिक उद्देश्य भूखे एवं भाग्यहीनों की सहायता करना, दूसरे के कष्टों के प्रति लोगों को संवेदनशील बनाना एवं निर्धन और भूखे लोगों के लिए करूणा पैदा करना है।

इस्लाम के अनुसार, सद्गुण हैं – प्रार्थना, प्रयाश्चित, ईमानदारी, वफादारी, निष्ठा, स्वल्प–व्ययिता, विवेक, संयम, आत्मसंयम, अनुशासन, दृढ़ता, धैर्य, आशा, गरिमा, साहस, न्याय, सहनशीलता, विवेक, शुभ वचन, सम्मान, शुद्धता, शिष्टाचार, दया, आभार, उदारता, संतोष, इत्यादि।

3.8 अवगुण

अवगुण अथवा दुर्गुण को अनैतिक, चरित्र को भ्रष्ट करने वाली एवं समाज को पतनशील बनाने वाला व्यवहार या आदत माना जाता है। अधिक गौण प्रयोग में, अवगुण किसी अनुचित कृति, दोष, अनिश्चय अथवा केवल किसी एक बुरी आदत को कह सकते हैं। अनुचित कृत्य, दोष, पाप, बुराई और भ्रष्टाचार अवगुण के पर्यायवाची हैं। इसके वास्तविक अर्थ को व्यक्त करने वाला अंग्रेजी पद वाइसियस (vicious) है, जिसका अर्थ है "अवगुणों से भरा हुआ"। इस अर्थ में वाइस (vice) शब्द लैटिन के विटियम (vitium) से निकला है; जिसका अर्थ है– "दुर्बलता अथवा दोष"। अवगुण सद्‌गुण का विपरीतार्थक है।

कुछ लोगों द्वारा अनैतिक मानी जाने वाली क्रियाओं के लिए भी बड़े पैमाने पर दुर्गुण शब्द का प्रयोग होता है। इन क्रियाओं में मद्यपान एवं अन्य ड्रग्स, जुआ, धूम्रपान, ठगी, झूठ बोलना और स्वार्थीपन इत्यादि को सम्मिलित किया जा सकता है। स्थापित सांस्कृतिक मूल्यों–मानदण्डों के विरूद्ध व्यवहार को भी अवगुण माना जाता है। उदाहरण के लिए, जिन समाजों में मर्दानगी को मर्दों के व्यवहार का एक आवश्यक तत्व माना जाता है उनमें किसी मर्द के व्यवहार में औरतपन को अवगुण माना जाता है।

3.8.1 ईसाईयत में दुर्गुण की अवधारणा

ईसाईयों की मान्यता है कि दुर्गुण/अवगुण दो प्रकार के होते हैं– एक वह जो मनुष्य की मूल प्रवृत्ति (जैसेकि, काम वासना) से उत्पन्न होता है, और दूसरा जो आध्यात्मिक क्षेत्र में मिथ्या मूर्तिपूजा से उत्पन्न होता है। दूसरे प्रकार के अवगुण की तुलना में पहले प्रकार के अवगुण को कम गंभीर माना गया है। ईसाईयों द्वारा जिन्हें आध्यात्मिक अवगुण के रूप में माना गया है वे हैं; ईशनिंदा (पवित्र से धोखा), स्वधर्म त्याग (श्रद्धा से धोखा), निराशा (आशा से धोखा), घृणा (प्रेम से धोखा) और उदासीनता (ग्रंथ के अनुसार, कठोर हृदय)। ईसाई धर्मशास्त्रियों ने माना है कि सबसे विध्वंसक अवगुण है, विशेष प्रकार का गर्व अथवा आत्म–मूर्ति पूजन। उन्होंने अपने इस विचार के पक्ष में यह तर्क दिया है कि इस प्रतिस्पर्धी अवगुण से ही अन्य सारे अवगुण उत्पन्न होते हैं। जूडो–क्रिश्चियन संप्रदायों में इसे व्यक्ति को पतन की ओर ले जाने वाला, और पैशाचिक (शैतान से जुड़ा) माना गया है। इस अतिभार वाले अवगुण की निंदा चर्च द्वारा प्रायः की गई है।

रोमन कैथोलिक चर्च अवगुण, जोकि पाप की ओर प्रवृत्त आदत है एवं स्वयं पाप में भेद करता है। याद रखें कि रोमन कैथोलिक चर्च में पाप वह अवस्था है जो नैतिक रूप से गलत कृत्यों से उत्पन्न होती है। इस परिच्छेद में इस शब्द का अर्थ सदैव पाप कर्म से लिया गया है। व्यक्ति अपने अवगुणों के कारण नहीं बल्कि पापों के कारण ईश्वर की कृपा से वंचित होता है।

थॉमस एक्विनास की शिक्षा है कि "परम रूप में कहा जाये, तो पाप दुराचरण में अवगुण से अधिक है। दूसरी ओर, व्यक्ति के पाप यदि क्षमा कर दिये जाएं तो भी उसके अवगुण बने रह सकते हैं। ठीक वैसे ही जैसे सबसे पहले पाप की ओर झुकाव से अवगुण बने, उसी तरह से पाप की ओर झुकाव को प्रतिबन्धित करके और बार–बार सद्गुण का पालन करने से ही अवगुण मिटाये जा सकते हैं। संत थॉमस एक्विनास कहते हैं कि सद्गुणों के पुनर्वास (पुनः स्थापित होना) एवं अधिग्रहण से सद्गुसण आदत के रूप में नहीं बचते, बल्कि केवल संस्कार के रूप, और उस रूप में जो उच्छेद (नष्ट होना) की प्रक्रिया में हैं, शेष रहते हैं।

दान्ते के अनुसार, सात घातक अवगुण हैं: **अहंकार–**अत्यधिक आत्मप्रेम, आत्मश्लाघा (ईश्वर एवं अन्य मनुष्य के सन्दर्भ से हटाकर आत्म को ग्रहण करनाय दान्ते के अनुसार, ''अपने प्रति प्रेम पथभ्रष्ट होकर अपने पड़ोसियों के प्रति घृणा एवं दुर्मति बन जाता है।) सात घातक पापों की लैटिन सूची में, अहंकार को *सुपरबिआ* से संदर्भित किया जाता है। **धन लिप्साः** (लालच) आवश्यकता से अधिक संग्रह करने की इच्छा (दान्ते के अनुसार, ''धन एवं शक्ति के प्रति अत्यधिक प्रेम'')। लैटिन सूची में, धन–लिप्सा को *अवरिशिआ* से संदर्भित किया गया है। **वासना–** अत्यधिक काम–इच्छा। दान्ते का मापदण्ड है कि "वासना सच्चे प्रेम से दूर करती है"। लैटिन सूची में, वासना को *लक्जरिआ* से संदर्भित किया गया है। **क्रोधः** घृणा, प्रतिशोध या नकार की भावना, और साथ ही न्याय के क्षेत्र से परे सजा की इच्छा (दान्ते के अनुसार, न्याय से प्रेम प्रतिशोध और घृणा की भावना का अन्त कर देता है) लैटिन सूची में, क्रोध को *इरा* से संदर्भित किया गया है। **भोजन लिप्साः** खाने–पीने या नशे (व्यसन) में डूबे रहना या स्वाद के लिए भागते रहना (''सुख के प्रति अत्यधिक प्रेम''– दान्ते के अनुसार)। लैटिन सूची में, भोजन–लिप्सा को *गुला* से संदर्भित किया गया है। **शत्रुता या ईर्ष्याः** दूसरे की सम्पत्ति को देखकर आक्रोश करना (दान्ते कहते हैं – ''अपनी सम्पत्ति के प्रति प्रेम पतित होकर दूसरों को उनके अधिकार से वंचित करना है'')। लैटिन सूची में, शत्रुता या ईर्ष्या को *इन्विडिआ* से संदर्भित किया गया है। **आलस्यः** सुस्ती या समय अथवा अन्य प्रदत्त संसाधनों का अपव्यय। आलस्य की आलोचना इसलिए की गई है क्योंकि यह दूसरों पर काम के बोझ को बढ़ाता है। इसके अतिरिक्त, आवश्यक कार्य भी अधूरे रह जाते हैं। लैटिन सूची में, आलस्य को *एसिडि* अथवा *एसिडिआ* से संदर्भित किया गया है।

बोध–प्रश्न III

ध्यातव्यः क) उत्तर हेतु दिये गये रिक्त स्थान का उपयोग कीजिए।

ख) अपने उत्तर का मिलान इकाई के अन्त में दिये गये उत्तर से कीजिए।

1. हिन्दू धर्म और इस्लाम में प्रस्तुत सद्गुणों को बताएं।

.....

.....

.....

.....

2. पाप क्या है? सात घातक पाप कौन से हैं?

.....

.....

.....

.....

3.9 सारांश

अंग्रेजी का वर्च्यु शब्द लैटिन भाषा के वर्च्युअस शब्द से आता है, जिसका अर्थ है नैतिक श्रेष्ठता। सद्गुण वह आचरण है जिसे शुभ माना जाता है। वैयक्तिक सद्गुण निजी एवं सार्वजनिक कल्याण को आगे बढ़ाता है और इस प्रकार पारिभाषिक रूप से शुभ होता है। सद्गुण का विपरीतार्थक अवगुण है। जहाँ सुकरात के लिए ज्ञान ही सद्गुण है, वहीं अरस्तू के लिए सद्गुण दो अतिवादी स्थितियों के मध्य व्यवहार करना है। प्लेटो चार प्रधान सद्गुणों की बात करते हैं जिससे अन्य नैतिक गुण विकसित होते हैं। प्रत्येक धर्म सद्गुणमय जीवन की वकालत करता है। हम लोगों ने यह देखा कि कैसे हिन्दू धर्म व मुस्लिम धर्म सद्गुणों पर आधारित हैं। दूसरी ओर, अवगुणों और सात पापों को को देखने पर हम ईसाईयत के सद्गुसणी जीवन के विचार को समझते है। अतः तीनों धर्मों का संदेश है– सद्गुणों को प्राप्त करना और अवगुणों से दूर रहना।

3.10 कुंजी शब्द

आरते (Arete): श्रेष्ठता सूचक ग्रीक पद।

सद्गुण(Virtue) : नैतिक उच्चता के लिए लैटिन पद।

विटियम (Vitium) : लैटिन में अवगुण हेतु प्रयुक्त शब्द, जिसका अर्थ है दोष।

प्रधान सद्गुण (Cardinal virtue) : यह लैटिन के कार्डो शब्द से निकला है जिसका अर्थ चौखट होता है। अतः प्रधान सद्गुण का आशय उन मुख्य सद्गुकणों से है, जिन पर अन्य सद्गुणों टिके रहते हैं।

3.11 अन्य सहायक अध्ययन–सामग्री एवं सन्दर्भ

लिल्ली, विलियम. *एन इंट्रोडक्शन टू एथिक्स.* न्यू देल्हीः एलायड पब्लिशर्स प्रा. लि., 1980.

ऑलिवेरा, जॉर्ज. *वर्च्यु इन डाइवर्स ट्रेडिशन्स.* बैंग्लोरः एशियन ट्रेडिंग कॉरर्पोरेशन, 1998.

गुथरी, डब्ल्यू. के. सी. *सोक्रेटीज.* कैम्ब्रिजः कैम्ब्रिज यूनिवर्सिटी प्रेस, 1971.

सिंगर, पीटर (एडि.). *ए कम्पेनियन टू एथिक्स.* कैम्ब्रिजः ब्लैकवेल पब्लिशर्स, 1995.

3.12 बोध–प्रश्नों के उत्तर

बोध–प्रश्न I

1. ग्रीक भाषा में सद्गुण के लिए आरते शब्द का प्रयोग होता है। आरते का अर्थ है किसी भी प्रकार श्रेष्ठता। किंतु यह श्रेष्ठता व्यक्ति के लिए प्रयोग की जाती है। इस प्रकार, सद्गुण को मानवीय श्रेष्ठता के रूप में वर्णित किया जा सकता है। लैटिन में वर्च्यु को वर्च्युअस कहते हैं, जिसका अर्थ है नैतिक श्रेष्ठता। सद्गुण अच्छे व्यक्ति का वह गुण है जिसे अच्छा माना जाता है।

MAADHYAM IAS 'way to achieve your dream'

वैयक्तिक सद्गुण वे गुण हैं जो व्यक्ति और समाज के कल्याण को बढ़ाते हैं, इसलिए पारिभाषिक रूप से शुभ होते हैं। नीतिशास्त्र में, सद्गुण का विपरीतार्थक अवगुण (vice) है। नीतिशास्त्र में सद्गुण का प्रयोग दो अर्थों में होता हैः (अ) चारित्रिक गुण– किसी विशेष दशा में उचित कार्य करने का संस्कार या उसका अथवा अधिकतम सार्वभौमिक दायित्वों का निष्पादन। (ब) सद्गुण कार्य करने की आदत है जो चारित्रिक गुण या संस्कार से सम्बन्धित (संवादित) है। हम किसी व्यक्ति की ईमानदारी, या कर्तव्यों की ईमानदारी को समानरूप से सद्गुण कह सकते हैं।

2. सुकरात के अनुसार, सद्गुण सर्वोच्च उद्देश्य और महानतम शुभ (अच्छाई) है, जिसे प्रत्येक व्यक्ति को अपने जीवन में धारण करना चाहिए। वे जोर देते हैं कि यदि यह सर्वोच्च उद्देश्य और महानतम शुभ है, तो इसमें सार्वभौमिक संगतता होनी चाहिए और यह सभी के लिए समान होना चाहिए। अब, जो भी सार्वभौमिक संगतता लिये है और सभी के लिए समान है, वह वह ज्ञान है जिसे सभी में सामान्य तर्कबुद्धि के प्रयोग के द्वारा अवधारणाओं के माध्यम

से जाना जा सकता है। 'सद्गुण व ज्ञान के मध्य का सम्बन्ध अपृथक्करणीय है। क्योंकि सुकरात सोचते हैं कि शुभ के आमतौर पर माने जाने वाले विभिन्न रूप जैसे स्वास्थ्य, धन, सौंदर्य, साहस, सहनशीलता इत्यादि केवल तभी शुभ हैं यदि वे प्रज्ञा द्वारा निर्देशित हैं। यदि ये बुरे विवेक द्वारा निर्देशित हों तो यह बुराई का रूप धारण कर लेते हैं।'

बोध–प्रश्न II

1. प्लेटो ने जिन चार सद्गुणों की व्याख्या रिपब्लिक में की है। वे हैं: विवेक, साहस, सहनशीलता (या संयम), न्याय। प्लेटो यह बताते हैं कि व्यक्ति इन सद्गुणों को कैसे प्राप्त कर सकता है: विवेक बुद्धि के अभ्यास से आता है; साहस भावनाओं पर नियन्त्रण से आता है: सहनशीलता (या संयम) इच्छाओं पर बुद्धि की विजय से आती है और इन सबसे न्याय उत्पन्न होता है। न्याय ऐसी अवस्था है जिसमें मन के सभी तत्व एक दूसरे के साथ सहअस्तित्व में होते हैं। प्लेटो ने न्याय को मूल एवं संरक्षण सद्गुण इसलिए माना है क्योंकि जब कोई एक बार न्याय को समझ लेता है तब वह तीनों अन्य सद्गुणों को प्राप्त कर सकता है। और जब व्यक्ति चारों सद्गुणों को धारण करता है, तब वह न्याय ही है जो सब सद्गुणों को एक साथ रखता है।

2. अरस्तू ने सद्गुण को चुनाव करने की आदत कहा है, जिसकी विशेषताएं साधन के अवलोकन अथवा सहनशीलता में निहित होती हैं, जो जैसी कि बुद्धि द्वारा निर्धारित की जाती हैं या वैसी जैसा व्यवहार–कुशल व्यक्ति निर्धारित करता है। अरस्तू ने सद्गुण को कार्यों की आदत के रूप में प्राथमिक रूप से तथा चरित्र की विशेषता के रूप में द्वितीयक रूप में देखा है। सद्गुण केवल आदत नहीं है, बल्कि चुनाव की आदत है। अरस्तू की परिभाषा का सबसे चर्चित बिन्दु उनका मध्यम मार्ग है। सद्गुण को दो अवगुणों के मध्य को माना गया है; उदाहरण के लिए, साहस बिना सोचे–समझे किये गये कार्य और कायरता के मध्य अवस्थित है। और उदारता अतिव्ययता एवं कंजूसी के मध्य की स्थिति है। चरम पर स्थित अवगुणों के सापेक्ष मध्यम बिन्दु का स्थान प्रत्येक व्यक्ति की अपनी–अपनी परिस्थितियों पर निर्भर करता है। एक राजनेता की तुलना में एक सैनिक का साहस बिना सोचे–समझे करने की प्रवृत्ति के अधिक निकट होगा, सैनिक के सन्दर्भ में जोखिम लेना उसका कार्य से जुड़ा है, जबकि यह जोखिम लेना राजनेता के सन्दर्भ में आपराधिक कृत्य होगा। यह विचार निश्चित रूप से कला में अनुपात और सामंजस्य पर ग्रीक के प्रभाव से सहमति रखता है, जैसाकि इस कहावत 'अति नहीं' या 'सद्गुण मध्य में अवस्थित हैं' से अभिव्यक्त होता है।

बोध–प्रश्न III

1. हिंदू सद्गुण हैं: मानवता की निःस्वार्थ सेवा, संयम, आत्मसंयम, ईमानदारी, निर्मलता, सुरक्षा, धरती का संरक्षण और सम्मान, सार्वभौमिकता, शांति, अहिंसा, बड़ों एवं गुरुओं के प्रति

समर्पण एवं सम्मान इत्यादि। इस्लाम के अनुसार, सद्गुण हैं – प्रार्थना, प्रयाश्चित, ईमानदारी, वफादारी, निष्ठा, स्वल्प–व्ययिता, विवेक, संयम, आत्मसंयम, अनुशासन, दृढ़ता, धैर्य, आशा, गरिमा, साहस, न्याय, सहनशीलता, विवेक, शुभ वचन, सम्मान, शुद्धता, शिष्टाचार, दया, आभार, उदारता, संतोष, इत्यादि।

2. अवगुण अथवा दुर्गुण को अनैतिक, चरित्र को भ्रष्ट करने वाली एवं समाज को पतनशील बनाने वाला व्यवहार या आदत माना जाता है। अधिक गौण प्रयोग में, अवगुण किसी अनुचित कृति, दोष, अनिश्चय अथवा केवल किसी एक बुरी आदत को कह सकते हैं। अनुचित कृत्य, दोष, पाप, बुराई और भ्रष्टाचार अवगुण के पर्यायवाची हैं। इसके वास्तविक अर्थ को व्यक्त करने वाला अंग्रेजी पद वाइसियस है, जिसका अर्थ है "अवगुणों से भरा हुआ"। इस अर्थ में वाइस शब्द लैटिन के विटियम से निकला है; जिसका अर्थ है– "दुर्बलता अथवा दोष"। सात घातक अवगुण हैं–आत्मश्लाघा या अहंकार, लालच, वासना, क्रोध, भोजन लिप्सा, ईर्ष्या और आलस्य।

MAADHYAM IAS
'way to achieve your dream'

इकाई 4 नैतिक नियम*

रूपरेखा

4.0 उद्देश्य

4.1 परिचय

4.2 (प्राकृतिक) नैतिक नियम की परिभाषा

4.3 बुद्धि एवं नैतिकता

4.4 सार्वभौमिकता एवं (प्राकृतिक) नैतिक नियम

4.5 प्राकृतिक नैतिक नियम एवं परिवर्तन

4.6 प्राकृतिक नैतिक नियम एवं मानव गरिमा

4.7 प्राकृतिक नैतिक नियम एवं आंतरिक अशुभ संकल्पना

4.8 प्राकृतिक नैतिक नियम की आलोचना

4.9 सारांश

4.10 कुंजी शब्द

4.11 अन्य सहायक अध्ययन–सामग्री एवं सन्दर्भ

4.12 बोध–प्रश्नों के उत्तर

MAADHYAM IAS
'way to achieve your dream'

4.0 उद्देश्य

इस इकाई का उद्देश्य है:

- नैतिकता की परिघटना को समझना,
- प्राकृतिक नैतिक नियम को परिभाषित करना और उसके स्वभाव को समझनाय अर्थात उसकी सार्वभौमिकता एवं विशिष्टता, प्राकृतिक नियम में बदलाव, नैतिक नियम का विशिष्ट नियमों से सम्बन्ध, मानवीय गरिमा से इसका सम्बन्ध, आंतरिक अशुभ की संकल्पना को समझना, और

* डॉ. कुरियन जोसेफ, सेन्ट एन्टोनी'ज महाविद्यालय, बैंग्लोर, अनुवादक–

- (प्राकृतिक) नैतिक नियम की आलोचना को समझना और इसका उत्तर देना।

4.1 परिचय

प्राकृतिक नियम का ज्ञान इतना व्यापक है जितना कि स्वयं मानव। उसी प्रकार से उसकी समालोचना। यहाँ हम भारतीय दर्शन के ऋत् की अवधारणा (ऋग्वेद में उल्लिखित) को प्राकृतिक नैतिक नियम के उदाहारण के रूप में ले सकते हैं। इस इकाई का मुख्य उद्देश्य प्राकृतिक नैतिक नियम पर विचार करना है। मुख्यतः नैतिक नियम पद आमतौर से इमैनुअल काण्ट के नैतिक दर्शन के सन्दर्भ में लिया जाता है। हमारे नीतिशास्त्र के पाठ्यक्रम में काण्ट के नैतिक दर्शन पर एक अलग इकाई है, इसलिए इस इकाई में हमारा केन्द्र बिन्दु प्राकृतिक नैतिक नियम पर होगा। इस इकाई में 'नैतिक नियम' का अर्थ 'प्राकृतिक नैतिक नियम' ही लिया जाना चाहिए जब तक कि कोई अन्य विशेष अर्थ ना दिया गया हो। सबसे पहले हम प्राकृतिक नैतिक नियम की संकल्पना का संक्षिप्त विवरण प्रस्तुत करेंगे। फिर उसके बाद प्राकृतिक नैतिक नियम की आधारभूत आलोचनाओं का उल्लेख करेंगे। और अंत में, हम कुछ आलोचनाओं का उत्तर देने का प्रयत्न करेंगे।

सहज तर्कबुद्धि के प्रकाश में व्यक्ति अच्छे और बुरे में अंतर करता है। सैद्धान्तिक बुद्धि के अनुसार, वस्तुओं के अस्तित्व के प्रति जिज्ञासा ही प्रत्येक ज्ञान की शुरूआत है। शुभ के 'परामर्शात्मक चरित्र' अथवा 'चाहिए' चरित्र आद्य नैतिक परिघटना है और नीतिशास्त्र की शुरूआत ही आद्य परिघटना से होती है। व्यावहारिक तर्कबुद्धि की उत्पत्ति भी यहीं से होती है। शुभ और अशुभ के बीच अंतर शुभ के स्वभाव में निहित है। अच्छाई व्यक्ति को उस ओर चलने को प्रेरित करती है जो उसे करना चाहिए तथा बुराई उसे विपरीत दिशा में ढकेलती है। अच्छाई व्यक्ति पर स्वयं को आरोपित करती है, तथा जो व्यक्ति इसे समझ लेता है वह अच्छाई और बुराई के बीच के अंतर्विरोध को भी समझ लेता है।

शुभ–बुद्धि अथवा शुभ का आह्वान (Ratio boni) यह है कि प्रत्येक व्यक्ति शुभ चाहता है। सभी व्यक्ति शुभ की कामना करते हैं क्योंकि शुभ स्वयं में काम्य है। जो भी व्यक्ति रेशियो बोनी (Ratio boni) को समझता है, वह शुभ अच्छाई के 'चाहिए' स्वभाव को भी समझता है। इसके साथ ही वह नैतिकता के उच्चतम मानक को भी समझता है, अर्थात् अच्छे कार्य करने हैं एवं बुरे कार्य से दूर रहना है को भी समझता है। (प्राकृतिक) नैतिक नियम का सर्वोच्च मानक है: अच्छे कार्य करिये एवं बुराई को त्यागिये। और यह शुभ के 'चाहिए' लक्षण का परिणाम है।

अच्छे कार्य करने चाहिए एवं बुरे से बचना चाहिए। अच्छाई की शक्ति यह है कि वह व्यक्ति को अच्छे कार्य करने के लिए उकसाती है। व्यावहारिक बुद्धि के सभी मानकों की वैधता शुभ के

अभिप्राय के परिज्ञान के अधीन होती है। शुभ सभी व्यक्तियों के लिए उपलब्ध है। अर्थात् शुभ का प्रकाश सभी व्यक्तियों के लिए उपलब्ध है।

4.2 (प्राकृतिक) नैतिक नियम की परिभाषा

अच्छाई करना और बुराई से बचना नैतिकता या नीतिशास्त्र का सर्वप्रमुख सिद्धान्त है। और यह सिद्धान्त अच्छाई के 'चाहिए' स्वभाव पर आधारित है। इसी एक सिद्धान्त से सहज तर्कबुद्धि अपने अन्य वैयक्तिक मानकों को ग्रहण करती है। प्राकृतिक नियम के सभी वैयक्तिक नियम उस सीमा तक परम सिद्धान्त की तार्किकता में सहभागी होते हैं, जहाँ तक वे एक नैतिक नियम के परम सिद्धान्त को संदर्भित करते हैं।

किसी भी नीति–दर्शन की पूर्वमान्यताएं हैंः अ) सत्य को ग्रहण करने की व्यावहारिक बुद्धि की क्षमता और, ब) मानव स्वभाव का मूल आधार (आश्रय) जो सभी ऐतिहासिक परिवर्तनों के बाद भी ज्यों का त्यों रहता है। विशुद्ध नैतिक सिद्धान्त को अपने सिद्धांतों की सार्वभौम वैधता में विश्वास होना अनिवार्य है।

प्राकृतिक नैतिक नियम की पूर्वमान्यता है कि मानव की एक सामान्य प्रकृति है जो नियत रहती है। इसी सामान्य मानव प्रकृति से ही नैतिक सिद्धान्त प्रसूत हुए हैं। इस प्रकार, प्राकृतिक नैतिक नियम का आधार मानव की सामान्य प्रकृति है। नैतिक नियम का अस्तित्व व्यावहारिक बुद्धि से पहले है। व्यावहारिक बुद्धि इनकी खोज इसलिए करती है क्योंकि प्राकृतिक नैतिक नियम मानव की मूल संरचना पर आधारित हैं। सम्वेगवाद के विपरीत, नैतिक नियम (वह नैतिक सिद्धान्त जिसका मानना है कि नैतिकता सम्वेग का मुद्दा है) मानव होने की प्रकृति पर आधारित हैं।

प्राकृतिक नैतिक नियम अथवा पद 'प्रकृति द्वारा' नैतिक कर्ता होने के लिए न्यूनतम पूर्व–मान्यताओं, अर्थात् स्वतन्त्रता और बुद्धि, को प्रस्तुत करते हैं। इनके बिना कोई नैतिक कर्ता नहीं हो सकता है। प्रत्येक संस्कृति एवं काल में मानव होने के लिये प्राकृतिक नैतिक नियम के रूप में न्यूनतम पूर्व मान्यताएं समान होती हैं। ये न्यूनतम शर्तें प्राकृतिक नियम के मूलभूत आदेशों द्वारा सुरक्षित की जाती हैं।

प्राकृतिक नैतिक नियम नैतिक सिद्धान्त के रूप में सभी लोगों के लिए वैध होते हैं। क्योंकि मनुष्य होने के लिए यह अनिवार्य न्यूनतम संकेत लिये रहते हैं। और यह मानव के सर्वाधिक मूल क्षेत्र को सुरक्षित रखता है। प्राकृतिक नियम की न्यनतम शर्त सबके लिए समान है और यह सब जगह समान रूप से लागू होती है और दैवीय हस्तक्षेप से स्वतंत्र होती है। यह सभी मनुष्यों के लिए उपलब्ध है।

MADHYAM IAS

नैतिक दर्शन के रूप में प्राकृतिक नैतिक नियम सापेक्षतावाद का विरोधी है और नैतिक मानदंड की सत्यता और सार्वभौम वैधता में विश्वास करता है। अपने समाज की विचारधारा की आलोचना के लिए व्यक्ति को प्राकृतिक नियमों की आवश्यकता होती है। प्रकृतिक नियमों की अनुपस्थिति में व्यक्ति नरभक्षी एवं लोकतांत्रिक दोनों समाजों को समान महत्व देने के लिए बाध्य होगा। प्राकृतिक नियम वैयक्तिक नैतिक नियमों और नागरिक नियमों (सामाजिक नियमों) का अनिवार्य आधार होना चाहिए। और इन्हें प्रत्येक धार्मिक आधार से भी स्वतंत्र होना चाहिए। इन्हें मानव मात्र के लिए सुलभ होना चाहिए। यह मानव को मानव होने के कारण सुगम्य होना चाहिए।

थॉमसवादी प्राकृतिक नैतिक नियम व्यक्ति के संतुष्ट जीवन की ओर सहज झुकाव तथा प्राकृतिक बुद्धि का मिश्रण है। प्राकृतिक नियम तथा व्यक्ति के जीवन का लक्ष्य मानव के स्वभाव में सहज ही निहित है। व्यक्ति के जीवन के लक्ष्य होते हैं और प्रवृत्ति मानव को उनकी ओर ले जाती है। उद्देश्य की शुभ के रूप में पहचान व्यावहारिक बुद्धि स्वभाव से ही, बिना किसी अन्य सहायता से, कर लेती है।

प्रवृत्तियाँ लक्ष्य की ओर संकेत करती हैं। लक्ष्य जीवन में संपूर्णता लेकर आते हैं। अच्छे और बुरे का ज्ञान प्रवृत्ति के स्तरानुसार होता है। व्यक्ति में सैद्धान्तिक रूप से तीन प्रकार की प्रवृत्तियाँ होती हैं: प्रथम चरण की प्रवृत्तियाँ, वे प्रवृत्तियाँ होती हैं जो सभी पदार्थों में समान होती हैं। इनका सम्बन्ध स्व–संरक्षण से होता है। द्वितीय चरण की प्रवृत्तियाँ वे प्रवृत्तियाँ होती हैं जो सभी जीव जंतुओं में समान होती हैं तथा जिनका सम्बन्ध सामाजिक रहन–सहन, प्रजनन तथा शिशुओं की शिक्षा से है। तृतीय तरण की प्रवृत्तियाँ वो प्रवृत्तियाँ हैं जो व्यक्ति विशेष में होती हैं। इनका सम्बन्ध ज्ञान के प्रयास से है जिसके अन्तर्गत ईश्वर के बारे में ज्ञान और दूसरे के साथ सहभागिता के साथ रहने की इच्छा आती है। सहभागिता के साथ रहने की इच्छा से आशय अज्ञान के परिहार से है। इसके अन्तर्गत किसी सहभागी को कष्ट न पहुँचाने की प्रवृत्ति सम्मिलित है।

व्यक्ति की प्रवृत्तियां व्यावहारिक बुद्धि के आदेश के अनुकूल होती हैं। लेकिन इन दोनों के बीच यथार्थ सम्बन्ध क्या है? मध्यकालीन दार्शनिक थामस के व्याख्याकारों ने प्रवृत्तियों और व्यावहारिक बुद्धि के बीच तीन प्रकार के सम्बन्ध प्रस्तावित किए हैं: प्रवृत्तियाँ केवल ढाँचा (रूपरेखा) होती हैं। व्यावहारिक बुद्धि निर्णायक होती हैं। प्रवृत्तियाँ व्यावहारिक बुद्धि को सूचनाएं देती हैं। और, अंत में एक ऐसी स्थिति आती है जहाँ प्रवृत्तियाँ जीवन के विस्तृत उद्देश्य की जानकारी देती हैं तथा व्यावहारिक कारण उन्हें स्वीकार कर लेते हैं। जर्मन नीतिशास्त्री एबरहार्ड सॉकेन्हॉफ के अनुसार, व्यावहारिक बुद्धि को केवल अनुसमर्थन कारक की तरह से ही नहीं देखना चाहिए; तथा न ही ये प्रवृत्तियाँ असीमित मात्रा की कच्ची सामग्री हैं जिसे

MAADHYAM IAS

व्यावहारिक बुद्धि के द्वारा आकार दिया जाता है। सॉकेन्हॉफ के अनुसार, व्यावहारिक बुद्धि का सर्वोच्च नियम व्यक्तिगत नैतिक मानकों में विघटित हो जाता है तथा प्रवृत्तियों के साथ मिलकर ये बुद्धि के द्वारा सूचित एकता स्थापित करते हैं। बुद्धि उस संगीत चालक की तरह है जो प्रवृत्तियों को व्यवस्थिति स्वर में बांध कर रखता है। तथा, बुद्धि उस लेखक की तरह हैं जो पुस्तक के प्रारंभिक प्रारूप (प्रवृत्तियों) को सुसंगत लिखित पुस्तक में बदल देता हैं। बुद्धि प्रवृत्तियों के बारे में बताती हैं। और वे व्यक्तियों की क्रिया का मानक बन जाती हैं।

प्राकृतिक प्रवृत्तियाँ केवल छवि रूप में मनुष्य के होने के संपूर्ण आकार को दिखाती हैं। बुद्धि का कार्य उस लक्ष्य की ओर जाने के लिए साधन की खोज करना है; लक्ष्य की अनुभूति के लिए व्यक्तियों के आचरण के मानकों की खोज करना। व्यक्ति को चाहिए कि वह बुद्धि के प्रकाश में, जीवन के उद्देश्यों की अनुभूति के लिए प्रत्यक्ष क्रियाओं को चुने।

केवल वे प्रवृत्तियाँ ही जो बुद्धि के अनुरूप हैं प्राकृतिक नैतिक नियम के अन्तर्गत आती हैं। प्राकृतिक नैतिक नियम का सर्वोच्च सिद्धान्त, अर्थात् 'अच्छा करिये एवं बुरे का त्याग करिये' बहुत सारे व्यक्तिगत मानकों में विभक्त हो जाता है ताकि व्यक्ति जीवन–संतुष्टि की प्रवृत्ति की ओर अग्रसर हो सकें।

4.3 बुद्धि एवं नैतिकता

व्यक्ति नियमों का पालन इसलिये करता है क्योंकि यह उचित है। प्रत्येक नियम का एक बौद्धिक कारण होता है। किसी नियम की बाध्यकारी शक्ति बाहर से नहीं आती है बल्कि बुद्धि के आंतरिक बाध्यात्मक चरित्र से आती है। थॉमस एक्विनास के अनुसार, मानव–कृत्य के नियम एवं मापक ही बुद्धि है। नैतिकता का एक मात्र मानदण्ड यह है कि मानव क्रिया बुद्धि के अनुरूप है कि नहीं, अर्थात बुद्धि को क्रिया स्वीकार्य है या नहीं।

नैतिक मूल्यों की उत्पत्ति और वैधता व्यावहारिक बुद्धि से आती है। इसी कारण से बुद्धि ही नियम को नियम बनाती है। बिना बुद्धि के कोई नियम नहीं होता है। यह ईश्वरीय बुद्धि में व्यक्ति की सहभागिता है जो व्यक्ति को प्राकृतिक नियम का पालन करने में सक्षम बनाती है। बुद्धि और इसका अव्याघात का नियम अन्ततः किसी नैतिक व्यवस्था की अंतर्वस्तु का निर्धारण करते हैं। अनैतिक कार्य वह है जो बुद्धि के विपरीत है। यह बुद्धि के विरूद्ध कार्य है। यह असम्भव है कि नैतिक नियम एक स्थान पर महत्वपूर्ण हो तथा दूसरे स्थान पर अमहत्वपूर्ण या विरोधी हो।

थॉमस एक्विनास व्यक्ति में बुद्धि विभाग के दो पक्ष देखते हैंय सैद्धान्तिक बुद्धि एवं व्यावहारिक बुद्धि। वे दोनों को बराबर महत्व देते हैं। कोई भी बुद्धि दूसरे के अधीन नहीं होती है। ये

MADHYAM IAS
'way to achieve your dream'

व्यक्ति में दो विभाग की तरह नहीं है बल्कि आत्मा की एक क्षमता की तरह हैं जो कि विभिन्न विषयों की ओर उन्मुख हैंः सैद्धान्तिक बुद्धि अपने प्रयोजन के लिए स्वंय सिद्ध सत्य की ओर जाती है जबकि व्यावहारिक बुद्धि उस सत्य की ओर जाती है जिसे सिद्ध करना होता है. जिस पर कार्य करना होता है।

यह तथ्य कि दोनों विभाग एक ही आत्मा से हैं, उनकी विशिष्टता को समाप्त नहीं करता है। इन दोनों के अपने विशिष्ट लक्ष्य होते हैं। वे एक दूसरे के अधीन न होकर एक दूसरे के सहायक होते हैं। इन दोनों के बीच विशिष्टता को इस तथ्य से भी देखा जा सकता है कि इनमें से प्रत्येक के अप्रर्दशनात्मक प्राथमिक सिद्धान्त होते हैं वे अपने स्वयं के स्त्रोत से उत्पन्न होते हैं।

सैद्धान्तिक एवं व्यावहारिक बुद्धि एक दूसरे के इस बात में पूरक होती हैं कि वस्तुएं अनुस्थापन में या तो सैद्धान्तिक बुद्धि एक दूसरे से इस बात में पूरक होती हैं कि वस्तुएं अनुस्थापन में या तो सैद्धान्तिक बुद्धि या व्यावहारिक बुद्धि के अन्तर्गत आती हैं। सैद्धान्तिक बुद्धि के अन्तर्गत आने वाली वस्तुएं अपने आप में सत्य होती है। व्यावहारिक बुद्धि की वस्तु अच्छी होती है। सत्य सैद्धान्तिक बुद्धि का विषय इसलिये होता है क्योंकि उसकी अभिलाषा करना शुभप्रद होता है। व्यावहारिक बुद्धि की वस्तु शुभ होती है और उसकी खोज सत्य या सत्य के दृष्टिकोण के अन्तर्गत होती है।

सैद्धान्तिक बुद्धि के प्राथमिक सिद्धान्त सत्यापनीय नहीं हैं। वे स्वयं प्रत्यक्ष हैं एवं उन्हें अन्त र्ज्ञान के द्वारा जाना जाता है। इसी प्रकार से व्यावहारिक बुद्धि के प्राथमिक सिद्धान्त भी हैं। व्यावहारिक बुद्धि के अपने स्वयं के स्वभाविक रूप से ज्ञात और असत्यापनीय सिद्धांतों को धारण किये रहती है। वे सैद्धान्तिक बुद्धि से नियमित या गृहीत नहीं होते हैं। व्यावहारिक बुद्धि के प्राथमिक सिद्धान्त प्राकृतिक नैतिक नियम के प्राथमिक सिद्धान्त हैं। इन्हें प्रमाणित नहीं किया जा सकता है। ये सहज ज्ञान के रूप में जाने जाते हैं।

प्राकृतिक नियम सर्वोच्च सिद्धान्त (शुभ करो और अशुभ का परिहार करो) के प्रकाश में शुभ को खोजने में व्यावहारिक बुद्धि से सम्बन्धित होते हैं। शुभ के लिए अतिरिक्त ढंगों और साधनों की खोज करते हैं। इन दोनों कार्यों का सम्बन्ध व्यावहारिक बुद्धि से हैं। व्यावहारिक बुद्धि अपने क्रियाकलापों को उस संपूर्णता तक पहुँचाती हैं जहाँ पर यह इच्छित शुभ को अनुभूत कर सके। इसे व्यावहारिक बुद्धि का नियम लक्षण भी कहते हैंः अर्थात् व्यावहारिक बुद्धि और सैद्धान्तिक बुद्धि के सार्वभौमिक प्रस्तावों के मध्य अन्तर है।

व्यावहारिक बुद्धि के निर्णय में सैद्धान्तिक बुद्धि के बराबर निश्चितता नहीं होती है, क्योंकि व्यावहारिक बुद्धि के निर्णय अनिश्चित घटनाओं से सम्बन्धित होते हैं। लेकिन इसका यह अर्थ नहीं है कि ये वैध नहीं है।

4.4 सार्वभौमिकता एवं (प्राकृतिक) नैतिक नियम

कोई भी व्यक्ति सार्वभौमिक नीतिशास्त्र का प्रयोग एवं उसके बारे में विचार तभी कर सकता है जब वह सार्वभौमिक वैधता को पूर्व रूप से स्वीकार करता हो तथा प्रत्येक मनुष्य में बुद्धि क्षमता को मानता हो। व्यक्ति की स्वभाविक प्रकृति बदलती नहीं है, इसी प्रकार से प्राकृतिक नियम भी अपरिवर्तनशील होते हैं।

सिर्फ व्यावहारिक बुद्धि के सर्वोच्च सिद्धान्त और उनके परिणाम ही सार्वभौमिक रूप से वैध होते हैं, व्यावहारिक बुद्धि के श्रेष्ठ सिद्धान्त सभी के लिए वैध होते हैं क्योंकि वे मनुष्य के अस्तित्व की तार्किकता में स्थापित होते हैं। द्वितीयक प्राकृतिक नियम वे नियम हैं जिनकी उत्पत्ति तीन प्राथमिक नियमों से होती है। वे तीन प्राथमिक नियम हैं; अच्छा करो और बुराई का परित्याग करो, सर्वोच्च नियम (दूसरों के साथ वैसा व्यवहार कीजिए जैसा आप अपने साथ चाहते हैं), तथा अपने पड़ोसियों से प्यार करो। ये नियम सभी मनुष्य को ज्ञात हैं। लेकिन अपवाद भी हैं। सैद्धान्तिक बुद्धि और उनके निष्कर्ष सभी के लिए वैध होते हैं (जैसे किरू समबाहु त्रिकोण के सभी कोण समान होते हैं) लेकिन व्यावहारिक बुद्धि के परिणाम अनिश्चित होते हैं, अर्थात् वे सभी के लिए अनिवार्य रूप से वैध नहीं होते हैं।

एक बार जब बुद्धि सत्य का पता लगा लेती हैं तब ये सभी के लिए वैध हो जाते हैं। ''यह सत्य के ऐतिहासिक बोध की संरचना के पूर्णतया अनुकूल होता है। इस प्रकार की सीमाओं का पारगमन किसी विशेष समय–काल पर होता है। एक बार जब इस प्रकार के पारगमन की खोज हो जाती है तो मानव की अन्तरात्मा के विचार में, इसका सम्बन्ध मानवता के स्थायी अधिग्रहण से होता है तथा यह सभी जगह वैध होता है'' (सोकेनाफ, एन., P. 139)। सत्य की खोज जब एक बार हो जाती है तब यह सभी के लिए होता है तथा यह ऐतिहासिक विशिष्टताओं से स्वतंत्र होता है। यह ऐतिहासिक अस्तित्व की पहचान के अधीन नहीं होता है। यह ऐतिहासिक काल और युग से परे होता है। मैक्स शिलरर के अनुसार, मूल्य की खोज जितनी शीघ्र हो जाती है उतनी शीघ्र इसकी वैधता सभी व्यक्तियों और सभी कालों के लिए हो जाती है। इसी कारण सत्य के आवश्यक पक्ष की खोज हुई। एक अन्य जर्मन दार्शनिक ई ट्रोल्टेच का भी यही मत है।

व्यावहारिक बुद्धि के सभी निर्देश नियम की विशेषता को नहीं मानते हैं। केवल सार्वभौमिक प्रस्तावों आदेशों का इस पर अधिकार होता है। थॉमस एक्विनास के *समा थियोलॉजिका* (*Summa Theologica*) के प्रश्न–94, अनुच्छेद 4 और 5 का उद्देश्य यह दिखाना है कि सार्वभौमिक प्राकृतिक नियम दो शाखाओं में बंटा हुआ है।

व्यावहारिक बुद्धि सार्वभौमिक प्राकृतिक नियमों की खोज करती है। पुनः व्यावहारिक बुद्धि ही गैर सार्वभौमिक मानकों की खोज करती है तथा जो सभी परिस्थितियों में लागू होते हैं। इस प्रकार से व्यावहारिक बुद्धि के निर्णयों या नियमों के स्तर होते हैं।

यदि यह सत्य है कि बुद्धि का सार्वभौमिक प्रयोजन (महत्व) होता है तब प्राकृतिक नियम स्वयं को अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर अंतर्राष्ट्रीय मानव अधिकार समस्या के रूप में प्रस्तुत करते हैं। प्राकृतिक नियम मानव की मर्यादा को व्यक्त करते हैं। प्राकृतिक नियम अधिकारों एवं कर्तव्यों के लिए आधार बनाते हैं। एक सीमा तक प्राकृतिक नियम सार्वभौमिक हैं एवं उनका अधिकार सभी मनुष्यों पर है। यह विचार कि सत्य सभी मनुष्यों से सम्बन्धित होता है, मनुष्यों को विशेष बनाता है। यह कहना की यह प्रत्येक समय में सभी को स्वीकार्य नहीं रहा है इसे अवैध नहीं ठहराता है।

बोध–प्रश्न I

ध्यातव्यः क) उत्तर हेतु दिये गये रिक्त स्थान का उपयोग कीजिए।

ख) अपने उत्तर का मिलान इकाई के अन्त में दिये गये उत्तर से कीजिए।

1. प्राकृतिक नैतिक नियम क्या है?

.....
.....
.....
.....

MAADHYAM IAS

2. प्राकृतिक नैतिक नियम सार्वभौमिक रूप से वैध क्यों है?

.....
.....
.....
.....

4.5 प्राकृतिक नैतिक नियम एवं परिवर्तन

व्यावहारिक बुद्धि के मानकों की विभिन्न स्तरीय निश्चितता और विभिन्न परिस्थितियों में व्यक्तिगत साकार मानकों की क्षीण निश्चितता हमें यह सोचने पर बाध्य करती है कि प्राकृतिक

नियम सर्वोच्च सिद्धान्त से निर्मित एक खाका है तथा इसके तत्वाधान में ही बुद्धि को व्यक्तिगत मानकों को खोजना होता है। प्राकृतिक नियम केवल निर्धारित मानकों की सीमित प्रणाली नहीं है। केवल वे मानक जो 'प्रकृति के अनुसार' होते हैं, अपरिवर्तनशील होते हैं। किन मूर्त क्रियाकलाप को हत्या, चोरी और व्यभिचार कहा जयेगा, यह श्रेष्ठ और व्यक्तिगत मानकों दोनों के अनुसार बदल जाते हैं।

नीतिशास्त्र इतिहास के परे भी जाता है। हालाँकि, इसके व्यक्तिगत मानकों को प्रत्येक परिस्थितियों में वैध होने की आवश्यकता नहीं है। व्यावहारिक बुद्धि के मानकों की परिवर्तनशीलता और सीमितता व्यक्तियों की नैतिक मानकों को ग्रहण करने की जन्मजात अक्षमता के कारण नहीं होती है, न ही यह दोषपूर्ण अज्ञानता के कारण होती है। यह परिस्थितियों की आकस्मिकता एवं विविधता के फलस्वरूप होती है। इसके अतिरिक्त, मानव व्यवहार कुछ निश्चित अर्थों में बदलता रहता है। प्रकृति के बहुत सारे नियम हैं जिससे व्यक्तिगत और पवित्र नियम एक हो जाते हैं तथा ये नियम का सही अर्थ बनाते हैं तब ये बदली हुई परिस्थितियों के अनुरूप होते हैं। उदाहरण के लिए, पड़ोसी से ईर्षा न करने का नियम हत्या के निषेध के साथ जोड़ा जाता है। इसी प्रकार से चोरी न करने से सम्बन्धित निषेध भी है। व्यावहारिक बुद्धि सार्वभौमिक नियमों को जानती है और विशिष्ट परिस्थिति में सार्वभौम नियमों की अनुभूति के लिए मूर्त मानकों को प्राप्त करती है। यह तथ्य कि मूर्त मानक स्थान के अनुसार बदल जाते हैं तथा सर्वभौमिक मानकों के समान निश्चितता को प्रदर्शित नहीं करते हैं, प्राकृतिक नियम की कमजोरी या दोष नहीं है। बल्कि, ऐसा इस तथ्य के कारण है कि बुद्धि सीमित वास्तविकता है और ठोस परिस्थितियां उच्च स्तर को निश्चतता प्रदान नहीं करती हैं।

MADHYAM IAS
'way to achieve your dream'

बुद्धि विशिष्ट परिस्थितियों में विशिष्ट मानकों की पहचान करती है। संवेदनशील व्यक्तियों का अनुभव यहाँ पर महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है। कुछ विशिष्ट परिस्थितयों में सार्वभौमिक नियमों के कुछ अपवाद होते हैं। उदाहरण के लिए, एक सर्वमान्य तथ्य है कि उधार ली गयी वस्तु या सामान जो किसी ने सुरक्षित रखने के लिए दिया है उन्हें वापस लौटा देना चाहिए। लेकिन व्यक्ति को उस व्यक्ति को हथियार आसानी से नहीं लौटाना चाहिए जो शराब पिये है और किसी को मारने की इच्छा रखता है।

जर्मन के नीतिशास्त्री एबरहार्ड स्कॉकेन्हॉफ के अनुसार, नियमों की वह सूची जो बदलती हुई परिस्थितियों के अनुसार नये नियमों को समाहित नहीं कर पाती है, अतर्कसंगत बन जाती है। मानवाधिकारों की तालिका, जो प्रत्येक समय के लिए वैध हो, को लिखना असंभव है क्योंकि सम्पूर्ण वास्तविकताओं को समझना असंभव होता है। नैतिक नियम अधिकारों की परिपूर्ण तालिका नहीं है बल्कि यह बुद्धि की शक्ति जो सार्वभौमिक सिद्धांतों की खोज करती है। ये सिद्धान्त विभिन्न संस्कृतियों में विभिन्न रूप ले लेते हैं।

नैतिक नियम उस ऐतिहासिकता का विरोध करता है जिसका मानना है कि व्यक्ति एक निरन्तर विकसित होता जीव है तथा उसे इतिहास के द्वारा ही प्रकट किया जा सकता है। ऐतिहासिकता अपरिवर्तनीय मानव प्रकृति के अस्तित्व में विश्वास नहीं करती है। व्यक्ति ऐतिहासिकता का प्रतिरोध करता है और कहता है कि एक सर्वनिष्ठ तत्वमीमांसीय मानव प्रकृति होती है और यह ऐतिहासिक अवस्थाओं में ही प्रदर्शित होती है। प्रकृति इतिहास में शुरू से अंत तक तत्त्वतः समान रहती है। नैतिक नियम, जिसकी खोज मानव करता है, भी ऐतिहासिक परिस्थितियों में उद्भूत हैं। लेकिन, यह तथ्य न ही सर्वनिष्ठ मानव प्रकृति के अस्तित्व का खण्डन करता है और न ही सार्वभौमिक नैतिक नियमों का।

इतिहास मानव और उसके व्यवहार का एक प्रमुख आयाम हैं। इसलिये उसे जो मानव में तथा उसके व्यवहार में स्थाई हैं को एतिहासिक अभिव्यक्ति में ही देखा जा सकता है। मानव इतिहास में रहता है। वह इतिहास के वृत्तांत से मानव नहीं बनता है। वह अपनी प्रकृति के अनुसार अपने शरीर–आत्मा की संरचना के अनुसार इतिहास बनाता है।

प्रकृति और इतिहास एक दूसरे के विरोधी नहीं हैं। मानव एक ऐतिहासिक सत्ता है अर्थात् वह अपने आप को इतिहास में सीमित सत्ता के रूप में अनुभूत करता है। मानव की बुद्धि भी एक ऐतिहासिक वास्तविकता है तथा यह स्वयं को ऐतिहासिक सन्दर्भ में अनुभव करती है। वह पवित्र आत्मा की सीमा में नहीं रहती है। इतिहास मानव और उसके व्यवहार के लिए बहुत आवश्यक है। अतः, प्राकृतिक अधिकार, जैसे कि शुभ और अशुभ की नैतिक कसौटी के विचार जो प्रत्येक समय और काल को आगे बढ़ाते हैं, स्वयं को इतिहास में प्रकट करता है। यद्यपि, ऐतिहासिक परिस्थितियों पर बुद्धि की निर्भरता सत्य को खोजने की क्षमता को नगण्य नहीं करती है न ही इसका अर्थ यह है कि ऐतिहासिक संदर्भों में खोजे गये सत्य केवल और केवल उस विशेष के लिए ही मान्य होते हैं।

बुद्धि इतिहास के अनुभव पर आधारित होती है। यह बुद्धि ही मनुष्य को प्रत्येक परिस्थिति के लिए तैयार करती है। बुद्धि के साथ मनुष्य इतिहास का भाग बनता है। बुद्धि ही मनुष्य को इतिहास से परे जाने में सहायता करती है। ऐतिहासिक घटनाओं और बदलावों की अत्यधिक तीव्रता प्राकृतिक नियम को सापेक्ष बनाती है। यह सत्य है कि नीतिपरक अन्तर्दृष्टि प्रत्येक काल में मान्य होती है। लेकिन इसकी ऐतिहासिक अनुभूतियां मूर्त परिस्थितियों में सामंजस्य बैठाने से सम्बधित होती है।

4.6 प्राकृतिक नैतिक नियम एवं मानव गरिमा

मानव जाति में एक आभ्यन्तर पक्ष होता है। इसके केन्द्र में मानव व्यक्ति होता है। यह ही नैतिकता का उद्देश्य है कि उस पक्ष की रक्षा करें। प्राकृतिक नियम की न्यूनतम आवश्यकताएं

ही मानव अधिकार और मानव गरिमा की न्यूनतम आवश्यकताएँ होती हैं। इस प्रकार, कहा जा सकता है कि नैतिकता के लिए कुछ मूलभूत आवश्यकताएँ होती है। और इसी प्रकार से मानव गरिमा एवं अधिकारों को मानने के लिए एवं माँग करने के लिए भी कुछ मूलभूत आवश्यकताएँ होती हैं। मानव गरिमा एवं अधिकार सार्वभौमिक होते हैं और ये किसी भी व्यक्ति अथवा सरकार द्वारा अभियाचित हो सकते हैं। मानव गरिमा का आदर सिर्फ मानव की आध्यात्मिक शक्तियों एवं उसके विश्वास का ही आदर नहीं है। यह मानव की संपूर्णता, उसके शरीर, आत्मा का आदर है। मानव इस संसार में अपना जीवन एक देवदूत की तरह ही नहीं बिताता है बल्कि एक मूर्त व्यक्ति के रूप में बिताता है।

नैतिक नियम में अधिकार एवं नैतिकता एक–दूसरे से जुड़े हैं। अधिकार वे नैतिक दावे होते हैं जो एक व्यक्ति दूसरे व्यक्ति या व्यक्तियों पर करता है। ये दावे उस सीमा तक विस्तारित होते हैं जब प्राकृतिक नियम अधिकारों को व्यावहारिक बुद्धि के सर्वोच्च सिद्धान्त से निकलते हुए मानते हैं और जब नैतिकता स्वंय व्यावहारिक बुद्धि में होती है, और अधिकार नैतिकता से सीधे जुड़े होते हैं। मानव अधिकार एवं नीतिशास्त्र एक दूसरे से सम्बन्धित होते हैं। ये प्राथमिक लक्ष्यों एवं जीवन के मूल्यों की रक्षा करते हैं। मानव अधिकार, मूल्यों की तरह, व्यावहारिक बुद्धि के सिद्धांतों की ऐतिहासिक अभिव्यक्ति होते हैं।

प्रत्येक काल में मानव अधिकार वह न्यूनतम शर्त होती है, जिसके अन्तर्गत मानव को एक नीतिपरक विषय के रूप में देखा जाता है और वह अपने कार्यों के लिए उत्तरदायी होता है। प्राकृतिक मानव अधिकार नीतिपरक होने की न्यूनता को प्रदर्शित करते हैं। लेकिन इसका अध्ययन किसी भी मानव–शास्त्र, जो एक संपूर्ण मानव जीवन को प्रदर्शित करता है, में किया जा सकता है।

प्राकृतिक मानव अधिकार नियमों का ज्ञान है, उस नैतिक नियम का ज्ञान है जो मानव प्रभुत्व से स्वतंत्र होता है। अंतर्राष्ट्रीय मानव अधिकार का गठन प्राकृतिक अधिकारों के आधार पर हुआ है। प्राकृतिक अधिकार अपने आप से आगे का संकेत करते हें। वे धर्मों की धनाढ्यता की ओर मानव जीवन को सम्पूर्ण करने वाले ढ़ंगों को प्रस्तुत करने की ओर संकेत करते हैं।

राज्य विधि–शासन को संभालते हैं। विधि–शासन का प्रमुख उद्देश्य मानव को अमूल्य जीवन की अनुभूति कराना है। यह मानव को स्वयं को एक नीतिपरक जीव समझने के लिए आवश्यक न्यूनतम स्थान प्रदान करने की गारंटी देता है। विधि–शासन में मानव के अलग न किए जा सकने वाले अधिकारों एवं उसके कर्तव्यों को स्वीकार करता है।

मानव अधिकार स्वतन्त्रता की अपेक्षा करते हैं तथा बुद्धि में समाहित होते हैं, अधिकार के प्रत्यय सम्बन्धी समझ में हुए बदलाव के कारण नये अधिकारों की खोज सम्भव हुई हैं। नयी अन्तर्दृष्टियों और नयी परिस्थितियों के अनुसार अधिकार (नागरिक अधिकार) बदल सकते हैं।

नागरिक अधिकार प्राकृतिक अधिकारों के अधीन होते हैं। जर्मन नीतिशास्त्री, अर्नेस्ट वॉल्फगैंग बोकेनफोर्ड के अनुसार, प्राकृतिक नियम और अधिकार व्यावहारिक बुद्धि के विचार करने के साधन हैं। मानव जीवन के मूलभूत लक्ष्य के प्रकाश में यह स्थापित मानव अधिकोरों को न्यायसंगत ठहराता है। यह उनका विरोध भी करता है तथा इसके द्वारा ही मानव अधिकारों के विकास के लिए रास्ता तैयार करता है।

4.7 प्राकृतिक नियम एवं आन्तरिक अशुभ/बुराई की संकल्पना

यदि कुछ आंतरिक रूप से शुभ है तो तर्कतः कुछ आन्तरिक अशुभ भी होना चाहिए, क्योंकि आन्तरिक शुभ पर आघात करने का अर्थ है आन्तरिक अशुभ कार्यों को स्थापित करना। आन्तरिक अशुभ शब्द का प्रयोग वहाँ पर अपरिहार्य होता है जहाँ मानव के नीतिपरक विषय का सम्बन्ध आपसी आदर से होता है।

आन्तरिक अशुभ का विचार केवल चर्च का विशेष शिक्षण नहीं है। यह उस लम्बी नैतिक परम्परा की सामान्य विशेषता है जिसकी शुरूआत अरस्तू से होती है तथा ऑगस्टाइन, थामस, कान्ट तथा अन्य सभी गैर–उपयोगितावादी अर्थात् आज के नीतिशास्त्रियों के शिक्षण में जारी है।

किसी भी व्यक्ति को आन्तरिक बुराई का कार्य नहीं करना चाहिए। आन्तरिक बुराई का कार्य वह है जो निरपेक्ष अधिकारों अर्थात् दूसरे व्यक्ति के अहरणीय अधिकारों पर इस अज्ञानता के साथ आघात करता है कि इस प्रकार के उल्लंघन का पूरे समाज पर क्या प्रभाव पड़ेगा। आन्तरिक शुभ मानव के अस्तित्व के लिए आवश्यक न्यूनतम परिस्थितियों पर आघात करता है। ये न्यूनतम परिस्थितियाँ नीतिपरक विषय से मुक्त आत्म–संकल्प के लिए संभावनाएँ हैं। आन्तरिक रूप से शुभ कार्य व्यक्तिगत गरिमा पर आघात करता है। इसके ज्वलंत उदाहरण बलात्कार एवं उत्पीड़न है।

प्राकृतिक नियम के नकारात्मक आदेश आन्तरिक रूप से अशुभ कार्यों का निषेध करते हैं। जिस प्रकार से मानव गरिमा का प्रत्यय, मानव गरिमा की प्रतिरक्षा के लिए आवश्यक सभी कानूनों की गणना करने में सक्षम नहीं है, उसी प्रकार से आन्तरिक अशुभ का विचार, आंतरिक अशुभ के कार्यों की सम्पूर्ण सूची बनाने में सक्षम नहीं है। आंतरिक अशुभ का प्रत्यय मानव को ऐसे विचारों/कार्यों को स्मृत कराता है जो उसे कभी नहीं करने चाहिए, अधिक विस्तार से गणना किये बिना मनुष्य को प्रत्येक कालध्समय में आंतरिक अशुभ से बचना चाहिए।

बलात्कार, हत्या (निर्दोष और मासूम मानवों का वध), उत्पीड़न, दूसरों का अविश्वास (वचन का उल्लघंन) और विवाह में यौन अविश्वास आदि कुछ आंतरिक रूप से अशुभ कार्य हैं। बलात्कार अशुभ इसलिये होता है क्योंकि इसमें मानव की गरिमा का उल्लंघन होता है। यह गरिमा

स्वतंत्रता एवं बुद्धि में समाहित होती है। बलात्कार कभी भी मानव गरिमा के सामंजस्य में नहीं होता है।

निर्दोष का अपना अधिकार है, ऐसा अहरणीय अधिकार जो समुदाय की भलाई के साधन के रूप में प्रस्तुत नहीं किया जाता है। अन्य की गरिमा और आंतरिक मूल्य और अन्य की स्वतः मूल्यपरकता ही अन्य व्यक्तियों को साध्य के रूप में प्यार करने का सत्तामीमांसीय आधार होता है। मासूम का उत्पीड़न एक प्रकार के आंतरिक अशुभ का उदाहरण है जो कि किसी भी प्रकार के शुभ के लिये नहीं किया जाना चाहिए। इसकी अशुभता इस तथ्य में समाहित है कि यह निरपेक्ष अधिकार, ऐसा अधिकार जो व्यक्ति को स्वयं को पहचाने में सहायता करता है, का उल्लंघन करता है। उत्पीड़न निर्दोष की गरिमा के विरूद्ध कृत्य है।

सामान्य परिस्थितियों में निर्दोष की हत्या का निषेध वैध होता है लेकिन सीमान्त क्षेत्रों के सन्दर्भ में एवे काल्पनिक परिस्थितियों में ऐसा नहीं होता है। इस निषेध के कुछ अपवाद होते हैं। उदाहरण के रूप में, सेना का जवान अपने साथी को इसलिये मार देता है ताकिम वह शत्रु के हाथों में न आ जाये। अन्यथा उसका उत्पीड़न होगा और उसकी हत्या कर दी जायेगी। इसी प्रकार से दुर्घटना के पश्चात जलती कार में बैठे व्यक्ति और जिसे बाहर नहीं निकाला जा सकता है को मारना भी है। लेकिन यहां तक कि ये हत्याएं भी उक्ति 'किसी की हत्या मत करो' के विरूद्ध है। शरीर मानव–व्यक्ति की अभिव्यक्ति होता है। हत्या के निषेध का सम्बन्ध मानव के शारीरिक अस्तित्व से है। मानव को एक बौद्धिक प्राणी कहा जाता है। लेकिन वह शरीर के बगैर बौद्धिक रूप से जीवित नहीं रह सकता है। इस प्रकार से हत्या न करने के आदेश का सम्बन्ध मानव की गरिमा का सम्मान करने से है।

इस सन्दर्भ में स्कॉकेन्हॉफ प्रयोजनमूलकता एवं नीतिपरकता दोनों का उल्लेख करते हैं। व्यक्ति के लिए प्रयोजनमूलकता के प्रति निष्ठावान होते हुए आंतरिक अशुभ के विचार का बचाव करना संभव नहीं है। प्रयोजनमूलक व्यक्ति निर्दोषों की हत्या नहीं किये जाने संबंधी आदेश का आदर करते हो सकते हैं। लेकिन उनके इस दृढ़ विश्वास का आधार आंतरिक अशुभ की स्वीकारोक्ति के कारण नहीं हैं। बल्कि वे ऐसा इसलिये सोचते हैं क्योंकि उनके विचार में निर्दोषों की हत्या नहीं करने का आदेश समाज में लम्बे समय से अधिक लाभप्रद होगा। प्रयोजनमूलकता और नीतिपरकता दोनों एक दूसरे के पूरक हैं। जहाँ मानव जाति के अतिरिक्त अन्य जीवों से सम्बंधित शुभ पर विचार होता है वहाँ प्रयोजनमूलकता व्यवस्था में रहती है। लेकिन जब मानव जाति के बारे में, उनकी गरिमा के बारे में, उनकी गरिमा के बारे में विचार होता है तब नीतिपरकता अत्यंत आवश्यक होती है। यह केवल आंतरिक रूप से अशुभ कार्यों की निकृष्टता के कारण होता है। कि व्यक्ति लम्बे समय तक आतंकवादियों एवं ब्लैकमेलरों के विरूद्ध लड़ सकता है।

MAADHYAM IAS

4.8 (प्राकृतिक) नैतिक नियम की आलोचना

प्रधान नैतिक सिद्धान्त– अच्छा करो, बुरा से बचो– के प्रकाश में व्यावहारिक बुद्धि क्रियाकारी प्रवृत्तियों को निर्देशित करती है। व्यावहारिक बुद्धि कि निर्देश देने की क्षमता आज्ञा व्यवस्था की स्थापना में कार्य करने की इच्छाओं के आदेश पर निर्भर करती है। कार्येच्छाएँ नैतिकता पूर्व हैं। व्यावहारिक बुद्धि उन्हें व्यक्ति के उद्देश्य को पूरा करने का आदेश देती है। कार्येच्छाएँ अपना नैतिक गुण विवेक के माध्यम से प्राप्त करती हैं। विवेक उनमें अच्छे और बुरे का प्रतिमान निर्मित करता है।

मानव में कुछ नियामक शक्तियाँ होती हैं जिनसे इनकार नहीं किया जा सकता। वर्णनात्मक (Descriptive) अथवा सकारात्मक (Positive) विज्ञानों के ज्ञान के साथ तेरहवीं शती के एक्वीनास की तुलना में आधुनिक मानव नियामक शक्तियों/कार्येच्छाओं को बेहतर समझने की स्थिति में है।

थॉमसवादी प्राकृतिक नैतिक नियम की अवधारणा की दूसरी आलोचना यह है कि यह चक्रक दोष (Petitio Principil) उत्पन्न करती है। इसका तर्क यह हैय प्रकृति का प्रत्यय उस रिक्त आवरण की तरह है जो समाजशास्त्र एवं मानव विज्ञान की अनियंत्रित अंतर्वस्तुओं से भरा हुआ है तथा ये अंतर्वस्तुएँ मानव नीतिपरकता की गरिमा में अंतर्निहित होती हैं। चक्रक दोष शुद्ध रूप से इस तथ्य में है कि अंतर्वस्तु की नीतिपरक गरिमा को सिद्ध करने की बजाय यह पूर्वकल्पित करता है कि आकस्मिक रूप से पूरित प्रकृति का प्रत्यय नैतिकता पूर्ण है।

MAADHYAM IAS

लेकिन प्राकृतिक नियम के विचार की विभिन्न श्रेणियों का अस्तित्व चक्रक दोष के अभियोग का खंडन करता है। यदि प्रकृति शब्द की अंतर्वस्तु स्वेच्छित रूप से पूरित है और बाद में इसमें नीतिपरक गरिमा आती है तब अंतर्वस्तु के प्रत्येक भाग में समान निश्चितता होनी चाहिए। लेकिन थॉमसवादी प्राकृतिक नैतिक नियम की अवधारणा में ऐसा नहीं होता है। यह सत्य नहीं है कि थॉमस प्रकृति के प्रत्यय के रिक्त आवरण किसी भी अंतर्वस्तु से पूरित हैं। बल्कि वे प्रकृति के प्रत्यय में नैतिकता की पूर्वधारणाओं की गणना करते हैं। व्यक्ति, का अस्तित्व बुद्धि तर्क से है और वह अपने अस्तित्व के लिए उत्तरदायी है। व्यक्ति को एक बौद्धिक प्राणी के रूप में प्रत्येक व्यक्ति के अस्तित्व के 'शुभ और सत्य' को पहचानना चाहिए तथा यह यथार्थ पहचान उसे संतुष्टि पाने में सहायता करती है। व्यक्ति की प्रवृत्ति शुभ और सत्य की ओर अग्रसर होने की होती है तथा बुद्धि इस शुभ और सत्य की पहचान करती है तथा उन्हें सहमति प्रदान करती है। अंत में, व्यक्ति स्वयं की अनुभूति जीव–आत्मा के यथार्थ रूप से दूसरे व्यक्तियों के सम्बंध में तथा स्वयं की आत्मा की शुभ और सत्य से अनूरूपता के सम्बंध में करता है। ये पूर्वधारणाएं केवल एक पक्षीय सिद्धान्त नहीं हैं। जिससे मानव पुनः

एकपक्षीय मानकों का आहरण करता है। निःसंदेह ये ही वे यथार्थ परिस्थितियाँ हें जो नैतिकता को संभव बनाती हैं।

थॉमस के सिद्धान्त की तीसरी आलोचना यह है कि वे मानव की ऐतिहासिक/अपरिवर्तनीय समझ रखते हैं। इसका उत्तर यह है कि थॉमस मानव प्रकृति में स्वीकार करने योग्य परिवर्तनों को स्वीकार करते हैं। यह व्यावहारिक बुद्धि के दोनों स्तरों में प्रमाणित होता है। दूसरा स्तर विभिन्न परिस्थितियों में मानाकों के परिवर्तन को स्वीकार करता है और मानव प्रकृति को विभिन्न युगों/कालों में नये प्रकार से जीने की अनुभूति प्रदान करता है। जब थॉमस मानव प्रकृति में परिवर्तन की बात करते हैं तब उनका आशय यह नहीं होता है कि मानव परिवर्तन होकर मानव के अतिरिक्त कुछ और बन जाता है।

मानव प्रकृति में परिवर्तन होता रहता है लेकिन प्रत्येक काल एवं संस्कृति में उससे एक अपरिवर्तनीय तत्व की अपेक्षा की जाती है। यह मानव की गरिमा के प्रत्यय से प्रमाणित होता है। मानव–गरिमा प्रत्येक पीढ़ी के लिए मान्य (वैध) होती है। मानव की गरिमा समय के साथ घटती या बढ़ती नहीं है। व्यक्ति में गरिमा के आधार पर कुछ निश्चित अधिकार होते हैं। ये अधिकर भी सदैव स्थिर रहते हैं। अन्तर केवल अधिकारों की अनुभूति का होता है। उदाहरण के रूप में किसी समय में औरतों को मतदान करने का अधिकार नहीं था। मानव प्रकृति परिवर्तित होती है।

मानव विभिन्न संस्कृतियों में अपने आपको विभिन्न प्रकार से व्यक्त करता है। शहरी मानव का अस्तित्व गुफावासी मानव के अस्तित्व से भिन्न है। लेकिन, वे दोनों मानव ही हैं। मानव स्वभाव एक विशिष्ट संस्कृति में स्वयं को अभिव्यक्त करता है। लेकिन कोई संस्कृति इसे समाप्त नहीं कर सकती है। मानव स्वभाव सभी ऐतिहासिक अभिव्यक्तियों से परे होता है।

4.9 सारांश

इस इकाई में हमने प्राकृतिक नैतिक नियम और सार्वभौमिकता की चर्चा की। प्राकृतिक नियम के प्रति हमारी समझ यह स्पष्ट करती है कि नैतिक मूल्यों और बुद्धि के बीच एक महत्वपूर्ण सम्बन्ध होता है। अच्छाई स्वयं को बुद्धि के प्रति व्यक्त करती है अथवा, यह केवल बुद्धि के कारण होता है कि अच्छाई अनुभूत होती है। किसी भी नियम की व्यवहार्यता यही होती है कि वह बुद्धि संगत होता है तथा नैतिक अशुभ का सार यह है कि यह बुद्धि के आदेश कि विरूद्ध होता है।

प्राकृतिक नियम वह है जिसकी खोज व्यक्ति में बुद्धि के द्वारा हुई है। प्राकृतिक नियम व्यक्ति के व्यवहार में अन्तर्निहित होते हैं तथा जिनका सार कभी नहीं बदलता है। प्रत्येक अच्छे और सकारात्मक नियम का आधार प्राकृतिक नियम होता है। इसलिए प्रत्येक मानव अधिकार प्राकृतिक नियम पर आधारित होता है। कोई भी व्यक्ति आंतरिक अशुभ के विचार को प्राकृतिक नियम के बिना नहीं समझ सकता। शुभ की खोज अपने आप में अशुभ की खोज का मार्गदर्शन करती है।

बोध–प्रश्न II

ध्यातव्यः क) उत्तर हेतु दिये गये रिक्त स्थान का उपयोग कीजिए।

ख) अपने उत्तर का मिलान इकाई के अन्त में दिये गये उत्तर से कीजिए।

1. क्या प्राकृतिक नियम बदलते रहते हैं?

.....
.....
.....
.....

MADHYAM IAS
'way to achieve your dream'

2. आंतरिक अशुभ क्या है?

.....
.....
.....
.....

4.10 कुंजी शब्द

नियम : नियम नियमावली का वह तंत्र है जिसे साधारणतया निश्चित संस्थानों के द्वारा लागू किया जाता है।

प्रकृति : प्रकृति के लिये अंग्रेजी शब्द नेचर (Nature) की उतपत्ति लैटिन शब्द नेचुरा (Natura) से हुई है, जिसका अर्थ जन्म है। नेचुरा शब्द ग्रीक शब्द फिसिस (Physis) का लैटिन अनुवाद है जिसका वास्तविक सम्बन्ध पौधों, जानवरों एवं संसार की अन्य आंतरिक विशेषताओं से होता है, जिसका विकास स्वयं के अनुरूप होता है।

4.11 अन्य सहायक अध्ययन–सामग्री एवं सन्दर्भ

क्युरन, चार्ल्स एण्ड मैककॉरमिक, रिचर्ड ए., (एडि.). *रीडिंग इन मोरल थियोलॉजी,* नं. 7. न्यू यॉर्क / माहवाहः पॉलिस्ट प्रेस, 1991.

फुच्स, जोसेफ. *नेचुरल लॉ.* ट्रान्स. हेलमेट रेक्टर और जॉन ए. डॉवलिंग. डबलिनरू गिल एण्ड सन, 1965.

पोडिमट्टम, फैलिक्स. *रिलेटिविटि ऑफ नेचुरल लॉ इन दि रिन्युअल ऑफ मॉरल थियोलॉजी.* बॉम्बेः इग्जामिनर प्रेस, 1970.

सकोकेनहॉफ, इबरहार्ड. *नेचुरल लॉ एण्ड ह्यूमन डिग्निटीः यूनिवर्सल एथिक्स इन एन हिस्टोरिकल वर्ल्ड.* ट्रांस. बायन मैकनेल. वाशिंगटन डीसीः द कैथोलिक यूनिवर्सिटी ऑफ अमेरिका प्रेस, 2003.

4.12 बोध–प्रश्नों के उत्तर

बोध–प्रश्न I

1. यह मानव की बौद्धिक प्रकृति के आधार पर बुद्धि द्वारा खोजा गया नैतिक नियम है।

2. प्राकृतिक नियम सर्वत्र वैध (मान्य) है क्योंकि यह मानव में स्थित सार्वभौमिक प्रकृति पर आधारित है।

बोध–प्रश्न II

1. सर्वाधिक आधारभूत प्राकृतिक नियम कभी नहीं बदलता है। केवल प्रत्येक व्यक्ति के लिए इसका अनुप्रयोग भिन्न होता है।

2. आंतरिक अशुभ क्रिया वह है जो दूसरे मानव के निरपेक्ष अधिकार पर हमला करती है। इस बात को समझे बिना कि उस कार्य के क्या सामाजिक लाभ होंगे। जिस प्रकार से बुद्धि सर्वाधिक आधारभूत प्राकृतिक नियम का ग्रहण करती है, उसी प्रकार से यह कुछ कार्यों को आंतरिक अशुभ की क्रिया के रूप में ग्रहण करती है।

MAADHYAM IAS
'way to achieve your dream'

इकाई 5 नैतिक सापेक्षतावाद

रूपरेखा

5.0 उद्देश्य

5.1 परिचय

5.2 परिभाषा

5.3 नैतिक सापेक्षतावाद के विभिन्न प्रकार

5.4 दार्शनिक दृष्टि

5.5 सारांश

5.6 कुंजी शब्द

5.7 अन्य सहायक अध्ययन–सामग्री एवं सन्दर्भ

5.8 बोध–प्रश्नों के उत्तर

5.0 उद्देश्य

MAADHYAM IAS

नैतिकता की अवधारणा को समझने के लिए कोई एकमात्र पद्धति नहीं है। बहुधा नैतिकता के सम्बन्ध में भांति–भांति की उलझनें होती हैं, क्योंकि अनेक दार्शनिक नैतिकता को भ्रमात्मक मानते हैं। अनेक नैतिक स्थापनाओं में से नैतिक सापेक्षतावाद को अत्यधिक लोकप्रिय माना जाता है। इस अवधारणा का मत है कि हम व्यवहार और हमारी संस्कृति के नियमों, वरीयताओं, उम्र, इत्यादि से बद्ध होते हैं। प्रस्तुत इकाई,

- नैतिक सापेक्षतावाद के सिद्धान्त के दार्शनिक अर्थ को प्रस्तुत करेगी,
- भिन्न प्रकार के नैतिक सापेक्षतावादी मतों को प्रस्तुत करेगी।

5.1 परिचय

* सुश्री लिजाश्री हजारिका, विद्यावाचस्पति शोधक, दर्शन केन्द्र, जवाहरलाल नेहरू विश्वविद्यालय, दिल्ली, अनुवादक– श्री आशुतोष व्यास, परामर्शदाता (दर्शनशास्त्र), एसओआईटीएस, इग्नू

दार्शनिकों ने नैतिक सिद्धान्तों को तीन सामान्य विषय–क्षेत्रों में विभाजित किया है– मानकीय नीतिशास्त्र, अधिनीतिशास्त्र, और अनुप्रयुक्त नीतिशास्त्र। मानकीय नीतिशास्त्र परामर्शनीतिशास्त्र भी कहलाता है, क्योंकि यह नैतिक समस्याओं का अध्ययन करता है और किसी व्यक्ति को कैसे कार्य करना चाहिए की खोज में संलग्न रहता है। यह किसी व्यक्ति द्वारा किए गये कृत्य के तथ्यों अथवा क्या करना चाहिए के बारे में कोई व्यक्ति क्या सोचता है, की चर्चा नहीं करता है। अधिक विशिष्ट रूप से कहा जाये, इस विधा का सम्बन्ध उन निर्यणों से है जो उन नियमों को स्थापित करते हैं, जिनसे कोई कृत्य उचित और अनुचित बनता है। यह अत्यधिक व्यावहारिक भूमिका निभाता है, जिसमें उन नैतिक मापदण्डों तक पहुँचते हैं, जो उचित और अनुचित व्यवहारों (चलनों) को नियमित करते हैं। यह ग्रहण करने योग्य अच्छी आदतों, पालनीय कर्त्तव्यों की अभिव्यक्ति को सम्मिलित कर सकता है। उदाहरणार्थ, ईमानदारी को प्रोत्साहित किया जाना चाहिए और बेईमानी को हतोत्साहित करना चाहिए। अनुप्रयुक्त नीतिशास्त्र गर्भपात, भ्रूणहत्या, पशु–अधिकार जैसे विशिष्ट विवादित मुद्दों के परीक्षण को सम्मिलित करता है। अधिनीतिशास्त्र विश्लेषणात्मक नीतिशास्त्र भी कहलाता है। यह विधा नैतिक पदों के अर्थों के स्पष्टीकरण का चिन्तन करती है। इसका मूल प्रश्न है, 'क्या है'; शुभ, उचित, अनैतिक इत्यादि। यह नैतिक सिद्धान्तों के स्रोत और उनके आशयों का अन्वेषण करते हैंय क्या वे मानवीय संरचना हैं अथवा वे मानवीय सम्वेदनाओं को सम्मिलित करते हैं?

अधि–नीतिशास्त्र के दो प्रमुख प्रश्न हैं– 1) नैतिकता का मानव से स्वतन्त्र अस्तित्व है या यह मानव पर निर्भर है, और 2) हमारे नैतिक निर्णयों और व्यवहारों का मूलभूत मानसिक आधार क्या है। अधिनीतिशास्त्र नैतिक दर्शन का अत्यधिक अमूर्त क्षेत्र है, क्योंकि यह नहीं जानना चाहता कि क्या किया गया, अथवा किस प्रकार के कृत्य अच्छे (शुभ) या बुरे (अशुभ) हैंय बल्कि यह जानना चाहता है कि शुभ और अशुभ का स्वरूप क्या है, क्या है जो नैतिक रूप से उचित या अनुचित है। इन प्रश्नों के उत्तरों के आधार पर अधि–नैतिक स्थापनाओं का वर्गीकरण किया जा सकता है। अधि नीतिशास्त्र में सबसे बड़ा विवाद नैतिक–वस्तुवाद और नैतिक गैर–वस्तुवाद के मध्य विभाजन रहा है। नैतिक वस्तुवादियों का मानना है कि नैतिक तथ्य वस्तुगत तथ्य हैं, जो जगत में मानवीय अभिवृत्तियों से स्वतन्त्र पाये जाते हैं। वस्तुएं हमसे स्वतन्त्र रूप में अच्छी या बुरी हैं, और हम उनके साथ हैं और नैतिकता की खोज करते हैं। नैतिक वस्तुवाद के प्रतिपादक वस्तुवादी कहलाते हैं। इसमें अन्तर्निहित है कि वस्तुगत मूल्य या नैतिक तथ्य जगत के अंग या ताना–बाना हैं। नैतिक वस्तुवादी संज्ञानवादी भी हैं, क्योंकि उनका मानना है कि नैतिक गुण सत् हैं और ये गुण कुछ भावों/आशयों/संदर्भों में व्यक्तियों की सोच, विश्वास, और निर्णयों से स्वतन्त्र हैं। नैतिक गैर–वस्तुवादी का मत है कि नैतिक तथ्य जगत में नहीं हैं, जब तक कि हम उन्हें वहाँ न रखें, कि नैतिक–तथ्य हमारे द्वारा निर्धारित होते हैं। इस विचार में, नैतिकता खोजी नहीं जाती, अपितु आविष्कृत की जाती है। गैर–वस्तुवादियों के लिए, कोई नैतिक निर्णयों के समक्ष कोई नैतिक सत्य नहीं है, और

नैतिकता के समक्ष कुछ भी शेष नहीं रहता। नैतिक अ–वस्तुवादी सम्मिलित करता है कि या तो नैतिक गुणों के अस्तित्व का पूर्णतया नकार है या फिर यह स्वीकरण कि नैतिक गुणों का अस्तित्व है, परन्तु यह अस्तित्व मन पर निर्भर है। नैतिक कथनों पर निर्भर इसके अनेक रूप हैं कि नैतिक कथन आत्मनिष्ठ दावे हैं (नैतिक आत्मनिष्ठतावाद), बिल्कुल भी सही दावे नहीं हैं (अ–संज्ञानवादी) या भ्रमपूर्ण वस्तुगत दावे हैं (नैतिक शून्यवाद)। नैतिक आत्मनिष्ठतावाद को नैतिक सापेक्षतावाद से भ्रमित नहीं करना चाहिए। नैतिक सापेक्षतावाद नैतिक आत्मनिष्ठतावाद से अधिक व्यापक है। नैतिक आत्मनिष्ठतावाद का मानना है कि नैतिक कथन दृष्टा (व्यक्ति) की अभिरुचि अथवा रूढियों से सत्य या असत्य बनते हैं अथवा कोई नैतिक वाक्य किसी के द्वारा धारण किये गये अभिवृत्ति को अन्तर्निहित करती है। नैतिक सापेक्षतावाद वह दृष्टि है जिसके लिए वस्तु का नैतिक रूप से उचित होना समाज द्वारा अनुमोदित होना चाहिए, जिसका निष्कर्ष यह निकलता है कि विभिन्न समाजों और इतिहास के विभिन्न कालों में भिन्न–भिन्न वस्तुएं या कृत्य उचित होते हैं।

5.2 परिभाषा

नैतिक सापेक्षतावाद नैतिक निरपेक्षवाद अथवा नैतिक वस्तुवाद की तुलना के सन्दर्भ में अधिक आसानी से समझा जा सकता है। निरपेक्षवाद का दावा है कि नैतिकता सार्वभौमिक सिद्धान्तों (नैतिक नियमों, विवेक) पर आश्रित होती है। नैतिक निरपेक्षवाद वह नैतिक विश्वास है कि नैतिक प्रश्नों के निर्णय हेतु निरपेक्ष पैमाने उपस्थित हैं, और कि कृत्य के सन्दर्भ से रहित कुछ विशेष कृत्यों को उचित या अनुचित कहा जा सकता है। इस प्रकार, कृत्य, कृत्य में संलग्न व्यक्ति, समाज, या संस्कृति के विश्वासों और लक्ष्यों के सन्दर्भ से रहित, आन्तरिक रूप से नैतिक या अनैतिक होते हैं। उदारणार्थ, ईसाई निरपेक्षवादी का विश्वास है कि ईश्वर हमारी सामुदायिक नैतिकता का निरपेक्ष/अन्तिम स्रोत है, और इसलिए नैतिकता ईश्वर की तरह अपरिवर्तनीय है। ईमानदारी सर्वोत्तम नीति है, यह मानवीय सहमति या असहमति से अनिर्भर रूप में/स्वतन्त्र रूप में सत्य या उचित है। वहीं नैतिक सापेक्षतावाद का मानना है कि नैतिकता किसी निरपेक्ष मापदण्ड पर आधारित नहीं होती है। बल्कि नैतिक सत्य चरों जैसे कि परिस्थिति, संस्कृति, व्यक्ति की भावनाओं इत्यादि पर निर्भर करता है। यह कि, किसी कृत्य का उचित या अनुचित होना उस समाज के मानकों पर निर्भर करता है, जिसमें यह कृत्य किया जाता है। समान कृत्य किसी एक समाज में नैतिक रूप से उचित हो सकता है, वहीं दूसरे समाज में अनुचित। उदाहरणार्थ, विवाहेत्तर सम्बन्ध किसी समाज में निंदनीय है, वहीं किसी अन्य समाज में स्वीकृत। नैतिक सापेक्षतावादियों के मत में, कोई भी सार्वभौमिक नैतिक मापदण्ड नहीं होते, जो प्रत्येक काल में प्रत्येक व्यक्ति पर प्रयुक्त किये जा सकें। किसी समाज के चलनों का मूल्यांकन करने वाले उसी समाज के नैतिक मापदण्ड होते हैं। भिन्न–भिन्न समुदायों के सदस्यों के मध्य नैतिक विवादों को सुलझाने या नैतिक विषयोंध्मामलों में सहमति

MADHYAM IAS

पर पहुँचने के लिए कोई समान/साझा दृष्टिकोण/सन्दर्भ–बिन्दु नहीं होता है। नैतिक सापेक्षतावादियों का मानना है कि किसी भी नैतिक प्रश्न का कोई एक सही उत्तर नहीं है। नैतिक सापेक्षतावादी वह दृष्टि है जो उस धारणा को नकारती है कि कोई एक, सार्वभौमिक वैध नैतिकता है, जिसे वैध नैतिक तर्क–प्रणाली/तर्क–प्रक्रिया द्वारा खोजा जा सकता है।

नैतिक सापेक्षतावादी इन बातों का समर्थन करते हैं कि– 1) किसी विशिष्ट दृष्टिकोण/स्थापना–बिन्दु के सापेक्ष नैतिक निर्णय सत्य या असत्य और नैतिक कृत्य उचित या अनुचित होते हैं। 2) कोई भी दृष्टिकोण वस्तुनिष्ठरूप से वरीय सिद्ध नहीं हो सकता। किसी समानध्साझा दावे के पदों में नैतिकता को परिभाषित करने के सभी प्रयास असफल हैं, क्योंकि वे प्रतिरक्ष्य स्थापना से सम्बन्धित आधारवाक्यों पर आश्रित होते हैं और इस दृष्टिकोण को न मानने वाले व्यक्ति द्वारा इसे स्वीकरना आवश्यक नहीं है। किसी नैतिक दृष्टिकोण के निष्कर्षतः किसी अन्य से उच्च सिद्ध न होने का यह तात्पर्य नहीं है कि यह निर्णायकीय रूप से उच्च नहीं ठहराया जा सकता है। नैतिक सापेक्षतावाद नकारता है कि नैतिक मूल्य प्राकृतिक या अप्राकृतिक/गैर–प्राकृतिक हैं– कि वे मानवीय विश्वास अथवा संस्कृति से स्वतन्त्र रूप में वास्तविक या वस्तुगत हैं। यह स्थापना नैतिकता के स्वरूप को मूलतः मानव–केन्द्रित मानती है। इस विचार के अनुसार, नैतिक मूल्य जगत में नहीं हैं अपितु मानवीय दृष्टिकोण और आवश्यकताओं से रचित होते हैं। ये आवश्यकताएं और दृष्टिकोण व्यक्ति–व्यक्ति या संस्कृति–संस्कृति में अलग–अलग हो सकती हैं। व्यवहारों के परीक्षण और नैतिक मूल्यांकन के बिना मानवीय जीवन की कल्पना करना कठिन है। नैतिक सापेक्षतावादी का दावा क्या है? दृष्टान्त के लिए एक उदाहरण लेते हैं, रूना ने अपनी किशोरवय पुत्री उदेश्ना को सम्बोधित एक पत्र पढ़ा जो उदेश्ना के अमेरिकन मित्र स्मिथ ने लिखा था। रूना का विचार है कि अपनी पुत्री के प्रेम जीवन के बारे में जानने का उसे अधिकार है, जबकि स्मिथ का विचार है कि यह उदेश्ना की निजता के अधिकार का उल्लंघन है। रूना का दृष्टिकोण उसकी संस्कृति और मूल्यों से समर्थित है, जबकि स्मिथ का दृष्टिकोण उसके स्वयं की संस्कृति और मूल्यों से समर्थित है। नैतिक सापेक्षतावादी कह सकता है कि/कहेगा कि रूना को पत्र नहीं पढ़ना चाहिए, यह निर्णय स्मिथ की मूल्य–प्रणाली के सन्दर्भ में उचित है, और उसी क्षण वह समान निर्णय रूना की मूल्य–प्रणाली के सन्दर्भ में उचित नहीं है। हम सदैव किसी कृत्य या मानवीय–व्यवहार को उचित या अनुचित (सही या गलत) रूप में मूल्यांकित करते हैं।

तो भी, महत्ता प्रतीत होने के बावजूद, कुछ व्यक्ति नैतिकता के बारे में संशय रखते हैं कि– वास्तव में कोई सार्वभौमिक नैतिक प्रणाली सम्भव है और कि नैतिक दावे सत्य होते हैं या वे केवल धारणाओं के मामले हैं। कुछ लोग तर्क देते हैं कि नैतिक शुभ स्वाद या रूढ़ि का मामला है। यह दृष्टिकोण का सन्दर्भ इतिहासकार हेराडोटस में ढूंढा जा सकता है जिसने उल्लिखित किया कि नरभक्षण कुछ देशों में मान्य है और दूसरे कुछ देशों में अनैतिक। समान

रूप से, गौमांस खाना कुछ देशों में स्वीकृत है, वहीं कुछ में अनैतिक। नैतिक सापेक्षतावादी नैतिक दावों के सत्य या असत्य होने को अस्वीकार नहीं करते हैं– बल्कि उनका मानना केवल यह है कि नैतिक–मूल्य (सत्य या असत्य होना) सापेक्ष होता है। सापेक्षतावाद का मानना है कि कोई सार्वभौमिक नैतिक सत्य नहीं होता, जहाँ सार्वभौमिकता से आशय सभी संस्कृतियों में समान रूप से सत्य या असत्य होना है। नैतिक सापेक्षतावादी का न केवल यह दावा है कि नैतिक निर्णयों का औचित्य विचारक, या विचारक के लिए मूल्यवान मूल्य–प्रणाली पर निर्भर करती है, अपितु यह भी दावा है कि कोई भी वरीय उचित मूल्य–प्रणाली नहीं है। इस प्रकार सापेक्षतावादी के मूल दावे हैं– 1) कुछ नैतिक निर्णय अन्य विचारक के सापेक्ष उचित (सत्य) होते हैं। 2) कोई अद्वितीय प्राधिकारी नहीं है जिसके द्वारा नैतिक निर्णयों का औचित्य (सत्यता) ज्ञात हो सके। तथ्य जिन पर नैतिक निर्णयों के औचित्य का दावा निर्भर होता है, अलग–अलग हो सकते हैं। कुछ सापेक्षतावादियों का मानना है कि यह (नैतिक निर्णयों का औचित्य) निर्णायक की कुछ विशिष्ट मनोवैज्ञानिक विशेषताओं पर निर्भर करता है। कुछ का मानना है कि यह निर्णायक के बारे/से सम्बन्धित सामाजिक तथ्यों पर निर्भर करता है।

कुछ नीति–दार्शनिक नैतिक सापेक्षतावाद के सिद्धान्त को नकारते हैं। उनमें से कुछ का दावा है कि समाजों/समुदायों के नैतिक चलन/व्यवहारों/रिवाजों में अन्तर हो सकता है, परन्तु इन चलनों में अन्तर्निहित नैतिक सिद्धान्तों में अन्तर नहीं होता है। उदाहरणार्थ, कुछ समाजों में, निश्चित उम्र वाले अपने माता–पिता की हत्या सामान्य प्रथा है, जिसका मूल यह विश्वास है कि जीवन के पश्चात् वाले जीवन में यदि कोई शारीरिक रूप से सक्रिय होने पर प्रवेश करता है तो यह लाभदायी है। जबकि कुछ समाजों में यह निंदनीय है, जबकि वे समाज माता–पिता की सेवा के कर्तव्य के सम्बन्ध में पूर्व–वर्णित समाजों से सहमत हैं। समाज मूलभूत नैतिक सिद्धान्तों के अनुप्रयोग में अलग–अलग हो सकते हैं, लेकिन उन सिद्धान्तों पर सहमत होते हैं। यह भी तर्क किया जाता है कि कुछ नैतिक विश्वास सांस्कृतिक रूप से सापेक्ष होते हैं जबकि अन्य नहीं। कुछ निश्चित चलन, जैसेकि पहनावा और शिष्टता के सम्बन्ध में रीति–रिवाज, स्थानीय प्रथाओं पर निर्भर हो सकते हैं, जबकि अन्य चलन, जैसेकि गुलामी, या यातना देना या राजनैतिक दमन सार्वभौमिक नैतिक मापदण्डों पर निर्भर होते हैं और अनेक मतभेदों के बावजूद अनुचित ठहराये जाते हैं।

सापेक्षतावादियों के लिए नैतिक दावे का सत्य उस संस्कृति के सामान्य विश्वासों पर पूर्णतया निर्भर होता है, जिसमें निर्णय लिया जाता है। पाठक नैतिक सापेक्षतावाद को नैतिक आत्मनिष्ठवाद से भ्रमित कर सकता है। इन दोनों पदों के मध्य सूक्ष्म भेद है। नैतिक आत्मनिष्ठवाद नैतिक सापेक्षतावाद नहीं है, क्योंकि नैतिक आत्मनिष्ठतावाद का विश्वास है कि व्यक्ति–विशेष स्वयं की नैतिकता की रचना करते हैं; नैतिकता का अस्तित्व व्यक्ति–विशेषों के अनुभवों से निर्देशित होते हैं, क्योंकि कोई वस्तुनिष्ठ सत्य नहीं हो सकता है। कृत्यों के बारे में

लोगों के विश्वास उचित या अनुचित, अच्छे या बुरे, लोगों के कृत्यों के प्रति भावना पर निर्भर करते हैं, न कि तर्कणा या नैतिक विश्लेषण पर। नैतिक अभिव्यक्तियों की सत्यता और असत्यता लोगों की अभिवृत्तियों पर निर्भर करती है। नैतिक सापेक्षतावादी युक्ति दे सकता है कि यह कथन "रोहित दुष्ट है" रोहित के द्वारा किये गये कई कार्यों के प्रति नापसंदगी को अभिव्यक्त करता है, परन्तु इससे यह अनुसरित नहीं होता है कि यह सत्य या असत्य है कि रोहित सचमुच में दुष्ट है। दोनों पद नैतिक दावों की सत्यता व्यक्ति–विशेषों की अभिवृत्तियों के सापेक्ष मानने के कारण एक दूसरे से सुसंगत हैं।

बोध–प्रश्न I

ध्यातव्यः क) उत्तर के लिए दिये गये स्थान का प्रयोग कीजिए।

ख) अपने उत्तर का मिलान इकाई के अन्त में दिये गये उत्तर से कीजिए।

1. नैतिक सापेक्षतावाद क्या है?

.....
.....
.....
.....

2. नैतिक सापेक्षतावाद नैतिक निरपेक्षवाद से किस तरह भिन्न है?

MAADHYAM IAS
'way to achieve your dream'

.....
.....
.....
.....

3. क्या नैतिक सापेक्षतावाद नैतिक आत्मनिष्ठवाद या व्यक्तिनिष्ठवाद के समान है?

.....
.....
.....
.....

5.3 नैतिक सापेक्षतावाद के विभिन्न प्रकार

सार्वभौमिकतावाद को नकारना एक लोकप्रिय विचार है, जिसका कारण यह तथ्य है कि कुछ लोग सोचते हैं कि दूसरों के प्रति सहिष्णु होने के लिए हमें नैतिक सत्य के सन्दर्भ में सार्वभौमिकतावाद को खारिज करना होगा और इसके बजाय सापेक्षतावाद को बढ़ावा देना होगा। भिन्न–भिन्न लोगों की समझ भिन्न–भिन्न होती है और कोई भी आधारभूत नैतिक मांग नहीं है जो सभी पर लागू हो सके। मानव सभ्यता का इतिहास की हमारी यात्रा हमें बताती है कि अनेक प्रश्नों पर एकराय का अभाव रहा है। विभिन्न समाज और संस्कृतियां और समान समाज या संस्कृति में विभिन्न लोग भिन्न–भिन्न नैतिक विश्वास और प्रथा या चलन रखते हैं। कुछ समाजों की नैतिकता की मांग है कि गर्भपात अस्वीकार्य है। वहीं अन्य समाजों की नैतिक संहिता में गर्भपात स्वीकार्य है। नैतिक विश्वासों और चलनों में गहरे मतभेदों के प्रकाश में अनेक लोगों के लिए यह मानना स्पष्ट है कि सभी स्थानों और मुद्दोंधविषयों के लिए वैध कोई सार्वभौमिक, सामान्यरूप से अनुप्रयुक्त नैतिक सिद्धान्त, नियम, और मूल्य नहीं हैं। नैतिकता का कोई वस्तुनिष्ठ, बौद्धिक आधार नहीं है, कोई वस्तुनिष्ठ नैतिक सत्य नहीं है जिसके आधार पर सभी तार्किक लोगों से सहमति की आशा की जाये, समस्त महत्व वाले तथ्यों और सूचनाओं से पूर्णतः परिचित होने पर भी नैतिकता के विषय में अनेक लोग कहते हैं कि "सबकुछ सापेक्ष है"।

नैतिक सापेक्षतावाद को अनेक तरीकों से समझा जा सकता है–

1) वर्णनात्मक सापेक्षतावाद– वर्णनात्मक सापेक्षतावाद को सांस्कृतिक सापेक्षतावाद भी कहा जाता है। इसके अनुसार, नैतिक मुद्दों/विषयों के बारे में विश्वास या मापदण्ड भिन्न–भिन्न व्यक्ति–विशेषों और भिन्न–भिन्न समाजों के सापेक्ष हैंय अलग अलग व्यक्ति–विशेष और अलग–अलग समाज भिन्न–भिन्न नैतिक विश्वासों को स्वीकारते हैं और इस प्रकार नैतिक प्रश्नों के उत्तरों में असहमत होते हैं। उदाहरणार्थ, कुछ समाज गर्भपात की निंदा करते हैंय कुछ अन्य स्वीकारते हैं। कुछ संस्कृतियों में, मासिक धर्म के दौरान महिलाओं का रसोईघर में प्रवेश वर्जित है। यह सिद्धान्त ऐसे किसी भी दावे को नकारता है कि कोई नैतिक सार्वभौमिक दावा है जो प्रत्येक संस्कृति धारण करती हैध्स्वीकारती है। रिचर्ड ब्रान्ड ने वर्णनात्मक सापेक्षतावाद पद का प्रयोग उस दृष्टि को संदर्भित करने के लिए किया जिसका मानना है कि विभिन्न व्यक्तियों या समाजों में नैतिक विश्वासों या नैतिक मापदण्डों के बारे में मूलभूत असहमतियां हैं। यह वस्तुओं कैसी हैं के बारे में दावा है, न कि किसी प्रकार के मानकीय या मूल्यांकनपरक निर्णयों के बारे में– बहुपत्नीप्रथा किसी संस्कृति में नैतिक रूप से स्वीकार्य है और किसी अन्य में अस्वीकार्य।

2) नैतिक या मानकीय सापेक्षतावाद– इसका मानना है कि भिन्न–भिन्न प्रयोजन, आकांक्षाओं या विश्वासों को धारण करने वाले भिन्न–भिन्न नैतिक अभिकर्त्ताओं, या अभिकर्त्तओं के समूहों पर भिन्न–भिन्न आधारभूत नैतिक अपेक्षाएं प्रयुक्त होती हैं। मानकीय

सापेक्षतावाद का मत है कि नैतिक अपेक्षायें व्यक्तियों पर उनके प्रयोजन, आकांक्षाओं, या विश्वासों पर निर्भर या उनके सापेक्ष बाध्यकारी होती हैं। मानकीय नैतिक सापेक्षतावाद यह विचार है कि सभी समाजों को अन्यों के भिन्न नैतिक मूल्यों को स्वीकारना चाहिए, क्योंकि सार्वभौमिक नैतिक सिद्धान्त नहीं हैं। उदाहरणार्थ, रिश्वत का किसी समाज में चलन का तात्पर्य यह नहीं है कि अन्य समाजों/संस्कृतियां औचित्यपूर्ण तरीके से उसकी निंदा नहीं कर सकती हैं। कोई सही या गलत नहीं है, अतः हमें अन्यों के व्यवहारों को सहन करना चाहिए। मानकीय सापेक्षतावाद का मानना है कि किसी संस्कृति के अपने नैतिक ढांचे की कार्यशील नैतिक विश्वासों और चलनों को मूल्यांकित करना या हस्तक्षेप करना गलत हैय किसी समाज में जो होता है उसका मूल्यांकन केवल उसी समाज की परिपाटियों के द्वारा ही किया जा सकता है। दो सामान्य रूप निम्नवत् हैं–

अ) व्यक्तिपरक नैतिक आपेक्षिक सापेक्षतावाद का कथन है कि कोई कृत्य किसी व्यक्ति पर नैतिक रूप से बाध्यकारी है यदि और केवल यदि वह कृत्य उस व्यक्ति–विशेष द्वारा स्वीकृत आधारभूत नैतिक सिद्धान्तों द्वारा अनुमन्य हो।

आ) सामाजिक नैतिक आपेक्षिक सापेक्षतावाद का कथन है कि कोई कृत्य नैतिक रूप से बाध्यकारी है यदि और केवल यदि उस व्यक्ति के समाज द्वारा स्वीकृत आधारभूत नैतिक सिद्धान्तों द्वारा वह कृत्य अनुमन्य हो। यह नैतिक सापेक्षतावाद का लोकप्रिय प्रकार है।

3) अधि–नीतिशास्त्रीय सापेक्षतावाद– इसका कथन है कि नैतिक निर्णय वस्तुनिष्ठ रूप से सत्य या असत्य नहीं होते हैं और इस प्रकार भिन्न–भिन्न व्यक्ति–विशेष या समाज विरोधी नैतिक निर्णयों को धारण कर सकते हैं/स्वीकार कर सकते हैं। यद्यपि, ऐसा सोचने और इस तरह कार्य करने की प्रवृत्ति होती है कि जैसेकि हमारी स्वयं की या हमारे समाज या संस्कृति की नैतिक दृष्टि सही (उचित) हो। इसका विश्वास है कि नैतिक निर्णय किसी निरपेक्ष भाव/अर्थों में सत्य या असत्य नहीं होते हैं, अपितु किसी विशेष दृष्टिकोण के सापेक्ष होते हैं। यह कहना कि नैतिक दावे का सत्य किसी दृष्टिकोण के सापेक्ष सत्य है, को जिसमें यह दिया गया/रचित/बनाया गया उस स्थिति के सापेक्ष होने से भ्रमित नहीं करना चाहिए। इसके अनुसार, एक संस्कृति के मूल्यों को अन्य पर तरजीह देने का कोई भी वस्तुनिष्ठ आधार नहीं है। अपने अद्वितीय विश्वासों, प्रथाओं, और चलनों के आधार पर समाज अपने नैतिक चुनावों को बनाते हैं। लोग इस विश्वास के प्रति झुकाव रखते हैं कि 'उचित' नैतिक मूल्य वे हैं जो उनकी संस्कृति में पाये जाते हैं। इस विचार का विश्वास है कि लोग न केवल नैतिक मुद्दों पर असहमत होते हैं, अपितु शुभ, अशुभ, उचित और अनुचित पद सार्वभौमिक सत्य–शर्तों पर बिल्कुल भी खड़े नहीं होते हैं। अधि नैतिक सापेक्षतावाद का मत है कि नैतिक मूल्य भिन्न, और कभी–कभी अतुलनीय/तारतम्यहीन मानवीय उद्देश्यों जैसेकि सामाजिक समन्वय इत्यादि के लिए संरचित होते हैं। यह दृष्टिकोण नैतिक संरचनावाद कहलाता है और स्पष्टरूप से

गिलबर्ट हार्मन ने दिया है। नैतिक सापेक्षतावाद का अन्य दृष्टिकोण कहता है कि नैतिक मूल्य मानवीय बौद्धिकता या प्रतिस्पर्धात्मक रुचियों के मध्य सामाजिक अनुबन्धों के द्वारा आदर्शित दैवीय आदेशों/प्रेरणाओं द्वारा संरचित है। यह दैवीय–आदेश/प्रेरणा सिद्धान्त कहलाता है।

बोध–प्रश्न II

ध्यातव्यः क) उत्तर के लिए दिये गये स्थान का प्रयोग कीजिए।

ख) अपने उत्तर का मिलान इकाई के अन्त में दिये गये उत्तर से कीजिए।

1. नैतिक सापेक्षतावाद के विभिन्न प्रकार कौन से हैं?

.....

.....

.....

.....

2. अधि–नीतिशास्त्रीय सापेक्षतावाद का स्वरूप क्या है?

.....

.....

.....

.....

MAADHYAM IAS
'way to achieve your dream'

5.4 दार्शनिक दृष्टि

दार्शनिक वार्ताओं में, 'नैतिक सापेक्षतावाद' पद प्रारम्भिक तौर पर उस अधि नैतिक पक्ष/विचार को बताने के लिए प्रयोग होता है जिसके अनुसार नैतिक निर्णयों का औचित्य कुछ इच्छित घटकों के सापेक्ष होता है; जैसेकि किसी व्यक्ति–विशेष या समुदाय के नैतिक मानकों के सापेक्ष। कठोरतापूर्वक कहा जाये तो, इस सिद्धान्त को समझने के एकाधिक तरीके हैं। यह अनेकानेक वर्षों से विविध संस्कृतियों में लोगों द्वारा धारण किये गये दृष्टिकोणों और युक्तियों को समेटता है। जैन दर्शन ने अनेकान्तवाद का सिद्धान्त दिया, जिसका तात्पर्य है सत्/वास्तविकता स्वरूपतः निरपेक्ष नहीं है और इसके कई आयाम/पक्ष हैं। जैन तीर्थंकर महावीर के सिद्धान्तानुसार, सत्य और सत् अनेक दृष्टियों से भिन्न–भिन्न देखे जाते हैं। कोई एकमात्र दृष्टिकोण नहीं है, जो पूर्ण सत्य या सत् को चित्रित करे। 19वीं सदी के मानव–केन्द्रित खोजों की पृष्ठभूमि तैयार करने वाले ग्रीक सोफिस्ट प्रोटागोरस (481–420 ईसापूर्व) ने कुछ ऐसा ही अभिव्यक्त किया था। उनकी प्रसिद्ध उक्ति है कि व्यक्ति सभी वस्तुओं

का मापदण्ड है। यह इस प्रेक्षण पर आधारित है कि प्रेक्षक के समाज से भिन्न–भिन्न नैतिक नियम होने के बावजूद अन्य समाज पूर्णतः सही ढंग से जीवित रहे। ग्रीक इतिहासकार हेरोडोटस (484–420 ईसापूर्व) ने देखा कि प्रत्येक की अपनी विश्वास–प्रणाली होती है और अन्यों से भिन्न ढंग से कृत्य करने का तरीका होता है। कई दार्शनिकों ने नैतिकता के वस्तुनिष्ठ मापदण्ड के विचार को प्रश्नगत किया है। यह इस विचार के प्रति संशय की ओर प्रेरित करता है कि मूल्यों का केवल कोई एक ही समुच्चय उचित/सही है। इसका पथप्रदर्शक विचार यह है कि एक सत्य नैतिकता की अपेक्षा अनेक सत्य नैतिकताएं हैं। कोई भी एक नैतिकता की प्रणाली, ईसाईयत या इस्लाम या हिन्दु नहीं है, जो हर समय में सभी हर स्थान में बाध्यकारी (सत्य) हो। विभिन्न संस्कृतियां, विभिन्न देश–काल में, विभिन्न जीवन–पद्धतियां और नैतिक चलन रखते हैं। यह सम्भव है कि ये सभी चलन सही/उचित हों। परन्तु कोई भी नैतिक प्रणाली निरपेक्षरूप से सत्य नहीं है, अपितु किसी विशिष्ट संस्कृति, या विशिष्ट व्यक्ति के लिए सत्य होती है। अब पूछा जाना चाहिए, क्या नैतिक सापेक्षतावाद सही है? इस प्रश्न के उत्तर के लिए, यह स्पष्ट होना अच्छा है कि किस प्रकार के सत्य सापेक्ष हैं और किस तरह के नहीं नैतिक सापेक्षतावाद की ओर झुकाव वाले कई लोगों के अन्ततः यह कहते हैं कि न केवल नैतिक सत्य, अपितु सभी प्रकार के सत्य सापेक्ष हैं। उनके अनुसार, सत्य सम्बन्धी कोई भी विचार/दृष्टि वस्तुनिष्ठ नहीं हैः सभी निर्णय किसी विशिष्ट दृष्टिकोण से रचित होते हैं। यह अपरिहार्य है कि यह विकसित होती अनिश्चितता अन्य जीवन–पद्धतियों के प्रति सहिष्णुता और स्वीकरण की ओर बढ़े। सापेक्षतावाद का सत्य है कि हमें अन्यों पर नैतिक रूप से निर्णय नहीं देना चाहिए। विचार यह है कि नैतिक विश्वास और चलन रूढ़ियों और समझौतों से बद्ध होते हैं, और समाजों के मध्य अत्यधिक बदलते हैं। यद्यपि नैतिक सापेक्षतावाद का प्रथम आभास/परिचय प्राचीन समय में हो गया था, परन्तु तब यह बमुश्किल ही फैला। अनेक विद्वान मोंटेन्यू की रचनाओं में इसका पुनः आभास देखते हैं। अनेक सदियों के बाद, आधुनिक दर्शन की प्रवृत्तियों ने नैतिक सापेक्षतावाद का रास्ता बनाने में सहायता दी। 17वीं सदी में, हॉब्स ने नैतिकता के सामाजिक अनुबन्ध दृष्टिकोण के पक्ष में युक्ति दीं, जिसके अनुसार नैतिक नियम वे विधियां हैं जिन पर सामाजिक जीवन को सम्भव बनाने के लिए मनुष्य सहमत हैं। हॉब्स का मत है कि नैतिक सिद्धान्त इस आधार पर कि क्या वे किसी अगोचर प्रत्यय से संवादिता रखते हैं, उचित या अनुचित नहीं होते हैं, बल्कि उनका मूल्यांकन प्रयोजन के आधार पर होना चाहिए कि वे अपने उद्देश्य को किस बेहतर ढंग से निबाहते हैं। प्रारम्भिक आधुनिक काल में, बरूच स्पिनोजा (1632–1673) का उल्लेखनीय विचार है कि कुछ भी आन्तरिकतः अच्छा या बुरा नहीं होता है। उनका मानना था कि शुभ या पूर्णता जैसे गुणों का विशेषण दोषपूर्ण हैं, क्योंकि यह इस विचार पर आधारित है कि ईश्वर ने मनुष्यता को ध्यान में रखते हुए प्रकृति की संरचना की। उनका मत है कि इन्द्रियगोचर गुणों के सम्प्रत्यय के साथ नैतिक और सौन्दर्यशास्त्रीय सम्प्रत्ययों को सम्मिलित करने वाले सम्प्रत्ययों का परिवार बुद्धि या

MAADHYAM IAS

तर्क–शक्ति के बजाय कल्पना से उत्पन्न है। डेविड ह्यूम (1711–1776) कई महत्वपूर्ण सन्दर्भों में सम्वेगवाद और नैतिक सापेक्षतावाद के जन्मदाता कहे जाते हैं। उनका मानना है कि वे परामर्श जो बताते हैं कि कैसे कार्य करना चाहिए उन तथ्यात्मक दावों से जो बताते हैं कि प्राणी किस तरह के हैं, तार्किकरूप से निःसृत नहीं किये जा सकते हैं। वे किसी भी नैतिक दृष्टिकोण के उचित सिद्ध करने की सम्भावना पर संदेह करते हैं। उनके लिए, नैतिकता अन्तिम रूप से बुद्धि के बजाय भावनाओं पर निर्भर करती है। हालांकि, वे सापेक्षतावाद का समर्थन नहीं करते हैं, बल्कि तथ्य–विषय और मूल्य–विषय में अन्तर करते हैं। उनका सुझाव है कि नैतिक निर्णय, जो मूल्य–विषयों से संघटित हैं, वे जगत से प्राप्त सत्यापनीय तथ्यों से सरोकार नहीं है; बल्कि हमारी सम्वेदनाओं और आवेगों से। उनका मानना है कि नैतिकता केवल वस्तुनिष्ठ पैमाना रखती है, और हमारी वरीयताओं और परेशानियों के प्रति ब्रह्माण्ड तटस्थ रहता है। नीत्शे (1844–1900) ने नैतिक मूल्यों और हमारे ऊपर उनके प्रभाव के विश्लेषण की आवश्यकता पर बल दिया। समझौतावादी नैतिकता में नीत्शे ने यह समस्या पाई कि यह हमारी आत्म–रचित सामर्थ्य, जिसे नीत्शे "शक्ति का संकल्प" कहते हैं, को अवकाश नहीं दिया गया है। अतः, समझौतावादी नैतिकता मानवीय स्वतन्त्रता या रचना करने की मानवीय क्षमता/सम्भावना के प्रति खतरा है। उनकी प्रसिद्ध घोषणा कि "ईश्वर मर गया" यह अन्तर्निहित करती है कि नैतिक दावों के प्रमाणीकरण के अगोचर या वस्तुनिष्ठ तरीके अब विश्वसनीय नहीं हैं। नीत्शे के अनुसार, कोई व्यक्ति उस समय तक स्वयं के प्रति अजनबी रहता है जब तक वह आरोपित नियमों और विनियमों का अनुसरण करता है। इन नियमों और विनियमों का आरोपण पहले प्रकृति से परे किसी सत्ता (ईश्वर) के नाम पर धर्मों के द्वारा किया गया। बुद्धि के प्रयोग के बजाय, धर्म का पालन श्रद्धा के द्वारा होता है। धर्म नियम और विनियम आरोपित कर और हमें उनके अनुसरण के लिए तैयार कर हमारी वास्तविक अस्मिता को छिपा देते हैं। हम केवल जो "अच्छा", और "बुरा" कहा जाता है, उसे स्वीकारते हैं और उसका अनुसरण करते हैं। अनुसरण करने की प्रक्रिया में आत्म–प्रेरणा और आत्म–रचित सामर्थ्य का अभाव हमारे जीवन में हो जाता है। नीत्शे के अनुसार, "जब यह हम तक आता है, हम 'ज्ञाता' नहीं हैं।" उनका विश्वास था कि नैतिकता की संरचना सक्रियरूप से, हम जो हैं और एक व्यक्ति के रूप में हम जो अच्छे और बुरे हैं इत्यादि के सापेक्ष होनी चाहिए, बजाय शक्तिमान व्यक्ति–समूह के द्वारा बनाये गये नैतिक विधियों के पालन से। नृविज्ञानी एडवर्ड वेस्टरमार्क (1862–1939) को नैतिक सापेक्षतावाद के विस्तृत सिद्धान्त की रूपरेखा बनाने वाले प्रथम लोगों में स्थान प्राप्त है। उन्होंने सभी नैतिक प्रत्ययों को किसी व्यक्ति की परवरिश की प्रेरणा वाले व्यक्तिगत निर्णयों के रूप में चित्रित किया।

बोध–प्रश्न III

ध्यातव्यः क) उत्तर के लिए दिये गये स्थान का प्रयोग कीजिए।

ख) अपने उत्तर का मिलान इकाई के अन्त में दिये गये उत्तर से कीजिए।

1. नैतिक सापेक्षतावाद के पक्ष में नीत्शे ने कौन सी युक्तियां प्रस्तुत कीं?

.....

.....

.....

.....

नैतिक सापेक्षतावाद अग्रलिखित कारणों की वजह से लोकप्रिय विचार होता गया–

1) धर्म का ह्रासकाल– धर्म उस सम्भावना को प्रस्तुत करता प्रतीत होता है कि नैतिकता हम पर निर्भर नहीं है। धर्म से विचलन के रूप में वस्तुनिष्ठ नैतिकता की सम्भावना के बारे में थोड़ा संशय होने लगा। नैतिक सापेक्षतावादी कहते हैं कि व्यक्ति–विशेष या हमारे समाज को देखने से अधिक अच्छा कोई स्थान नहीं है।

2) सांस्कृतिक विविधता का प्रेक्षण– हममें से अधिकांशतः जागरुक हैं कि संसार में अनेक भिन्न संस्कृतियां हैं और उन संस्कृतियों में से कई हमारे रिवाजों से बहुत भिन्न रिवाजों में संलग्न हैं। इन विविधताओं/बहुलताओं से पता चलता है कि कोई भी एकमात्र वस्तुनिष्ठ नैतिकता नहीं है, क्योंकि नैतिकता संस्कृतियों के साथ बदलती है। महत्वपूर्ण नैतिक प्रश्नों के बारे में विस्तृत विभिन्न मतों का होना नैतिक सापेक्षतावाद के पक्ष में वह तथ्य है, जो सामान्य रूप से उल्लिखित किया जाता है। कुछ समाज गुलामी को वस्तुओं की प्राकृतिक व्यवस्था के अन्तर्गत मानते हैं, तो वहीं कुछ नैतिक तिरस्कार के रूप में निंदनीय। अनेक व्यक्ति–विशेष गर्भपात को हत्या की तरह देखते हैं, जबकि अन्य अपनी पुनरुत्पाद्य प्रक्रिया पर आत्म–नियंत्रण के स्त्री–अधिकार पर अस्वीकार्य अतिक्रमण के रूप में गर्भपात रोकने के प्रयासों की निंदा करते हैं। इस प्रकार के अनेक मत–भेदों के प्रकाश में एक वस्तुनिष्ठ नैतिक सत्य पर विश्वास करना तार्किक नहीं है। यदि इस प्रकार के वस्तुनिष्ठ पैमाने न हो, तो नैतिक मुद्दों पर सहमति का अच्छा समझौता होगा जैसाकि कोई वास्तव में खोज पाता है, की अपेक्षा।

नैतिक सापेक्षतावाद सिद्धान्त की कुछ गम्भीर हानियां हैं और हम नैतिक सापेक्षतावाद के विरोध में कुछ युक्तियां प्रस्तुत कर सकते हैं। एक सबल युक्ति वस्तुनिष्ठ नैतिक सत्य के अस्तित्व से सम्बन्धित है। उदाहरणार्थ, दुष्टता अनुचित है, सताना आनन्दप्रद है अनुचित है, करुणा सदगुण है अनुचित होगा यदि यह नैतिक सापेक्षतावाद के द्वारा विचारणीय है। एक अन्य दोष यह है कि नैतिक मुद्दों की असहमति में, इसका मानना है कि कोई वस्तुनिष्ठ नैतिक सत्य नहीं है। सापेक्षतावाद वास्तव में व्यक्तियों को कैसे व्यवहार करना चाहिए, के बारे में थोड़ा–सा या बिल्कुल भी नहीं बताता है। यह बताता है कि लोग कैसे और क्यों विश्वास

MADHYAM IAS

करने लगते हैं कि उन्हें क्या/कैसे व्यवहार करना चाहिए, किन्तु पुनः स्वयं के द्वारा उन विश्वासों के मूल्यांकन में सुयोग्य बनाता है, और इस प्रकार बौद्धिक प्रतिबिम्बन के आदेशों के द्वारा बदलता है। समान तर्क के आधार पर,यदि नैतिक सापेक्षतावाद सत्य है तो नैतिक सुधारवादियों या आलोचकों की स्थापनाएं सामान्य रूप से असंगत विचारी जाती हैं। मान लीजिए, संस्कृतियां जिन नैतिक व्यवहारों की आलोचना रीना करना चाहती है, वे स्वयं उसके अपने हैं। मान लीजिए रीना जिस समाज में रहती है उसमें गुलामी के रिवाज का नैतिक चलन है और रीना इस भयावह विचार को नकारती है। वह विश्वास करती है कि गुलामी नैतिक रूप से अनुचित है। वास्तव में, वह इसे तिरस्कारयोग्य मानती है, जिसका सभी सभ्य समाजों से उन्मूलन किया जाना चाहिए। मान लीजिए रीना किसी से अग्रलिखित दावा करती हैरू "गुलामी नैतिक रूप से अनुचित है।" यदि नैतिक सापेक्षतावाद सत्य है, तब, प्राथमिक रूप से उसका दावा अनिवार्यतः अनुचित या गलत है, क्योंकि जो भी चाहेगा मुझे प्रदर्शित करके बता सकता है। तथ्यात्मक रूप से गुलामी मेरे समाज के रिवाज के पैमाने से नैतिक रूप से आदेशित है, यह प्रतीत होता है नैतिक सापेक्षतावाद कि रीना का आलोचनात्मक दावा उचित नहीं हो सकता है। ज्यादा से ज्यादा वह यह निर्वचित कर सकती है– नैतिकता से भिन्न किसी आधार पर– कि गुलामी को नैतिक नहीं होना चाहिए। शायद वह विशुद्ध विवेकपूर्ण आधार पर तर्क करे कि हमारी सामूहिक आत्म–रुचि सुझाव देती है कि हमें गुलामी पर प्रतिबन्ध लगा देना चाहिए क्योंकि यह क्रमिकतः गम्भीर सामाजिक अस्थिरता की ओर ले जाएगी। या शायद वह तर्क दे सकती है, पूर्णतः आर्थिक आधार पर, कि गुलामी उत्पादन की एक अदक्ष प्रणाली है जिसको खुली, मुक्त–बाजार प्रणाली से विस्थापित कर देना चाहिए ताकि पूर्ववर्ती गुलाम आर्थिक रूप से प्रेरित होकर अर्थव्यवस्था में उत्पाद्य ढंग से सहयोग दे पायें। मेरे समाज में पाये जाने वाली गुलामी प्रथा की आलोचना के लिए ये सभी सम्भावित तर्क हैं। लेकिन इनमें से कोई भी नैतिक तर्क की तरह प्रयोग नहीं किया जा सकता। यदि नैतिक सापेक्षतावाद सत्य है, तो यह प्रतीत होता है कि रीना तथ्य–विषय के रूप में गुलामी को नैतिक रूप से प्रमाणित चलन है इसको बौद्धिकतः नकार नहीं सकती। रीना के पास मेरे सांस्कृतिक चलनों को नैतिक आधार पर आलोचना करने का कोई बौद्धिक अवकाश नहीं है। नैतिक सुधारवादी को बौद्धिक अवकाश प्रदान न कर पाने की असफलता किसी भी नैतिकता के सिद्धान्त में गम्भीर कमी बताता है।

नैतिक सापेक्षतावाद तार्किक रूप से असंगत प्रतीत होता है। इस कथन पर विचार करते हैंरू सभी सत्य सापेक्ष हैं। यदि यह कथन वस्तुनिष्ठरूप से सत्य है, तब सापेक्षतावाद असत्य है क्योंकि कम से कम एक वस्तुनिष्ठ सत्य होगा, कि सत्य सापेक्ष है। लेकिन यदि कथन केवल आत्मनिष्ठ रूप से सत्य है, तब जैसाकि हम पहले ही देख चुके हैं, इसका तात्पर्य होगा कि आप सापेक्षतावाद में विश्वास करते हो। इस प्रकार, यह दावा करने पर कि सत्य सापेक्ष है

आप या तो स्वयं को नकारते हो या अपने विश्वास के अनुमोदन में कुछ भी प्रस्तुत न करने के साथ तुच्छ दावा करते हो।

बोध–प्रश्न IV

ध्यातव्यः क) उत्तर के लिए दिये गये स्थान का प्रयोग कीजिए।

ख) अपने उत्तर का मिलान इकाई के अन्त में दिये गये उत्तर से कीजिए।

1. नैतिक सापेक्षतावाद को लोकप्रिय बनाने वाले दो कारण कौन से हैं?

.....

.....

.....

.....

5.5 सारांश

नैतिक सापेक्षतावाद का तात्पर्य है कि कोई विश्वास, विचार, प्रतिज्ञप्ति, दावा आदि कभी पूर्णतया सत्य या असत्य, शुभ या अशुभ, उचित या अनुचित नहीं होता है। नैतिक सापेक्षतावादियों का मानना है कि विवादित मुद्दे समान रूप से सत्य होते हैं। संक्षेप में, नैतिक सापेक्षतावादी यह नकारते हैं कि उचित या अनुचित के बारे में कोई वस्तुगत सत्य या पैमाना है। नैतिक निर्णय सत्य या असत्य नहीं हैं, क्योंकि नैतिक निर्णय से संवादिता हेतु कोई भी वस्तुगत नैतिक सत्य उपस्थित नहीं है। संक्षेप में, नैतिकता सापेक्ष, आत्मनिष्ठ, और सार्वभौमिकता के बन्धन से मुक्त है। नैतिकता के बारे में असहमतियां किसी टॉफी के स्वाद के बारे में असहमतियों की तरह हैं। और नैतिकता को सापेक्ष कौन बनाता है? प्रायः नैतिकता समूहों या व्यक्तियों के विश्वासों, सम्वेदनाओं, मतों/धारणाओं, आकांक्षाओं, इच्छाओं, रुचियों, वरीयताओं, भावनाओं इत्यादि के अनुसार सापेक्ष विचारी जाती है। नैतिक सापेक्षतावाद को समझने के तीन तरीके हैं– सांस्कृतिक नैतिक सापेक्षतावाद, मानकीय नैतिक सापेक्षतावाद, और अधि–नैतिक सापेक्षतावाद। नैतिक सापेक्षतावाद अपनी जड़ें प्राचीन ग्रीक, प्रोटागोरस में रखता है और हॉब्स, स्पिनोजा, ह्यूम, और नीत्शे के द्वारा आधुनिक समय में पल्लवित हुआ। अधिक क्या कहा जाये, सापेक्षतावाद न तो हमारे सत्य को जानने की असमर्थता से, और न ही सपेक्षतावाद में हमारे विश्वास के उत्साह से समर्थित है। यह दावा कि सभी वस्तुएं सापेक्ष हैं, असंगत या अतार्किक है।

5.6 कुंजी शब्द

आत्मनिष्ठतावाद : वह दार्शनिक सिद्धान्त जिसके अनुसार हमारी मानसिक क्रिया एकमात्र प्रश्न से परे तथ्य है। नैतिक अभिव्यक्तियों की सत्यता और असत्यता व्यक्तियों की अभिरुचियों/प्रवृत्तियों पर निर्भर करती है।

5.7 अन्य सहायक अध्ययन–सामग्री एवं सन्दर्भ

फिशर, एन्ड्रू. *मेटा एथिक्सः एन इन्ट्रोडक्शन.* एकुमेन पब्लिशिंग लिमिटेड, 2011.

किर्चिन, सिमोन. *मेटा एथिक्स.* पेलग्रेव मैक्मिलन, 2012.

ल्न्चो, विल्फ्रिड. जे. *दि डायमेन्शन ऑफ एथिक्स.* ब्रोडव्यू प्रेस, 2003.

पॉल के. मोजर एण्ड थॉमस एल. कार्सन (सम्पा.). *मॉरल रिलेटिविज्मः अ रीडर.* ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस, 2001.

मचेन, टिबोर आर. *अ प्राइमर ऑन एथिक्स.* नोर्मन एण्ड लन्दनः ओक्लाहोमा प्रेस, 1997.

गोमन्स, क्रिस. "मॉरल रिलेटिविज्म," स्टेनफॉर्ड एन्साइक्लोपीडिया ऑफ फिलॉसफी, प्रथम प्रकाशन फरवरी 19, 2004, पुनःसुधार अप्रैल 20, 2015.

एम्रिस, वेस्टकॉट. "मॉरल रिलेटिविज्म," इन्टरनेट एनसाइक्लोपीडिया ऑफ फिलॉसफी में संकलित.

ड्राइवर, जूलिया. *एथिक्सः दि फण्डामेन्टल्स.* ब्लेकवेल पब्लिशिंग, 2007.

MAADHYAM IAS

5.8 बोध–प्रश्नों के उत्तर

बोध–प्रश्न I

1. नैतिक सापेक्षतावाद का मानना है कि नैतिकता किसी निरपेक्ष पैमाने पर निर्भर नहीं करती है। बल्कि नैतिक सत्य परिस्थिति, संस्कृति, भावना, इत्यादि चरों पर निर्भर करते हैं। इसका तात्पर्य है कि कोई कृत्य उचित है या अनुचित उस समाज के नैतिक रूढियों पर निर्भर करता है जिसमें यह कृत्य होता है। एक ही कृत्य किसी एक समाज में नैतिक रूप से उचित होता है और किसी दूसरे समाज में नैतिक रूप से अनुचित। उदाहरणार्थ, विवाहेतर सम्बन्ध कुछ समाजों में निंदनीय है तो कुछ में स्वीकार्य। नैतिक सापेक्षतावादी इन बातों का समर्थन करते हैं कि– (1) नैतिक निर्णय सत्य या असत्य है और कृत्य उचित या अनुचित, यह केवल किसी विशिष्ट दृष्टि के सापेक्ष होता है। (2) कोई भी दृष्टि वस्तुनिष्ठ रूप से अन्य दृष्टि से उच्च सिद्ध नहीं की जा सकती है। नैतिकता को समान दावों के आधार पर परिभाषित करने

के समस्त प्रयास असफल हैं, क्योंकि वे सभी उस आधारवाक्य पर आश्रित हैं कि रक्ष्य दृ ष्टिकोण से सम्बन्धित है और इस दृष्टिकोण को न मानने वाले लोगों के द्वारा इसका स्वीकृत होना आवश्यक नहीं है।

2. नैतिक सापेक्षतावाद या नीतिपरक सापेक्षतावाद नैतिक निरपेक्षवाद या नैतिक वस्तुनिष्ठवाद से तुलना में अधिक आसानी से समझा जा सकता है। निरपेक्षवाद दावा करता है कि नैतिकता प्राकृतिक नियम, चेतना या किसी अन्य मूलभूत स्रोत में अन्तर्निहित सिद्धान्तों पर निर्भर करती है। उदाहरण के लिए– ईसाई निरपेक्षवादी विश्वास करते हैं कि ईश्वर हमारे साझा नैतिकता का अन्तिम स्रोत है, और नैतिकता अपने स्रोत (ईश्वर) की तरह ही अपरिवर्तनीय है। ईमानदारी सर्वोत्तम नीति है इसका सत्य या उचित होना, किसी भी मानवीय स्वीकरण या अस्वीकरण पर निर्भर नहीं है। नैतिक निरपेक्षवाद वह नैतिक विश्वास है कि कुछ निरपेक्ष पैमाने हैं जिनके आधार पर नैतिक प्रश्नों का मूल्यांकन किया जा सकता है, और कुछ निश्चित कृत्य कृत्य के सन्दर्भ से असम्बद्ध उचित या अनुचित होते हैं। इस प्रकार, कृत्य उसमें संलग्न व्यक्ति–विशेष, समाज, या संस्कृति के विश्वासों और लक्ष्यों से असम्बद्ध रूप में नैतिक या अनैतिक होते हैं।

3. नैतिक सापेक्षतावाद और नैतिक आत्मनिष्ठवाद में बहुत सूक्ष्म अन्दर है। नैतिक सापेक्षतावाद नैतिक आत्मनिष्ठवाद से अधिक व्यापक है। नैतिक आत्मनिष्ठवाद का मत है कि नैतिक कथन प्रेक्षक की अभिवृत्ति या मनोभाव या रूढियों से सत्य या असत्य बनते हैं या कि कोई नैतिक वाक्य किसी के द्वारा धारित अभिवृत्ति या मनोभाव को अन्तर्निहित करता है। नैतिक सापेक्षतावाद वह विचार कि किसी वस्तु को नैतिक रूप से उचित होने के लिए समाज के द्वारा अनुमोदित होना चाहिए, इस निष्कर्ष की ओर ले जाता है कि विभिन्न वस्तुएं विभिन्न समाजों और इतिहास–कालों में लोगों के लिए उचित होती हैं। सापेक्षतावादी के लिए, विचारणीय यह नहीं है कि क्या कोई नैतिक निर्णय अस्तित्ववान है या नहीं, बल्कि यह है कि वे सापेक्षिक रूप से सत्य या असत्य हैं फिर चाहे व्यक्ति–विशेष के या फिर समूह के नैतिक ढांचे के सापेक्ष। नैतिक आत्मनिष्ठवाद का विश्वास है कि व्यक्ति–विशेष अपनी स्वयं की नैतिकता रचते हैंय नैतिकता का अस्तित्व व्यक्ति–विशेष के अनुभवों से किया जा सकता है क्योंकि कोई भी वस्तुनिष्ठ सत्य नहीं है। कृत्य उचित हैं या अनुचित, शुभ हैं या अशुभ (अच्छे हैं या बुरे) इस सम्बन्ध में लोगों का विश्वास तर्क या संस्थागत नैतिक विश्लेषण की अपेक्षा इस बात पर निर्भर करता है कि लोग कृत्यों के बारे में क्या महसूस करते हैं। नैतिक उक्तियों की सत्यता और असत्यता लोगों की अभिवृत्तियों पर निर्भर करती है। कोई नैतिक आत्मनिष्ठवादी युक्ति प्रस्तुत करेगा कि कथन "रोहित दुष्ट है" रोहित के द्वारा किये गये कार्यों के प्रति तीव्र नापसंदगी को अभिव्यक्त करता है, लेकिन इससे यह अनुसरित नहीं होता है कि

MAADHYAM IAS

रोहित वास्तव में दुष्ट था, सत्य है या असत्य। दोनों पद इस सन्दर्भ में सुसंगत हैं कि नैतिक दावों का सत्य व्यक्ति–विशेषों की अभिवृत्तियों के सापेक्ष है।

बोध–प्रश्न II

1. नैतिक सापेक्षतावाद के तीन प्रकार हैं– (1) वर्णनात्मक सापेक्षतावाद या सांस्कृतिक सापेक्षतावाद, (2) मानकीय सापेक्षतावाद या नैतिक आपेक्षिक सापेक्षतावाद तथा (3) अधि–नैतिक सापेक्षतावाद।

2. अधि नैतिक सापेक्षतावाद– यह कथन करता है कि नैतिक निर्णय वस्तुनिष्ठ रूप से सत्य या असत्य नहीं होते हैं और इस प्रकार विभिन्न व्यक्ति–विशेष या समाज संघर्षपूर्ण नैतिक निर्णयों को धारण कर सकते हैं। यद्यपि, यह सोचने और इस तरह कार्य करने की होती है कि हमारे स्वयं के या हमारे समाज या संस्कृति के नैतिक निर्णय रूप से उचित हैं। इस मत के अनुसार नैतिक निर्णय किसी निरपेक्ष सन्दर्भ में नहीं, अपितु केवल विशिष्ट दृष्टियों के सापेक्ष सत्य या असत्य होते हैं। इस सिद्धान्त के अनुसार किसी एक संस्कृति के नैतिक मूल्यों को दूसरे अन्य से वरीय मानने का कोई नैतिक वस्तुनिष्ठ आधार नहीं है। समाज अद्वितीय विश्वासों, रूढियों, और प्रथाओं/चलनों के आधार पर अपने नैतिक विकल्पों को बनाते हैं। लोग इस विश्वास के प्रति झुकाव रखते हैं कि 'उचित' नैतिक मूल्य वे हैं जो उनकी अपनी संस्कृति में पाये जाते हैं। वे केवल यह विश्वास नहीं करते कि लोग नैतिक मुद्दों पर असहमत होते हैं, अपितु यह विश्वास करते हैं कि शुभ, अशुभ, उचित और अनुचित पद अंशमात्र भी सार्वभौमिक सत्य–शर्तों को संदर्भित नहीं करते हैं, बल्कि व्यक्ति–विशेष या समूहों की परम्पराओं, चलनों के सापेक्ष होते हैं।

MADHYAM IAS
'way to achieve your dream'

बोध–प्रश्न III

1. नीत्शे की नैतिकता–सम्बन्धी युक्ति नैतिक सापेक्षतावाद के सिद्धान्त के लिए सुदृढ़ आधार स्थापित करती है। उनके लिए, जो उचित या शुभ है वो शक्तिवान पर निर्भर करता है। वह वस्तुनिष्ठ या सार्वभौमिक नैतिकता, जिसे वे रूढ़िगत नैतिकता पद से संदर्भित करते हैं, में विश्वास नहीं करते हैं, इसलिए कई दार्शनिक उनके मत को सापेक्षतावाद बतौर लेते हैं। उनकी प्रसिद्ध घोषणा कि "ईश्वर मर गया है" अन्तर्निहित करती है कि नैतिक दावों का अगोचर या वस्तुनिष्ठ प्रमाणीकरण अब और विश्वसनीय नहीं है। नीत्शे के अनुसार, जब कोई आरोपित नियमों और विनियमों का पालन करता है वह स्वयं के प्रति अजनबी रहता है। नियमों और विनियमों का यह आरोपण पूर्व में आधिभौतिक सत्ता (ईश्वर) के नाम पर धर्मों के द्वारा किया गया। अपनी तर्कबुद्धि के प्रयोग के बजाय, हम श्रद्धा के द्वारा धर्म का अनुसरण करते हैं। धर्म नियम और विनियमों का आरोपण कर और हमें इनके अनुसरण के लिए तैयार कर हमारी

वास्तविक अस्मिता को छिपा देता है। हम जिसे हमसे "शुभ", और "अशुभ" कह दिया जाता है उसे केवल स्वीकारते हैं और उसका पालन करते हैं। पालन करने के प्रक्रिया में हमारे जीवन में स्व–प्रतिबिम्बन और स्व–रचनात्मक सामर्थ्य का अभाव होता है। नीत्शे के अनुसार, "जब यह हम तक आता है, हम 'ज्ञाता' नहीं होते हैं।" उनका विश्वास था कि शक्तिशाली व्यक्ति–समूह के द्वारा बनाए हुए नैतिक नियमों के प्रति क्रिया के बजाय, नैतिकता सक्रिय रूप से, उसको हम कौन हैं और व्यक्ति–विशेष के रूप में हम जो अच्छे–बुरे हैं, के सापेक्ष बनाते हुए संरचित होनी चाहिए।

बोध–प्रश्न IV

1. नैतिक सापेक्षतावाद निम्नलिखित दो कारणों से लोकप्रिय दृष्टिकोण होता गया–

अ) धर्म की अवनति– धर्म इस सम्भावना को प्रस्तुत करते प्रतीत होता है कि नैतिकता हम पर निर्भर नहीं है। धर्म से प्रस्थान बिन्दु के रूप में यह प्रतीत होता है कि वस्तुनिष्ठ नैतिकता की सम्भावना पर संशय की कुछ मात्रा आ गयी थी। नैतिक सापेक्षतावादी कहेंगे कि व्यक्ति–विशेष या अपने समाज को देखने की अपेक्षा कोई भी अच्छा स्थान नहीं है।

आ) सांस्कृतिक विविधता का अवलोकन– हममें से अधिकतर सचेत हैं कि संसार अनेक विभिन्न संस्कृतियों से बना है और इनमें से कुछ संस्कृतियां हमारे व्यवहारों से अधिक भिन्न व्यवहारों में संलग्न हैं। इन सब विविधताओं को देते हुए, कोई भी एकमात्र वस्तुनिष्ठ नैतिकता नहीं है, क्योंकि नैतिकता संस्कृतियों में बदलती है। महत्वपूर्ण नैतिक प्रश्नों पर विभिन्न मतों की व्यापकता वह निर्विवादित तथ्य है जो नैतिक सापेक्षतावाद के पक्ष में दिया जाने वाला अधिक सामान्य उल्लिखित तर्क है। कुछ समाज गुलामी को वस्तुओं की प्राकृतिक व्यवस्था के अन्तर्गत मानते हैं, तो वहीं कुछ नैतिक तिरस्कार के रूप में निंदनीय। अनेक व्यक्ति–विशेष गर्भपात हत्या की तरह देखते हैं, जबकि अन्य अपनी पुनरुत्पाद्य प्रक्रिया पर आत्म–नियंत्रण के स्त्री–अधिकार पर अस्वीकार्य अतिक्रमण के रूप में गर्भपात रोकने के प्रयासों की निंदा करते हैं। इस प्रकार के अनेक मत–भेदों के प्रकाश में एक वस्तुनिष्ठ नैतिक सत्य पर विश्वास करना तार्किक नहीं है। यदि वस्तुनिष्ठ पैमाने हों तो नैतिक मुद्दों पर सहमति का अच्छा समझौता नहीं होगा जैसाकि कोई वास्तव में खोज पाता है।

MADHYAM IAS

MAADHYAM IAS
'way to achieve your dream'

खण्ड 2

पाश्चात्य नीतिशास्त्रीय सिद्धान्त

खण्ड परिचय

खण्ड 2 "पाश्चात्य नीतिशास्त्रीय सिद्धान्त" ग्रीक और पाश्चात्य दार्शनिक रंगमंच में विकसित कुछ मुख्य नैतिक सिद्धान्तों की चर्चा करती है। यह चार इकाईओं में विभाजित है, जिनमें विद्यार्थी अरस्तू के सद्‌गुण नीतिशास्त्र, इमानुएल काण्ट के कर्तव्यपरक नीति–दर्शन, जॉन स्टुअर्ट मिल के परिणामवाद को समझेगा। इस खण्ड की अन्तिम इकाई इन तीनों नीतिशास्त्रीय सिद्धान्तों का आलोचनात्मक मूल्यांकन है।

इकाई 6 "सद्‌गुण नीतिशास्त्रः अरस्तू" मुख्यतः अरस्तू के नैतिकता–सम्बन्धी मत की चर्चा करती है। विद्यार्थी प्लेटो, अरस्तू और एन्सकॉम्ब नैतिकता को किस तरह सद्‌गुण के रूप में समझते हैं। सद्‌गुण क्या है?, मध्यम स्वर्ण पथ क्या है?, इस इकाई के आधारिक चिंत्य–विषय हैं, अरस्तू कैसे सद्‌गुण को मध्यम मार्ग के रूप में किस तरह परिभाषित करते हैं और अरस्तु सद्‌गुण को मध्यम मार्ग के रूप में परिभाषित करने में कितना सफल होते हैं?

इकाई 7 "कर्तव्यपरक नीतिशास्त्रः इमानुएल काण्ट" जर्मन दार्शनिक इमानुएल काण्ट की नैतिकता–विषयक समझ की चर्चा करती है। हम यह समझेंगे कि यह नीति–दर्शन प्रकृति में कर्तव्यपरक क्यों है। विद्यार्थी काण्ट के नीति–दर्शन की व्यावहारिक बुद्धि, शुभ–संकल्प, नैतिक सूत्र और नैतिक अभिकल्पनाओं की अवधारणा को समझेगा। इस दर्शन का आधार यह विचार है कि शुभ कर्म में निहित होता है। कर्म शुभ कर्म होने पर शुभ है और अशुभ होने पर अशुभ।

इकाई 8 "परिणामवादी नीतिशास्त्रः जे. एस. मिल" ब्रिटिश दार्शनिक जे. एस. मिल के नीति–दर्शन के बारे में है। जे. एस. मिल उपयोगितावादी दार्शनिक जेरेमी बेन्थम की परम्परा में हैं। हम जे एस मिल के परिणामवाद को जेरेमी बेन्थम के उपयोगितावाद के विकसित या संशोधित रूप की तरह ले सकते हैं। इस इकाई में, विद्यार्थी किसी कर्म के परिणाम को मापने के गुणात्मक और मात्रात्मक मापदण्डों के बारे में समझेगा। इस विचार का आधार यह है कि किसी कृत्य या कर्म को शुभ या उचित तभी कह सकते हैं, केवल और केवल यदि यह कृत्य अधिकतम लोगों को अधिकतम सुख प्रदान करता है।

इकाई 9 "नीतिशास्त्रीय सिद्धान्तों का आलोचनात्मक मूल्यांकन" इस खण्ड का चिंत्य–विषय तीनों नीतिशास्त्रीय सिद्धान्तों की आलोचनात्मक परीक्षा है। विद्यार्थी न केवल इन नीतिशास्त्रीय सिद्धान्तों के विरुद्ध आपत्तियों को समझेगा, अपितु इन आपत्तियों से अपने मत की प्रतिरक्षा कैसे करता है, यह भी समझेगा।

MADHYAM IAS

इकाई 6 सद्‌गुण नीतिशास्त्रः अरस्तू

रूपरेखा

6.0 उद्देश्य

6.1 परिचय

6.2 जीवन कैसे जीना चाहिए?

6.3 प्लेटो तथा सद्‌गुण नीतिशास्त्र

6.4 अरस्तू तथा सद्‌गुण नीतिशास्त्र

6.5 जी. ई. एम. एन्सकॉम्ब तथा सद्‌गुण नीतिशास्त्र

6.6 सारांश

6.7 कुंजी शब्द

6.8 अन्य सहायक अध्ययन–सामग्री पुस्तकें एवं सन्दर्भ

6.9 बोध–प्रश्नों के उत्तर

MAADHYAM IAS
'way to achieve your dream'

6.0 उद्देश्य

इस अध्याय के उद्देश्यों में निम्नलिखित बिन्दु सम्मिलित हैं:

- मानव व्यवहार में सद्‌गुणों की महत्ता को समझना,
- मानवीय मूल्यों का पुनरीक्षण
- न्यायसंगत, अन्यायसंगत; नैतिक, अनैतिक; सदगुण तथा अवगुण (या दुर्गुण) व्यवहार में अन्तर को समझना,
- सद्‌गुणों से परम सुख आनन्द (Eudaimonia) की प्राप्ति की व्याख्या,

* डॉ. रिचा शुक्ला, सहायक प्राध्यापक, ओ. पी. जिंदल ग्लोबल विश्वविद्यालय, सोनीपत, अनुवादक– सुश्री रिंकी जादवानी, व्याख्याता (दर्शनशास्त्र), मानविकी विभाग, दिल्ली तकनीकि विश्वविद्यालय, दिल्ली

- न्याय, संयम, साहस जैसे सद्‌गुणों की व्याख्या तथा मानव के अस्तित्व में इनकी अपरिहार्यता को समझना,
- अरस्तू द्वारा विकसित सद्‌गुण नीतिशास्त्र को समझना।

6.1 परिचय

नीतिशास्त्र को मानव के "व्यवहार का अध्ययन" करने के रूप में भी समझा जा सकता है। इसे गुण या नैतिक चरित्र का अध्ययन करने वाली एक शाखा के रूप में भी समझा जा सकता है। किसी की सहायता (आवश्यकता के समय) करनी चाहिए क्योंकि, सहायता करना मानव की दयालुता तथा सहृदयता के गुण को दिखाता है। यही सद्‌गुण नीतिशास्त्र का उद्देश्य है। मानव व्यवहार को समझना तथा उसका विश्लेषण करना आज के समय की आवश्यकता है। नीतिशास्त्र की इस शाखा को अरस्तू तथा अन्य प्राचीन ग्रीक दार्शनिकों द्वारा विकसित किया गया है। यह सद्‌गुण पर आधारित नीतिशास्त्र है; सद्‌गुण हमें सतत अभ्यास से प्राप्त होते हैं। यह इकाई मुख्य रूप से सद्‌गुण नीतिशास्त्र तथा इसके ऐतिहासिक पहलू पर प्रकाश डालती है। इस इकाई में हम अरस्तू के सद्‌गुण नीतिशास्त्र से आरम्भ करते हुए (सद्‌गुण नीतिशास्त्र का आरम्भ जानने के लिए) आधुनिक दर्शन में हुए परिवर्तनों के सम्बन्ध में सद्‌गुण नीतिशास्त्र को समझने के लिए जी. ई. एम. एन्सकॉम्ब का अध्ययन करेंगे।

इस इकाई का उद्देश्य इस बात से अवगत कराना है कि प्लेटो द्वारा बताये गये सद्‌गुण जैसे न्याय, साहस, और संयम हमारे लिये कितने अनिवार्य तथा महत्वपूर्ण हैं। समकालीन जगत में इन अवधारणाओं को एक बार फिर से देखने की तथा इन पर पुनर्विचार करने की आवश्यकता है। यह अवधारणाएं आज भी किसी समाज तथा जनतन्त्र की आधारशिला की तरह काम करती हैं। इन गुणों की तुलना तथा सद्‌गुण के सन्दर्भ में इनका अवलोकन करके प्लेटो यह चाहते थे कि लोग इन गुणों के महत्त्व को सद्‌गुणों के रूप में समझे। प्लेटो लोगों को यह समझाना चाहता था कि स्वयं को जानने के साथ साथ विचारपूर्वक कर्म करना भी कितना महत्वपूर्ण है। समकालीन जगत में सद्‌गुण नीतिशास्त्र एक साधन की तरह काम करता है जिसका उपयोग मानव व्यवहार में अनैतिकता को समझने के लिए किया जा सकता है।

यह कहना गलत (भ्रामक) होगा कि सद्‌गुण नीतिशास्त्र को समझने के लिये प्लेटो तथा अरस्तू ही एकमात्र विचारक हैं। जैसे पश्चिम में सद्‌गुण नीतिशास्त्र को समझने के लिए अरस्तू को पढ़ना आवश्यक है, उसी प्रकार पूर्व में कन्फ्यूशियस (चीनी दार्शनिक) भी महत्वपूर्ण हैं। सद्‌गुण का अर्थ किसी व्यक्ति द्वारा अपनाये हुए आदर्श चरित्र या गुणों से है। सद्‌गुण नीतिशास्त्र के अधिकतर दार्शनिक सद्‌गुण को सर्वोच्च तथा व्यावहारिकज्ञान के रूप में देखते हैं, यद्यपि

इनका संयोजन करने के प्रकार में उनके मतों में भिन्नता है। ऐसा करने के विभिन्न प्रकार हैं। इनमें से प्रथम को परम सुख या आनन्द (यूडेमोनिया) आधारित सद्‌गुण नीतिशास्त्र कहा जाता है। ये सद्‌गुण नीतिशास्त्र को परम सुख (आनन्द) के सम्बन्ध में समझते तथा परिभाषित करते हैं। परम सुख (आनन्द) पद ग्रीक दर्शन में महत्व पाता है जहाँ इसका अर्थ आनन्द तथा मानव–उत्कर्ष लिया जाता है। इसके अनुसार सद्‌गुण मनुष्य को एक परम सुखमय जीवन की ओर अग्रसर करता है।

6.2 जीवन कैसे जीना चाहिए?

उचित तथा अनुचित में हम कैसे अन्तर करते हैं? उचित तथा अनुचित व्यवहार में हम कैसे अन्तर करते हैं? इस तरह के प्रश्नों की विस्तृत समझ के लिये नैतिक सिद्धांतों को समझना जरूरी है। सद्‌गुण नीतिशास्त्र इस तरह के प्रश्नों जैसे, "वह क्या है जो एक कार्य को उचित कार्य बनाता है", "क्या मैं एक सही व्यक्ति हूँ", पर विचार करता है। सद्‌गुण नीतिशास्त्र विशेष घटनाओं, अवस्थाओं से ही नहीं अपितु सम्पूर्ण जीवन से सरोकार रखता है, जैसे कि जीवन में सदैव सही दृष्टि और सही कर्म करने के लिए मुझे क्या करना चाहिए? इसलिए सद्‌गुण नीतिशास्त्र में किसी एक अमूर्त नैतिक सिद्धांत के आधार पर कार्यों का आंकलन नही किया जाता है, बल्कि इस आधार पर किया जाता है कि वे सद्‌गुण को किस प्रकार प्रस्तुत करते हैं। इससे ज्यादा महत्वपूर्ण प्रश्न यह है कि मनुष्य को अपना जीवन कैसे जीना चाहिए? सद्‌गुण नीतिशास्त्रियों के अनुसार इस प्रश्न का उत्तर सद्‌गुण को अपने जीवन में अपनाने में निहित है, एक समाज सद्‌गुणी जीवन व्यतीत करने वाले व्यक्तियों से ही अच्छा समाज बनता है।

MADHYAM IAS
'way to achieve your dream'

उदाहरण के तौर पर, एक औरत जिसके पास कर्ज चुकाने के लिए रूपये नही हैं, वह अपनी मित्र के घर जाती है और वहाँ उसकी अलमारी में बहुत सारा नकद रूपये देखती है। उसे यह भी पता है कि उसकी मित्र बहुत धनी परिवार से है। वह यह भी जानती है कि यदि वह कुछ नकद ले लेती है तो इससे उसकी मित्र के जीवन में कोई प्रभाव नही पड़ेगा। जब वह औरत इस दुविधा में है कि उसे क्या करना चाहिए, ऐसी ही दुविधाओं से सद्‌गुण नीतिशास्त्र का सरोकार है। उसे कैसा जीवन जीना चाहिए? हमें यह बताया जाता है कि चोरी करना बुरी बात है लेकिन यहाँ दिये गये उदाहरण में, वह औरत चोरी करके अपना कर्ज चुका सकती है। इस स्थिति में वह क्या करती है? क्या इस तरह का जीवन उसके लिए एक बेहतर विकल्प होगा? इस तरह के उदाहरणों में हम सद्‌गुण नीतिशास्त्र को देखते हैं कि क्योंकि यह इस बात पर विचार करता है कि हमें किस प्रकार का जीवन जीना चाहिए। उनके अनुसार परम सुख (आनन्द) जीवन का उद्देश्य है तथा सद्‌गुण इसे प्राप्त करने में एक साधन की तरह काम

करता है। सद्गुण का अर्थ यहाँ उन गुणों से है जिससे व्यक्ति को परम सुख (आनन्द) या सुख की प्राप्ति हो सकती है।

चरित्र का क्या लक्षण होता है? हम किसी की प्रशंसा क्यों करते हैं? सद्गुणों से ही हमें यह पता चलता है कि कोई व्यक्ति कैसा है जिसकी हम प्रशंसा करते हैं। हम व्यक्ति के सद्गुण की ही प्रशंसा करते हैं। यह भी सम्भव है कि हम किसी ऐसी बात की भी प्रशंसा कर सकते हैं जो प्रशंसा योग्य नहीं हो। हम ईमानदारी, सुन्दरता, बुद्धि, साहस आदि की प्रशंसा करते हैं। यदि किसी के पास साहस है, हम उसकी प्रशंसा करते हैं, और अगर उनके पास साहस नही है तो हम उनका निरादर कर सकते हैं। इसलिए सद्गुण का अर्थ उत्कृष्टता तथा श्रेष्ठता (पूर्णता) से भी है। उत्कृष्ट तथा उत्तम व्यवहार ही सद्गुण है। उदाहरण स्वरूप हम महात्मा गाँधी, मदर टेरेसा की प्रशंसा उनके कुछ ऐसे चरित्र के कारण करते हैं जिन्हें हम स्वयं भी अपनाना चाहते हैं। चाहे वह दया हो, करूणा हो, प्रेम हो या सेवा भाव हो, हम इन्हें अपने व्यवहार में लाना चाहते हैं, इसलिए इन गुणों को जब हम किसी दूसरे के व्यवहार में देखते हैं तो हम उन्हें पसन्द करते हैं, उनकी प्रशंसा करते हैं। ग्रीक दार्शनिकों के अनुसार इन्हें सद्गुण कहा जा सकता है जो हमें परम सुख की अवस्था तक पहुँचने में मदद करते हैं, जो कि परम शुभ, श्रेयस तथा पूर्णता की स्थिति है।

बोध–प्रश्न I

ध्यातव्यः क) उत्तर हेतु नीचे दिये गये रिक्त स्थान का उपयोग कीजिए।

ख) अपने उत्तर का मिलान इकाई के अन्त में दिये गये उत्तर से कीजिए।

1. नियामक नीतिशास्त्र क्या है?

.....

.....

.....

.....

2. क्या कर्तव्यपरक नीतिशास्त्र तथा सद्गुण नीतिशास्त्र में कोई अन्तर है? व्याख्या कीजिए।

.....

.....

.....

.....

MAADHYAM IAS

3. क्या सद्गुण नीतिशास्त्र एक सद्गुणी जीवन जीने में विश्वास करता है? व्याख्या कीजिए।

.....

.....

.....

.....

4. समकालीन जगत में सद्गुणों की क्या प्रासंगिकता है? व्याख्या कीजिए।

.....

.....

.....

.....

6.3 प्लेटो और सद्गुण नीतिशास्त्र

प्लेटो (428–437) ग्रीक परम्परा के सर्वश्रेष्ठ दार्शनिकों में से एक थे। प्लेटो अरस्तू के गुरु तथा ऐथेन्स में एकेडमी के संस्थापक थे। उनके प्रमुख ग्रन्थों मे *एपॉलॉजी, फीडो, रिपब्लिक, मीनो, कानून, सिम्पोजियम* शामिल हैं। प्लेटो का दार्शनिक चिंतन करने का एक महत्वपूर्ण ढंग संवाद करना था। संवाद चिंतन की एक महत्वपूर्ण प्रणाली के रूप में कार्य करता है। प्लेटो के सबसे प्रमुख ग्रन्थ *रिपब्लिक* में सम्पूर्ण विचार विमर्श संवाद के रूप में ही किया गया है। *रिपब्लिक* में सद्गुण नीतिशास्त्र पर भी महत्वपूर्ण संवाद निहित हैं।

6.3.1 सद्गुण नीतिशास्त्र

प्लेटो ने 'परम सुख' केन्द्रित सद्गुण पर आधारित नीतिशास्त्र का समर्थन किया। यदि नैतिक आचरण का सर्वोच्च साध्य आनन्द है, तब सद्गुण परम शुभ को प्राप्त करने के लिए एक साधन की तरह काम करता है। प्लेटो ने *रिपब्लिक* में नीतिशास्त्र का उल्लेख किया है जो परम शुभ पर आधारित है। प्लेटो द्वारा बताये गये चार सद्गुण हैं:

विवेक

संयम

साहस

न्याय

प्लेटो के नीतिशास्त्र का उद्देश्य लोगों को परम शुभ की प्राप्ति करवाना था जिसे श्रेयस या पूर्णता की अवस्था से भी जाना जाता है। प्लेटो ने "स्वयं को जानो" के लिए विचार–विमर्श किया, सुकरात ने कहा, "एक अपरीक्षित जीवन जीने योग्य जीवन नहीं है"। प्लेटो तथा सुकरात दोनों ही इस बात पर विचार कर रहे थे कि जीवन किस प्रकार जीना चाहिए? *रिपब्लिक* को अधिकतर लोग एक राजनीतिक ग्रन्थ ही मानते हैं जो सिर्फ राज्य तथा न्याय पर ही विचार करता है, जबकि यह ग्रन्थ सद्गुण नीतिशास्त्र पर भी बहुत से विचार प्रस्तुत करता है। प्लेटो ने न्याय को अन्तिम तथा सबसे महत्वपूर्ण सद्गुण माना है जो मनुष्य के पास होना चाहिए।

सद्गुण पर एक संवाद में प्लेटो कहते हैं कि राज्य, समुदाय तथा दर्शन मनुष्य को सद्गुणी जीवन जीने में सहायता करने में एक महत्वपूर्ण भूमिका निभा सकते हैं। सद्गुण पर प्लेटो के अपने शिष्यों के साथ किये गये बहुत सारे संवाद मिलते हैं। प्लेटो के अनुसार एक न्यायशील व्यक्ति वह है जिसे स्वयं पर नियंत्रण है और जो अपनी इच्छाओं का दास नही है।

Soul आत्मा	**State राज्य**	**Virtue सद्गुण**
Reason Rational विवके	Ruler शासक	Wisdom/Knowledge प्रज्ञा / ज्ञान
Spirit जीवात्मा	Guardians (Soldiers) संरक्षक (सैनिक)	Bravery/Courage/Loyalty वीरता / साहस / निष्ठा
Appetite सम्वेग	Citizens नागरिक	Temperance संयम

सारणी 1. आत्मा, राज्य और सद्गुण की त्रयी प्रकृति

आत्मा तथा राज्य के तीन भागों के समकक्ष सद्गुण के भी तीन भाग हैं। बुद्धि या ज्ञान विवेक के सद्गुण है। शासक, योद्धा, तथा सैनिक, जो राज्य की सुरक्षा करते हैं, वे Spirit (अंतः जीव) के समकक्ष आते हैं तथा वीरता और निष्ठा के सद्गुण साझा करते हैं। यहाँ इन दोनों सद्गुणों को बराबर नहीं बल्कि एक दूसरे से सम्बन्धित समझा जाना चाहिए। सैनिक, जिन्हें राज्य के संरक्षक की तरह भी देखा जाता है, उन्हें इतना साहसी होना चाहिए ताकि उन्हें निडर कहा जा सके, तथा उन्हें समाज तथा राज्य के प्रति निष्ठावान होना चाहिए। नागरिकों के पास क्षुधा और सद्गुण के रूप में संयम है, उन्हें आत्म संयमित होना चाहिए।

ये सभी मूल सद्गुण हैं जो व्यक्ति के जीवन में होने चाहिए। अन्य सभी सद्गुण इन्हीं से उत्पन्न होते हैं। पहला सद्गुण साहस है, यह सबसे महत्वपूर्ण सद्गुण है; धैर्य, उदारता का मूल भी साहस में ही निहित है। संयम का अर्थ संतुलन, साम्य बनाये रखने से है। शुद्धता, संतोष, विश्वसनीयता इसी सद्गुण से आते हैं। प्रज्ञा से ज्ञान (समझ) उत्पन्न होता है। अन्तिम सद्गुण न्याय है, जिसका अर्थ निष्पक्षता तथा सत्यता है, न्याय दयाभाव के साथ आता है, इन सभी गुणों की तुलना में सद्गुण अधिक महत्वपूर्ण होते हैं।

रिपब्लिक में न्याय का विचार एक बूढ़े व्यक्ति से संवाद के साथ शुरू होता है जहाँ वह कहता है, "न्याय का अर्थ है किसी को कोई क्षति न पहुँचाना", शुभ तथा नैतिकता पर भी इसमें वैचारिक विमर्श मिलता है। न्याय शुभ है क्योंकि इसका परिणाम शुभ होता है, यह शुभ है क्योंकि यह हमें एक–दूसरे को हानि पहुँचाने से रोकता है। *रिपब्लिक* में जीवंत संवाद तथा वार्तालाप निहित हैं (जिन्हें भारतीय दार्शनिक दयाकृष्ण संवाद कहते हैं)। वह एक आधारभूत प्रश्न पूछते हैं कि "हमें अच्छा क्यों होना चाहिए"? न्याय ऐसा सद्गुण है जिसका सम्बन्ध प्रत्येक से है, समाज से है। एक समाज तब तक अधूरा है जब तक वह अपने नागरिकों को न्याय का आश्वासन नही दे सकता। न्याय, समन्वय में निहित है, यह समाज की सबसे मूलभूत, नैतिक तथा सामाजिक आवश्यकता है।

6.4 अरस्तू और सद्गुण नीतिशास्त्र

अरस्तू (384–322 BCE) को ग्रीक दर्शन का सबसे अग्रणी दार्शनिक कहा जा सकता है। अरस्तू ने तर्कशास्त्र, ज्ञानमीमांसा, तत्वमीमांसा, नीतिशास्त्र तथा धर्मशास्त्र पर अपने दार्शनिक विचार प्रस्तुत किये। अरस्तू प्लेटो का शिष्य था, उसने प्लेटो के प्रत्ययवाद की आलोचना की। अरस्तू को तर्कशास्त्र का जनक भी कहा जाता है। अरस्तू ने ही सबसे पहले तर्क करने की चरणबद्ध प्रणाली को विकसित किया जिसमें तर्क तथा प्रतिज्ञप्तियां शामिल हैं। उनकी अधिकतर कृतियाँ व्याख्यानों और टिप्पणियों के रूप में रचित है।

6.4.1 नीतिशास्त्र

हम अपना जीवन श्रेष्ठ रूप में कैसे जी सकते हैं? अरस्तू के अनुसार हमें यह प्रश्न बार–बार स्वयं से पूछते रहना चाहिए। इस प्रश्न का उत्तर देने के लिए अरस्तू ने नीतिशास्त्र की शाखा सद्गुण नीतिशस्त्र का प्रतिपादन किया। *निकोमेकियन एथिक्स* में अरस्तू के लिये सबसे बड़ा प्रश्न यही है कि 'शुभ क्या है'? मानवता के लिए सद्गुण प्राप्त करना तथा सद्गुणी व्यक्ति बनना शुभ है। इस प्रश्न का अनुसरण करते हुए अरस्तू ने सद्गुण तथा व्यावहारिक ज्ञानपर विचार किया। व्यावहारिक ज्ञान (फ्रोनेसिस) एक बौद्धिक सद्गुण है जो कि नैतिक सद्गुणों को प्राप्त करने के लिय आवश्यक तथा महत्वपूर्ण है। सैद्धान्तिक ज्ञान इसके अलावा एक अन्य

प्रकार का ज्ञान है जिसे सभी नित्य सत्यों का निःश्रेयस भी कहा जा सकता है। साहस, ईमानदारी, निष्ठा, संयम तथा अखण्डता कुछ विभिन्न प्रकार के सद्‌गुण हैं। अरस्तू ने नैतिक सद्‌गुणों के बारे में बात की, जो इस प्रकार हैं:

साहस

संयम

उदारता

गौरव

सदाशयता

आकांक्षा

सत्यता

बुद्धिमता

ईमानदारी

नम्रता

मित्रता

MAADHYAM IAS
'way to achieve your dream'

अरस्तू ने प्लेटो के प्रमुख सद्‌गुणों को इन सद्‌गुणों में विभाजित किया। उन्होंने बौद्धिक सद्‌गुणों को भी जोड़ा जिसमें विवेक तथा सैद्धान्तिक प्रज्ञा शामिल हैं।

अरस्तू कहते हैं कि 'हम वैसे ही बनते हैं जैसा कार्य हम बार बार करते हैं', तो एक सुखी जीवन जीने के लिए मनुष्य को सद्‌गुणों के साथ जीना तथा आगे बढ़ना चाहिए। अरस्तू कहते हैं कि एक बार झूठ बोलने से तुम झूठे नहीं बनोगे, यदि तुम बार बार झूठ बोलोगे तब तुम्हें झूठा कहा जायेगा, क्योंकि यह तुम्हारी एक आदत बन गयी। इसी प्रकार सद्‌गुणों को अपने जीवन में बार बार दोहराकर सद्‌गुणों का अभ्यास किया जा सकता है।

6.4.2 परम सुख (आनन्द) (Eudaimonia)

इस ग्रीक शब्द को आनन्द, शुभता/श्रेयस या मानव उत्कर्ष भी कह सकते हैं। सद्‌गुण अच्छे जीवन या आनन्द की ओर ले जाता है। सद्‌गुण का विपरीत दुर्गुण है। यहाँ पर दो चरम स्थितियाँ हो सकती हैं, उदाहरण के लिए, न्यूनता का दुर्गुण तथा अधिकता का दुर्गुण।

उदाहरणतया यदि किसी को लुटता हुआ देखकर अपनी जान बचाने के लिए यदि तुम भाग जाते हो तो वह तुम्हारे अन्दर साहस के सद्गुण की कमी कहलायेगी। या फिर यदि किसी के पास बन्दूक है और तुम उसे निहत्थे ही रोकने का प्रयास कर रहे हो तब यह साहस के सद्गुण की अधिकता कहलायेगी। पुलिस की सहायता लेना यहाँ सबसे उचित होगा जिससे तुम अपने आप को तथा उस व्यक्ति को भी बचा सकते हो। सद्गुण भी दो चरम के बीच मध्यम मार्ग की तरह काम करता है।

बौद्धिक सद्गुण को विकसित करके वयक्ति सबसे बड़ा सुख प्राप्त कर सकता है। साहस का सद्गुण कायरता तथा अत्यधिक उतावला होने के मध्य का मार्ग अपनाता है। अरस्तू के अनुसार बौद्धिक तथा चारित्रिक सद्गुणों को अपनाना ही सर्वोच्च शुभ है, तथा यही परम सुख की अवस्था है।

6.5 जी. ई. एम. एन्सकॉम्ब और सद्गुण नीतिशास्त्र

एलिजाबेथ एन्सकॉम्ब या मिस एन्सकॉम्ब, जैसा कि उन्हें जाना जाता है, बीसवीं शताब्दी की प्रमुख दार्शनिक थीं। वह धार्मिकता में विश्वास करने वाली तथा सद्गुण नीतिशास्त्री थीं। वह नीतिशास्त्र तथा क्रिया दर्शन में अपनी रचनाओं की वजह से जानी जाती हैं। उनकी प्रमुख रचनाओं में उनके लेख "आधुनिक नैतिक दर्शन" ('Modern Moral Philosophy') तथा "इन्टेन्शन्स" ('Intention') शामिल हैं। उन्हें लुडविग विट्गेन्स्टाइन की कुछ रचनाओं का अनुवाद किया।

MAADHYAM IAS
'way to achieve your dream'

6.5.1 सद्गुण नीतिशास्त्र

एन्सकॉम्ब ने अपने लेख, "आधुनिक नैतिक दर्शन", में उन ब्रिटिश नैतिक दार्शनिकों के उस ढंग की आलोचना की, जिस तरीके से वे उस समय तक सिद्धान्तों को प्रतिपादित कर रहे थे जो कि नीतिशास्त्र के नियम सम्बन्धी संकल्पनाओं में परिणत हुआ। एन्सकॉम्ब ने जे. एस. मिल. तथा इमानुएल काण्ट की आलोचना सार्वभौमिक सिद्धान्तों पर उनकी निर्भरता की वजह से की, जिनकी अन्तिम परिणति नैतिक आचार के नियम में होती है। ये नैतिक दार्शनिक किसी भी तरीके से एक दूसरे से अलग नहीं थे। उन सभी के नैतिक दर्शन में कर्तव्य का पालन करना ही केन्द्रीय विचार बन गया है। एन्सकॉम्ब ने, हम किस तरह नीतिशास्त्र तथा सद्गुण को अब तक देखते आये हैं, इस पर पुनः मूल्यांकन तथा पुनः विचार करने की आवश्यकता पर ध्यान दिया। एन्सकॉम्ब के अनुसार, हमारी स्वयं की इच्छाशक्ति अपने आप में नैतिक कर्तव्य का साथ देने में असमर्थ है।

एन्सकॉम्ब ने काण्ट के साथ–साथ उपियोगितावाद के सिद्धान्त की आलोचना की। ब्रिटिश नैतिक दार्शनिकों पर एन्सकॉम्ब की यह प्रतिक्रिया थी कि वे यह स्वीकार करते हैं कि नैतिकता को देखने वाला एक ईश्वर है और वही हमारे नैतिक कर्तव्यों का आधार है। नैतिक कर्तव्य सिर्फ दैवीय सत्ता के सम्बन्ध में ही अपना अर्थ पाते हैं। यदि ऐसा नहीं है तब उन्हें नैतिक सिद्धान्तों के एक महत्वपूर्ण तत्व के रूप में कर्तव्य को छोड़ देना चाहिए, ताकि नैतिक दार्शनिक अपनी आवश्यकता अनुसार, अभिप्राय, इच्छा, सुख, उद्देश्य, कर्म, तथा भावना की संकल्पना का पुनः मूल्यांकन कर सकें। एन्सकॉम्ब ने कर्तव्यपरक नैतिकता तथा परिणामवादी नैतिकता दोनों का खण्डन किया।

बोध–प्रश्न II

ध्यातव्यः क) उत्तर हेतु नीचे दिये गये रिक्त स्थान का उपयोग कीजिए।

ख) अपने उत्तर का मिलान इकाई के अन्त में दिये गये उत्तर से कीजिए।

क्या सद्‌गुण नीतिशास्त्र इस बात का उत्तर देता है कि हमें क्या करना चाहिए?

.....

.....

.....

.....

2. अरस्तू के अनुसार विभिन्न प्रकार के सद्‌गुण कौन से हैं?

.....

.....

.....

.....

3. क्या अरस्तू तथा एन्सकॉम्ब के सद्‌गुण नीतिशास्त्र में कोई अन्तर है? व्याख्या कीजिए।

.....

.....

.....

.....

4. क्या न्याय को एक महत्वपूर्ण सद्‌गुण माना जा सकता है? यदि हाँ, व्याख्या कीजिए।

.....

.....

MAADHYAM IAS
'way to achieve your dream'

.....

.....

6.6 सारांश

अभी तक हमने देखा कि नीतिशास्त्र को विस्तृत तौर पर दो से तीन तरह से समझा जा सकता है। इनमें से एक तरफ अरस्तू द्वारा दिया गया परम सुख या आनन्द का महत्वपूर्ण सिद्धान्त है तथा दूसरी तरफ एन्सकॉम्ब के सद्गुण नीतिशास्त्र का समीक्षात्मक संस्करण मिलता है। समकालीन जगत में कथनी/करनी/नैतिकता में बहुत सारे उल्लंघन देखने को मिल सकते हैं। कुछ का यह मानना है कि हम उत्तर–आधुनिक जगत में रहते हैं जहाँ मूल्यों का कोई महत्व नहीं है। लेकिन हम जिस भी जगत में रहते हैं, क्या मूल्य विहीन और सद्गुण विहीन जीवन की कोई महत्ता/सार्थकता होगी। दर्शन संवाद, जो अधिकतर पुरूष केन्द्रित रहा, वहाँ एक महिला दार्शनिक ने आधुनिक दर्शन में नीतिशास्त्र की समीक्षा की। कई समकालीन दार्शनिक नैतिक सिद्धान्तों पर काम कर रहे हैं, उनमें से कुछ एलेसडायर मैकिनटायर, जे. कॉटिंघम और जे. ड्राइवर प्रमुख हैं।

6.7 कुंजी शब्द

यूडेमोनिया (Eudaimonia) : इस ग्रीक पद को आनन्द, शुभताः श्रेयस या मानव–उत्कर्ष कहा जा सकता है।

फ्रोनेसिस (Phronesis) (ग्रीक पद) : बौद्धिक विवेक।

MAADHYAM IAS
'way to achieve your dream'

6.8 अन्य सहायक अध्ययन–सामग्री एवं सन्दर्भ

अरस्तू. *निकोमेकियन एथिक्स.* ट्रान्स. जे ऐ के थॉमसन. लन्दनः पेन्गुइन बुक्स, 2004.

एन्सकॉम्ब. "मॉर्डन मॉरल फिलॉसॉफी", फिलॉसॉफी, 33/125: 1–19. https://www-jstor-org/stable/3749051.

जे. डॉरिस, परसन्स. "सिचुएशन्स एण्ड वर्चु एथिक्स". नाउस, 32/4: 504–530. https://www-jstor-org/stable/2671873.

एनस, जूलिया. "वर्चु एथिक्स", इन *दि ऑक्सफोर्ड हैन्डबुक ऑफ एथिकल थ्योरी.* एडिटेडः डेविड कॉप, 2009. DOI: 10-1093/oÛfordhb/9780195325911-003-0019

पॉडकास्ट तथा वेब रिसोर्सेस

https://podcasts-oÛ-ac-uk/what&virtue&ethics

https://thevirtueblog-com/virtue&talk&2/

https://philosophybites-com/2014/12/julia&annas&on&what&is&virtue&ethics&for-html

http://thepanpsycast-com/panpsycast2/2017/8/3/aristotle&part&i

https://www-bbc-co-uk/programmes/p005489r

6.9 बोध–प्रश्नों के उत्तर

बोध–प्रश्न I

1. सद्गुण नीतिशास्त्र, दर्शन की एक शाखा है जो सद्गुण को मुख्य संकल्पना मानती है। यह इस बात को समझने का प्रयास करती है कि जीवन कैसे जीना चाहिए। इसका सम्बन्ध कर्तव्यों से नही बल्कि गुण या सद्गुणों से है जो एक अच्छा जीवन जीने के लिए अवश्य होने चाहिए। यह मानव जीवन को कर्तव्यवादी तथा परिणामवादी नैतिक दर्शन के द्वन्द से समझने का प्रयास नही करता। इसके अनुसार आनन्द (यूडेमोनिया) सर्वोच्च सुख की अवस्था है, व्यावहारिक विवेक आनन्द को प्राप्त करने के लिए आवश्यक है।

2. हाँ, कर्तव्यवादी नैतिक दर्शन तथा सद्गुण नीतिशास्त्र में अन्तर है। डिऑन्टोलाजी पद ग्रीक शब्द डिऑन ('deon') तथा लोगोस ('logos') से मिलकर बना है। प्रथम, वह नैतिक सिद्धान्त हैं जो कर्तव्य तथा नैतिकता पर अधिक बल देते हैं। इसके अनुसार कुछ कार्य करने चाहिए क्योंकि वे कर्तव्य के क्षेत्र में आते हैं, जैसे कि "कर्तव्य के लिए कर्तव्य"। कर्तव्यवादी नैतिक दर्शन के एक प्रमुख प्रतिपादक इमानुएल काण्ट हैं।

3. हाँ, सद्गुण नीतिशास्त्र एक सद्गुणों से युक्त जीवन जीने में विश्वास रखता है। ग्रीक दार्शनिक जैसे सुकरात, प्लेटो तथा अरस्तू शुभ तथा सर्वोच्च शुभ को परिभाषित करने की कोशिश की, उन्होंने ऐसे जीवन के बारे में विचार करना शुरू किया जो सद्गुणों द्वारा संचालित होगा। इन सभी दार्शनिकों ने सद्गुणों का अलग अलग तरह से विभाजन किया, जिनमें से कुछ साहस, संयम, मित्रता, धैर्य, उदारता आदि हैं।

4. हाँ, सद्गुण समसामयिक जगत में हमारी सहायता करते हैं। चाहे हमारे व्यवहार में, आचरण में, या हम किस तरह से जीवन जीना चाहते हैं, सद्गुण इन सभी में द्योतक/सूचक का काम करते हैं। वर्तमान समय में, जहाँ हमें अन्याय, कायरता, स्वार्थ तथा अपरिपक्वता देखने को मिलती है, वहाँ सद्गुण की बहुत प्रासंगिकता है। स्वयं पर, अपने आचरण पर ध्यान देने के लिए हमें सद्गुण नीतिशास्त्र पर लौटने की आवश्यकता है। इसका आधार हैः स्वयं को जानो,

अपने कार्यों की समीक्षा करो, अपनी गलतियों पर ध्यान दो। जब हम अपने कार्य का तथा वर्तमान समय में अपने आचरण का विश्लेषण करते हैं तब ध्यान देने और समीक्षा करने जैसे तत्व अनुपस्थित होते हैं, इसलिए सद्गुण नीतिशास्त्र महत्वपूर्ण और प्रासंगिक भी है।

बोध–प्रश्न II

1. नहीं, सद्गुण नीतिशास्त्र एक नैतिक सिद्धान्त है जो व्यक्ति के चरित्र तथा आचरण पर केन्द्रित है ना कि नियमों पर। आनन्द (Eudaimonia) की वजह से कोई व्यक्ति नैतिक बनता है। अरस्तू के अनुसार सद्गुण का प्रत्यय प्रकृति द्वारा हमें दिया गया है, सद्गुणी होने की प्रकृति। सद्गुण मनुष्य को अच्छे व्यवहार की ओर ले जाता है।

2. अरस्तू के अनुसार, साहस कायरता तथा उतावलेपन के बीच का मध्यम मार्ग है। कायरता साहस की कमी है, और उतावलापन साहस की अधिकता, दोनों ही चरम स्थिति हैं और दोनों ही बुरी हैं। अरस्तू के शब्दों में, "साहस, कार्य करने के लिए सही रास्ते को पाना है"। सही कार्य हमेशा दो चरम के मध्य का मार्ग होगा। ईमानदारी, क्रूर ईमानदारी तथा उन बातों को कहने की असमर्थता जिन्हें कहना चाहिए, के मध्य का मार्ग है। यही उदारता पर भी लागू होता है। व्यक्ति तब सद्गुणी बनता है जब वह सीखता है, तथा वैसा काम करता है।

3. सैद्धान्तिक रूप से दोनों ही सिद्धान्त सद्गुण नीतिशास्त्र से सम्बद्ध हैं। एन्सकॉम्ब ने एक धार्मिक विश्वासी तथा सद्गुण नीतिशास्त्री की तरह काम करना शुरू किया। उन्होंने सद्गुण नीतिशास्त्र का पुनरू मूल्यांकन किया। एन्सकॉम्ब ने यह विवेचन किया कि या तो हमें सद्गुण नीतिशास्त्र पर फिर से विचार करना चाहिए या फिर हमें ईश्वर के अस्तित्व को परिभाषित करना तथा समझना चाहिए जो नैतिक दर्शन में अनुपस्थित था।

4. हाँ, प्लेटो के द्वारा न्याय को एक महत्वपूर्ण सद्गुण की तरह देखा तथा विचारा गया है। इस सद्गुण का सबसे श्रेष्ठ पहलू यह है कि यह व्यक्ति तथा समूह दोनों पर प्रभाव डालता है। प्लेटो बहुत बुद्धिमान थे, कि उन्होंने इसे अपने आप में एक साध्य की तरह देखा, ना कि किसी उद्देश्य को पाने के लिए एक साधन की तरह। प्लेटो यह मानते थे कि किसी भी समाज को सामंजस्यपूर्ण तथा सद्गुणी होने के लिए इन सद्गुणों का होना बहुत आवश्यक है, और उन सभी सद्गुणों में सबसे ज्यादा महत्वपूर्ण न्याय है। प्लेटो के अनुसार न्याय किसी भी समाज तथा प्रजातन्त्र के लिए अनिवार्य है। इससे यह साफ हो जाता है कि प्लेटो अपने समय के शीर्ष दार्शनिकों में से एक थे और यही कारण है कि उन्होंने न्याय पर इतना विचार किया तथा इसे जितना हो सकता था, उतना ज्यादा से ज्यादा अनुकूलनीय बनाने का प्रयास किया।

MADHYAM IAS

इकाई 7 कर्तव्यपरक नीतिशास्त्र : इमानुएल काण्ट

रूपरेखा

7.0 उद्देश्य

7.1 परिचय

7.2 परिणामवाद बनाम कर्तव्यशास्त्र

7.3 मानकीय नीतिशास्त्र और कर्तव्यशास्त्र

7.4 कर्तव्यशास्त्र के विभिन्न सिद्धान्त

7.5 इमानुएल काण्ट

7.6 काण्ट का कर्तव्यपरक या परिणाम–निरपेक्ष नीति–दर्शन

7.7 सापेक्ष आदेश

7.8 निरपेक्ष आदेश

7.9 सारांश

7.10 कुंजी शब्द

7.11 अन्य सहायक अध्ययन–सामग्री एवं सन्दर्भ

7.12 बोध–प्रश्नों के उत्तर

MAADHYAM IAS
'way to achieve your dream'

7.0 उद्देश्य

प्रस्तुत इकाई के लक्ष्य हैं,

- परिणामवाद और कर्तव्यशास्त्र के मध्य अन्तर को समझना।
- कर्तव्यशास्त्र के सिद्धान्तों को जानना।

* डॉ. रिचा शुक्ला, सहायक प्राध्यापक, ओ. पी. जिंदल ग्लोबल विश्वविद्यालय, सोनीपत, अनुवादक– श्री आशुतोष व्यास, परामर्शदाता (दर्शनशास्त्र), एसओआईटीएस, इग्नू

- नैतिक आदेशों के अर्थ और महत्ता को समझना।
- काण्ट के नीति–दर्शन को समझना।

7.1 परिचय

'डिऑन्टोलोजी' पद ग्रीक पदों 'डिऑन' और 'लोगोस' के योग से बना है। जिसमें 'डिऑन' पद, कर्तव्य को संदर्भित करता है और 'लोगोस', विज्ञान को संदर्भित करता है। कर्तव्यपरक या कर्तव्यशास्त्रीय सिद्धान्तों का विचारणीय विषय लोगों के कृत्य हैं, न कि उन कृत्यों के परिणाम। इसी कारण से इसे गैर–परिणामवाद (निर्परिणामवाद) भी कहा जाता है। यह दार्शनिक विचारधारा कर्तव्य और मानवीय आचरण/कृत्य के मध्य सम्बन्ध की उच्च महत्ता बताता है। कोई कृत्य नैतिक रूप से शुभ/अच्छा है, क्योंकि यह स्वयं में शुभ/अच्छा है; यह शुभत्व के कुछ विशिष्ट पहलू रखता है। इसीलिए कुछ कार्य/कृत्य कर्तव्य की प्रकृति के होते हैं। 'कर्तव्य के लिए कर्तव्य', 'ईमानदारी स्वयं में शुभ है' जैसे पद कर्तव्यशास्त्र को विवेचित करने वाली कुछ अभिव्यक्तियां हैं। अतः, किसी कृत्य को उचित या अनुचित कौन नियत करता है? कर्तव्यशास्त्र के अनुसार, उचित और अनुचित कृत्य के मध्य अन्तर नियम या सिद्धान्त करते हैं। 'असत्य मत बोलो', 'चोरी मत करो', 'धोखा मत दो' इत्यादि अभिव्यक्तियां इसके अंग हैं। इन नियमों को तीन प्रकारों में वर्गीकृत किया जा सकता हैः 1) वे नियम जो कहते हैं कि हमें क्या करना चाहिए (कर्तव्यपरक, विधि, बाध्यकारी), 2) नियम जो कहते हैं कि हमें क्या नहीं करना चाहिए (निषेध), 3) नियम जो कहते हैं कि हम क्या कर सकते हैं (अनुमोदित परन्तु न तो कर्तव्य और न ही निषेध)। कर्तव्यपरक या परिणाम–निरपेक्ष नीति–दर्शन कहता है कि बिना परिणाम पर विचार किये कुछ कृत्यों से दूर रहना (न करना) हमारा कर्तव्य है। यदि नैतिक नियम है कि 'असत्य मत बोलो', तो यह हमारा कर्तव्य है कि किसी भी परिस्थिति में हम असत्य न बोलें। कर्तव्यशास्त्र और परिणामवाद मानवीय आचरण या व्यवहार के विश्लेषण के विषय में एक–दूसरे के विरोधी हैं।

7.2 परिणामवाद बनाम कर्तव्यशास्त्र

जैसाकि नाम सुझाता है 'परिणामवाद' किसी कृत्य का मूल्य इसके 'परिणाम' को देखकर मापता है। अनेक कई जो परिणामवाद की आलोचना करते हैं और कर्तव्यपरक नीतिशास्त्र का समर्थन करते हैं, वे यह वस्तुनिष्ठता और संहिता या आचरण के नियमों के आधार पर करते हैं। कुछ आलोचक कहते हैं कि परिणामवाद आत्मनिष्ठतावाद या विषयिनिष्ठतावाद को अधिक प्रश्रय देते हैं, जब वे यह कहते हैं कि किसी कृत्य का उचित या अनुचित के रूप में मूल्यांकन उनके द्वारा उत्पन्न परिणामों को ध्यान में रखकर किया जाना चाहिए। इसके विपरीत,

'कर्तव्यपरक नीतिशास्त्र' में आत्मनिष्ठता का कोई स्थान नहीं हैय अपने कर्तव्यों और उत्तरदायित्वों के अनुसार आचरण करो, संहिता के नियम के अनुसार कृत्य करो। दृष्टान्ततः, जब आप अपने साथी से विश्वासघात करते हैं और उसके संदेह करने पर आप असत्य बोलते हैं कि आप उसे आघात नहीं पहुँचाना चाहते थे। परिणामवाद के दृष्टिकोण से, इसे उचित कहा जायेगा क्योंकि असत्य बोलने का परिणाम साथी को आघात न पहुँचाना है। इस प्रकार परिणामवादी किसी कृत्य का मूल्य या औचित्य इसके परिणाम से मापते हैं। किसी कृत्य का वृहद शुभ उस कृत्य के परिणाम या फल को ध्यान में रखकर विश्लेषित किया जाना चाहिए। जबकि कर्तव्यशास्त्र में यह नैतिक दायित्व और नियमों से सम्बन्धित है; नैतिक नियमों के अनुसार कृत्य किया जाना चाहिए। उपरोक्त उदाहरण में, 'कर्तव्यशास्त्री' इसे अनुचित कहेंगे क्योंकि अन्ततः आप न केवल अपने साथी को धोखा दे रहे हैं, अपितु असत्य न बोलने के सिद्धान्त का भी अतिक्रमण कर रहे हैं। अतः कर्तव्यपरक नीतिशास्त्र के अनुसार, आपको अपने साथी के सामने अपने अपराध को स्वीकार करना चाहिए चाहे फिर उसके आपको क्षमा करने का अवसर न्यून हो और आपका वैवाहिक सम्बन्ध समाप्त हो जाए।

'कर्तव्यपरक सिद्धान्त' परिणाम का महत्व नहीं है, अपितु अभिप्राय या नीयत का है। हम क्या करते हैं और कैसे करते हैं की अपेक्षा के बिना, जो अनुचित है वह अनुचित है। बिना इस तथ्य की अपेक्षा के कि असत्य बोलकर आप अपने वैवाहिक–सम्बन्ध को बचा सकते हैं, आप विश्वासघाती हैं यदि आप अपने साथी के प्रति विश्वासघात करते हैं। आप विश्वासघाती भी हैं और असत्यवादी भी।

MAADHYAM IAS

परिणामवादी नीतिशास्त्र और मूल्यपरक नीतिशास्त्र के साथ, ये सिद्धान्त भी बहुत लोकप्रिय हैं, कर्तव्यपरक नीतिशास्त्र मानकीय नीतिशास्त्र का महत्वपूर्ण घटक है। आपका विधि के अनुसार कार्य करना या न करना, नियमों का पालन करना या न करना, ही महत्वपूर्ण है। आपका कृत्य तभी उचित होगा जब नैतिक सिद्धान्त (नैतिक नियमों/परिपाटियों) से मेल खाता हो। उदाहरणार्थ, आप निर्धन हैं और भूखे मर रहे हैं। आप अपने लिए भोजन नहीं खरीद सकते। आप देखते हैं कि सड़क पर एक व्यक्ति अपने रुपयों के प्रति लापरवाह है। आप जानते हैं कि यदि आप उससे धन चुरा लेते हैं, आप स्वयं के लिए भोजन खरीद सकते हैं और आप भूखों नहीं मरेंगे। कर्तव्यपरक नीतिशास्त्र के अनुसार, भूख से मरने की अवस्था में भी आपको रुपये नहीं चुराना चाहिए, क्योंकि चोरी करना गलत है।

इस सिद्धान्त की आलोचना अत्यन्त कठोर और प्रतिबन्धकारी होने के आधार पर की गई है। आप असत्य–सम्भाषण, चोरी या धोखा नहीं कर सकते हैं, क्योंकि यह नैतिकता के नियमों के विरुद्ध है। जो उचित है वही करें। यदि आपका असत्य–सम्भाषण किसी को लाभ पहुँचा सकता है, तो भी आप असत्य नहीं बोल सकते, क्योंकि यह नैतिक रूप से अनुचित है। किसी कृत्य की नैतिकता नियम आधारित होती है, जिसे 'दायित्व' भी कहते हैं। हम एक और

उदाहरण लेते हैं, आप अपने कार्यालय–सहकर्मियों के साथ किसी प्रोजेक्ट पर कार्य कर रहे हैं, और आपने बहुत अधिक योगदान नहीं दिया है। आपके अधिकारी ने आपको प्रोजेक्ट की प्रस्तुति के लिए कहा। आप जानते हैं कि आपके सहकर्मी प्रस्तुति के समय उपस्थित नहीं होंगे। इसलिए आप प्रोजेक्ट का अधिकतर श्रेय स्वयं लेने का निश्चय करते हैं, क्योंकि आपको पदोन्नति की आवश्यकता है। कर्तव्यशास्त्री कहेंगे कि आपने अनुचित किया है। किसी भी परिस्थिति में असत्य–सम्भाषण अनुचित है। असत्य–सम्भाषण से आपने नैतिक नियम का उल्लंघन किया है, अतः यह कृत्य अनुचित है।

दायित्व और कर्तव्यों का सभी स्थितियों से निरपेक्ष रूप में पालन किया जाना चाहिए। इसे समझने के लिए एक और उदाहरण लेते हैं, आप न्यायाधीश हैं और आपकी अदालत में एक मुकदमा आता है, जिसमें आपको एक व्यक्ति (जो कभी आपका मित्र था लेकिन उसने आपको धोखा दिया था) के किसी कार्य के सम्बन्ध में निर्णय करना है। उस व्यक्ति को दोषसिद्ध करके आपके पास बदला लेने का अवसर है। लेकिन आपको अपनी उस व्यक्ति के सम्बन्ध में पुरानी समस्याओं के आधार पर निर्णय नहीं लेना चाहिए। न्यायाधीश के रूप में आपका दायित्व सत्य को सामने लाने का है। अपनी शक्ति का प्रयोग करके अपने मित्र को क्षति पहुँचाने पर, न्यायाधीश के रूप में आपका कर्तव्य छला जायेगा।

बोध–प्रश्न I

ध्यातव्यः क) उत्तर हेतु दिये गये स्थान का उपयोग कीजिए।

MAADHYAM IAS

ख) अपने उत्तर का मिलान इकाई के अन्त में दिये गये उत्तर से कीजिए।

1. कर्तव्यपरक–नीतिशास्त्र या परिणाम–निरपेक्ष नीतिशास्त्र क्या है? व्याख्या कीजिए।

.....
.....
.....
.....

2. क्या परिणामवाद और कर्तव्यशास्त्र के मध्य कोई अन्तर है? व्याख्या कीजिए।

.....
.....
.....
.....

3. क्या कर्तव्यशास्त्र कर्तव्य, दायित्व से कोई सम्बन्ध रखता है? यदि हाँ, तो व्याख्या कीजिए।

.....

.....

.....

.....

7.3 मानकीय नीतिशास्त्र और कर्तव्यशास्त्र

मानकीय नीतिशास्त्र नीति दर्शन का अंग है, जोकि उचित या अनुचित कृत्य क्या है, पर चर्चा करता है। मानकीय नीतिशास्त्र मुख्यतः दो भागों में विभक्त किया जाता है, कर्तव्यशास्त्र और प्रयोजनवादी सिद्धान्त। इनमें से प्रथम, कृत्य को निम्न करने के लिए मूल्यों का सहारा नहीं लेता, जबकि बाद वाला लेता है। मानकीय नीतिशास्त्र को समझने के लिए अधिकांश दार्शनिक अधि–नीतिशास्त्र और अनुप्रयुक्त नीतिशास्त्र में भेद करते हैं। अधि नीतिशास्त्र नैतिक भाषा और नैतिक तथ्यों के अर्थ और परिभाषा का अध्ययन है, जबकि अनुप्रयुक्त नीतिशास्त्र हमारी व्यावहारिक समस्याओं के क्षेत्र में नैतिक सिद्धान्तों के प्रयोग का अध्ययन है।

7.4 कर्तव्यशास्त्र के विविध सिद्धान्त

MADHYAM IAS

यह भलीभांति स्पष्ट हो गया है कि कर्तव्यशास्त्र परिणामवाद और उसके सिद्धान्तों के विरुद्ध है। कर्तव्यशास्त्री के लिए, जो भी नैतिकतः निषिद्ध है वह स्वीकार्य नहीं हो सकता, फिर चाहे इसके परिणाम कितने भी लाभकारी या उपयोगी हों। कोई कृत्य किसी नैतिक नियम के संगत होना चाहिए, उसके असंगत नहीं। सभी कर्तव्यशास्त्री स्वीकारते हैं कि 'शुभ' या 'शुभत्व' संसार का वस्तुनिष्ठ गुण है और नैतिक कर्ता के पास इसे पहचानने की सामर्थ्य होनी चाहिए और परिणाम–निरपेक्ष होकर नैतिक सिद्धान्तों का पालन करना चाहिए।

कर्तव्यपरक सिद्धान्तों को मोटे तौर पर दो रूपों में वर्गीकृत किया जा सकता हैः क्रिया कर्तव्यपरक नीतिशास्त्र और नियम कर्तव्यपरक नीतिशास्त्र। क्रिया–कर्तव्यपरक नीतिशास्त्र वैयक्तिक कृत्यों और उनकी परिस्थितियों (सन्दर्भों) को ध्यान में रखते हुए कर्तव्यपरक नियमों का अनुप्रयोग करता है। नियम–कर्तव्यपरक नीतिशास्त्र वैयक्तिक कृत्य या उसकी परिस्थितियों (सन्दर्भों) पर विचार किये बिना सार्वभौमिक रूप से नैतिक नियमों का अनुप्रयोग करता है। उदाहरणार्थ, क्रिया–कर्तव्यशास्त्र इस पर विचार करेगा कि क्या जॉन का स्मिथ की हत्या करना अनुचित था या नहीं, नियम–कर्तव्यशास्त्र कहेगा कि हत्या करना अनुचित है।

कर्तव्यपरक नीतिशास्त्र के प्रख्यात समर्थक इमानुएल काण्ट थे। उनके नीति–दर्शन ने आधुनिक नीति–दर्शन पर गहरा प्रभाव डाला।

7.5 इमानुएल काण्ट (1724–1804)

इमानुएल काण्ट पाश्चात्य दर्शन के इतिहास में एक महत्वपूर्ण दार्शनिक हैं। ज्ञानमीमांसा, तत्त्वमीमांसा, नीति दर्शन, सौन्दर्यशास्त्र सम्बन्धी उनके विचार व्यापकरूप से ख्यात और चर्चा के विषय रहे हैं। उनके महत्वपूर्ण कार्य, *क्रिटिक ऑफ प्योर रीजन, क्रिटिक ऑफ प्रैक्टिकल रीजन, क्रिटिक ऑफ जजमेंट* और *ग्राउन्डवर्क फोर मेटाफिजिक्स ऑफ मॉरल्स* हैं।

7.6 काण्ट का कर्तव्यपरक या परिणाम–निरपेक्ष नीति–दर्शन

काण्ट के अनुसार, आपके कृत्यों का नैतिक मूल्य केवल तभी है, जब वे आपके कर्तव्य या दायित्व से मेल खाते हैं और कर्तव्य कर्तव्य के लिए किया जाना चाहिए। काण्ट की मान्यता है कि नैतिक कृत्य सार्वभौमिक नैतिक संहिताओं/नियमों जैसेकि असत्य मत बोलो, धोखा मत दो आदि, के परिणाम होने चाहिए। व्यक्तियों को अपने नियमों का पालन करना चहिए और अपने कर्तव्यों का पालन करना चाहिए। अनेक लोग इसे अन्तर्प्रज्ञा स्वरूप मानते हैं, जैसे कि हम अन्तर्तम में जानते हैं कि क्या नैतिक है या क्या अनैतिक है। हम जानते हैं कि हमें असत्य नहीं बोलना चाहिए या धोखा नहीं देना चाहिए या किसी की हत्या नहीं करनी चाहिए। लेकिन काण्ट कहते हैं, कि मुद्दा यही समाप्त नहीं होता, यह यहाँ प्रारम्भ होता है क्योंकि हमें स्वयं के लिए कोई अपवाद नहीं बनाना चाहिए।

MADHYAM IAS
'way to achieve your dream'

नैतिक रूप से अच्छा होने के लिए आपको कुछ विशिष्ट नियमों का अनुसरण करना पड़ता है। कर्तव्यशास्त्र की सलाह है कि सार्वभौमिक नैतिक नियमों की अवहेलना नहीं करना चाहिए, काण्ट कहते हैं कि धर्म और नैतिकता एक–दूसरे से संगत नहीं हैं, और उचित एवं अनुचित के मध्य भेद करने के लिए हमें 'तर्कशक्ति' या मानवीय बुद्धि का प्रयोग करना चाहिए। काण्ट के अनुसार नैतिकता स्थिर है। उन्होंने दो प्रकार के कृत्यों के मध्य अन्तर किया है:

वह कृत्य जो हमें नैतिकतः करना चाहिए,

वह कृत्य जो हम बिना किसी नैतिक तर्कशक्ति/बुद्धि, संहिता के करते हैं।

7.7 सापेक्ष आदेश

इसे समझने के लिए एक उदाहरण लेते हैं; यदि आपको किसी परीक्षा को उत्तीर्ण करने की इच्छा है, तो आपको पढ़ाई 'करनी चाहिए'। यदि आप धनवान होना चाहते हैं, तो आपको

कठोर परिश्रम आरम्भ कर देना चाहिए। काण्ट इन्हें सापेक्ष आदेश कहता है। ये कुछ विशिष्ट आदेश हैं जिनका पालन करना चाहिए, यदि आप यह कुछ पाने की इच्छा रखते हैं। दृष्टान्ततः, यदि आप भूखे हैं और अपनी भूख से छुटकारा चाहते हैं तो आपको कठोर परिश्रम की आवश्यकता है।

आम भाषा में आदेश निर्देश को संदर्भित करते हैं, वे बतलाते हैं कि कैसे कोई कार्य करना चाहिए। काण्ट सापेक्ष और निरपेक्ष आदेश में अन्तर करते हैं। सापेक्ष आदेश उन नियमों/आज्ञाओं/निर्देशों को संदर्भित करते हैं जो कहते हैं कि यदि कुछ पाना चाहते हैं तो उसके लिए क्या करना चाहिए। दृष्टान्ततः, यदि कोई धनवान होना चाहता है, तो सापेक्ष आदेश उससे कहेगा कि नौकरी प्राप्त करो या कठोर परिश्रम करो। यदि आप अच्छे अंक चाहते हो, तो अध्ययन करो। सापेक्ष आदेश आपसे कहेगा या निर्देश देगा कि यह करो। अतः यह उन लोगों पर लागू होता है जो कोई लक्ष्य प्राप्त करना चाहते हैं, यदि आप अच्छे अंक प्राप्त नहीं करना चाहते या धनवान नहीं होना चाहते, आपको इन सापेक्ष आदेशों को मानने की कतई आवश्यकता नहीं है। इसलिए जैसाकि नाम सुझाता है ये अपने स्वरूप में सापेक्ष होते हैं। नैतिकता निरपेक्ष आदेश के क्षेत्र में आती है, न कि सापेक्ष आदेश के। आधुनिक कर्तव्यपरक नीतिशास्त्र का दर्शन काण्ट ने अपने निरपेक्ष आदेश की अवधारणा के माध्यम से दिया।

7.8 निरपेक्ष आदेश

MAADHYAM IAS

काण्ट के लिए, निरपेक्ष आदेश वे आज्ञाएं हैं जिन्हें अपनी इच्छाओं से निरपेक्ष रूप में 'पालन करना आवश्यक है'। ऐसा इसलिए क्योंकि नैतिक दायित्व मानवीय बुद्धि या व्यावहारिक बुद्धि से निगमित होते हैं। निरपेक्ष आदेश हमारे नैतिक दायित्व हैं और उनका स्थिति–निरपेक्ष रूप में अनुसरण किया जाना चाहिए। काण्ट के अनुसार, इससे कोई फर्क नहीं पड़ता कि आप नैतिक होना चाहते हैं या नहीं, आपको निरपेक्ष आदेशों की आज्ञाओं का अनुसरण करना पड़ता है। वे आपकी आकांक्षाओं और इच्छाओं से स्वतन्त्र हैं।

उनके अनुसार, आपको सदैव उचित और अनुचित क्या है, जानने के लिए धर्म की आवश्यकता नहीं होती, जब आप अपनी 'बुद्धि' मात्र के उपयोग से यह कार्य कर सकते हैं। उन्होंने इन आदेशों के तीन सूत्र दिए, प्रथम के अनुसार,

"उस सूत्र के अनुसार कार्य करो जिसके बारे में तत्क्षण आप असंगताओं से रहित सार्वभौमिक विधि बनाने का संकल्प कर सकें।"

प्रथम सूत्र सार्वभौमिकता से सम्बन्ध रखता है, आपका कृत्य और उसका स्वरूप सार्वभौमिक रूप से प्रयोग किया जाना चाहिए। सूत्र पद नियम या सिद्धान्त (किस तरह कार्य किया जाना

चाहिए) को, जबकि सार्वभौमिक नैतिक विधि उस कृत्य को संदर्भित करती है जो समान परिस्थिति में किया जाना चाहिए। अतः, कार्य करने से पूर्व, यह सोचना चाहिए कि आपके कार्य का क्या सूत्र है? दूसरे शब्दों में, मेरे किसी विशिष्ट ढंग से कार्य करने के पीछे क्या कोई सामान्य नियम है।

इसे स्पष्ट तौर पर समझने के लिए एक उदाहरण लेते हैं। मान लीजिए, आपने परीक्षा में कम अंक प्राप्त किए और आपकी मां ने आपसे पूछा कि आपने परीक्षा कैसा प्रदर्शन किया। आपने असत्य बोला कि आपने अच्छा प्रदर्शन किया है। अब, एक बाधा यह है कि अंकपत्र पर मां के हस्ताक्षर की आवश्यकता है। आप जानते हैं कि मां अपने काम पर जाने से पहले कई कागजातों और चौकों पर हस्ताक्षर करती हैं, आप अपना अंकपत्र उन कागजातों और चौकों के बीच में रख देते हैं। अवश्य ही यह माँ से सामना करने से बचने के लिए है, क्योंकि आपने पूर्व में माँ से अपने अंकों के बारे में असत्य बोला है। आश्चर्यजनक रूप से, जब आप वापस आते हैं, पाते हैं कि आपके अंकपत्र पर हस्ताक्षर हो गये हैं।

आपकी मां जल्दी में थी और यह देख न सकीं की कागजों के बीच में आपका अंकपत्र भी था। आपने अपनी मां से असत्य बोला और उन्हें धोखा भी दिया है। यह कृत्य नैतिकतः अनुचित था और इस कृत्य (असत्य बोलने और धोखा देने) को करने से, आपने असत्य–सम्भाषण और धोखा देने को सार्वभौमिक बना दिया है। और आपने यह मिसाल बना दी कि प्रत्येक व्यक्ति को धोखा देना चाहिए और असत्य बोलना चाहिए। यदि आप यह करने के योग्य हैं, तो प्रत्येक यह करने के योग्य होना चाहिए। इसलिए काण्ट का मानना है कि आप अपने कार्य का अपवाद नहीं बना सकते हैं।

MAADHYAM IAS
'way to achieve your dream'

नैतिक नियम किसी पर भी और सबके लिए लागू होते हैं। इसे समझने के लिए एक उदाहरण लेते हैं। आपका भाई दिवालिया है और वह आपके निवास में छिपा है। आप मामले की गम्भीरता को समझते हैं और अपने भाई से अपने निवास पर सुरक्षित महसूस करने को कहते हैं। इसी बीच आपको ज्ञात होता है कि पुलिस उसकी तलाश में है और पुलिस ने तलाशी अभियान शुरु कर दिया है। कुछ समय पश्चात आपके घर की घंटी बजती है, आशानुकूल पुलिस आई थी। यह जानकर कि आप उसकी बहिन हैं, पुलिस ने आपसे सम्पर्क करने का विचार किया। आपने पुलिस से असत्य बोला कि आपका भाई आपके निवास पर नहीं है। पुलिस के आने का अनुमान कर आपका भाई भयभीत हो गया और उसने घर से भागने का निश्चय किया और भागा। कुछ क्षण पश्चात् पुलिस ने उसे देखा और पकड़ लिया और कारागार में बन्द कर दिया।

अब काण्ट के अनुसार, आप अपने भाई की परेशानी के लिए उत्तरदायी हैं। क्योंकि यह आपके असत्य बोलन से आरम्भ हुआ, और घटित हुआ। यदि आपने पुलिस को सत्य बताया होता,

तब आपका भाई अपने कृत्य के लिए पूर्णतः उत्तरदायी होता। आप उत्तर देने से मना कर सकती थीय आप विषय बदल सकती थीं। आपने असत्य बोलकर सार्वभौमिक नैतिक नियम का उल्लंघन किया है।

काण्ट का दूसरा सूत्र इस बात पर ध्यान केन्द्रित करता है कि मनुष्य के साथ किस तरह व्यवहार करना चाहिए। उनके शब्दों में,

"इस तरह कृत्य करो कि मानवता को, चाहे अपने लिए या अन्यों के लिए, साध्य के रूप में व्यवहरित करो, न कि मात्र साधन के रूप में।"

काण्ट के मत में हम वस्तुओं को सदैव साधन के रूप में प्रयोग करते हैं। पेन का उपयोग लिखने के लिए हो सकता है, अतः पेन कुछ लिखने का साधन मात्र है। पेन लिखने के साध्य को सिद्ध करने के कारण साधन हुआ। हम स्याही खत्म हो जाने पर पेन फेंक देते हैं, क्योंकि अब यह पेन आपके साध्य को सिद्ध नहीं कर सकता। काण्ट कहते हैं वस्तुओं का इस तरह उपयोग किया जा सकता है, पर मनुष्यों का नहीं। मनुष्य 'स्वयं में साध्य' है। किसी भी मनुष्य को किसी उपयोग के लिए वस्तु की तरह नहीं व्यवहरित किया जा सकता। इसके विपरीत, मनुष्य स्वयं में साध्य (स्वतः साध्य) है। मनुष्य स्वयं के लिए और 'स्वयं में' अस्तित्व रखता है।

काण्ट ने यह कभी नहीं कहा कि हम एक–दूसरे को साधन के रूप में उपयोग नहीं करते हैं। हम मनुष्य हैं और एक–दूसरे पर निर्भर हैं, हम एक–दूसरे पर भरोसा करते हैं। उदाहरण के लिए, आप भोजन में मां के पाक–कौशल्य का उपयोग करते हैं, क्योंकि वह आपके लिए खाना पकाती हैं। अपने पिता का धन ट्यूशन शुल्क के लिए उपयोग करना। लेकिन हमें एक–दूसरे को साधन मात्र के लिए उपयोग नहीं करना चाहिए। हम मनुष्य हैं, बौद्धिक हैं। हमें अन्यों को अपने लाभ के लिए नहीं देखना चाहिए। जब अपने किसी साध्य की पूर्ति के लिए किसी व्यक्ति को साधन के रूप में व्यवहरित करते हैं, हम उस व्यक्ति की इच्छा, स्वतन्त्रता, प्रज्ञा और तर्क–बुद्धि का अतिक्रमण करते हैं। यदि आप ऐसा करते हैं, तो आप काण्ट द्वारा बताये गये द्वितीय सूत्र या आदेश का अतिक्रमण करते हैं। नैतिक सत्य सार्वभौमिक हैं और इसके लिए आपको किसी ईश्वर के शासन की आवश्यकता नहीं है।

निरपेक्ष आदेश का अन्तिम और तृतीय सूत्र कहता है,

"उस सूत्र के अनुसार कार्य करो कि आप सार्वभौमिक विधि के विधायक बन सको"

काण्ट यहाँ स्मरण करवाते हैं कि हर उस क्षण जब हम कार्य करते हैं, हम कृत्य और कार्य करने के प्रत्यय और प्रकृति में योगदान देते हैं। हम इसे सामान्य बनाते हैं और हमारे समक्ष सार्वभौमिक नैतिक विधि या नियम के अनुसार कार्य करने का विकल्प सदैव होता है। काण्ट का नीति दर्शन 'संकल्प स्वातन्त्र्य' पर आधारित है। आपके कृत्य सार्वभौमिकता रखने चाहिए,

वे स्वयं में साध्य और स्वायत्त होने चाहिए। काण्ट के अनुसार, यदि आप अपने साथी को भावनात्मक, शारीरिक, मानसिक धोखा देते हैं और बहुत आसानी से इस धोखे को उससे छिपा ले जाते हैं। तब आप 'असत्य बोलने' और 'धोखा देने' के कार्य को सार्वभौमिक बनाते हैं। तब सबके द्वारा यह कार्य करने पर आपको असुविधा नहीं होनी चाहिए।

काण्ट यह देखकर आश्चर्यचकित थे कि लोग किस हद तक धर्मांध हैं। उन्होंने सोचा कि यह वह समय है जब लोगों को अपने धार्मिक विश्वासों को जला देना चाहिए, ईश्वर को शुभ के उच्चतम अभिभावक के रूप में देखना बंद कर देना चाहिए। अतः धर्म की प्रभुसत्ता को तर्कबुद्धि से स्थानान्तरित कर देना चाहिए। वे कहते हैं कि सभी धर्मों में यह अन्तर्निहित है कि कैसे नैतिक जीवन जीना चाहिए। इसलिए उन्होंने निरपेक्ष आदेश की अवधारणा प्रस्तुत की जिसे प्रथमतः उनकी पुस्तक *ग्राउन्डवर्क फॉर मेटाफिजिक्स ऑफ मॉरल्स* में वर्णित किया गया। निरपेक्ष आदेश के अनुसार, किसी व्यक्ति को उस सूत्र के अनुसार कार्य करना चाहिए जिसे उसी समय सार्वभौमिक विधि या नियम बनाया जा सके। इसका अधिकांश धर्म अभिभाषण करते हैं, जैसे 'असत्य मत बोलो', 'धोखा मत दो', 'कार्य करो जिसे पूर्ण करने में समर्थ हो' आदि कथन। कोई भी धर्म मनुष्य का साधनरूप में उपयोग करने की शिक्षा नहीं देता।

ये आदेश 'दर्पण' हैं, जो बताता है कि कैसे कार्य करना चाहिए। यह आपका बौद्धिक आत्म है। शुभ करने का संकल्प 'शुभ संकल्प या शुभेच्छा' कहलाता है। शुभ संकल्प की अवधारणा को समझने के लिए एक उदाहरण लेते हैं। आप बस का इंतजार कर रहे हैं और देखते हैं कि एक महिला का पर्स सड़क पर गिर गया है। आप यह देख सकते हैं क्योंकि अपने पर्स से मोबाइल निकालते समय उसका पर्स सड़क पर गिर गया था। वृहद बिन्दु यह है कि आप इस स्थिति में क्या करेंगे? इसलिए आपने पर्स उठाने और उस महिला को देने का निश्चय किया। आपने एक अजनबी की सहायता क्यों की? आपने यह इसलिए किया क्योंकि आप उस महिला की नजरों में अच्छा दिखना चाहते थे, आपने यह इसलिए किया क्योंकि कुछ व्यक्ति यह देख पा रहे थे। इसलिए आपने सहायता की क्योंकि आप अन्य लोगों के मूल्यांकन का पात्र नहीं बनना चाहते थे।

काण्ट के अनुसार, इस तरह के कृत्य शुभ संकल्प से प्रेरित नहीं हैं। शुभ संकल्प के अन्तर्गत किये जाने वाले कृत्य अपने आप में शुभ हैं और वे किसी और हेतु या बदले में कुछ पाने हेतु नहीं किये जाते। शुभ संकल्प वह है जो आप अपने नैतिक तर्कबुद्धि और प्रज्ञा के अनुसार करते हैं। आपको दूसरों के कथन, ईश्वर और धर्म के कथन के अनुसार कार्य नहीं करना चाहिए। आपको नैतिक नियमों के अनुसार कार्य करना चाहिए। नैतिक नियम आपकी प्रज्ञा और नैतिक तर्कबुद्धि से निःसृत हैं।

7.9 सारांश

प्रस्तुत इकाई में हमने मानकीय नीतिशास्त्र के विस्तृत क्षेत्र को जानने का प्रयास किया, यहाँ हमने यह समझने का प्रयास किया कि कर्तव्यपरक नीतिदर्शन का मानकीय नीतिशास्त्र के विस्तृत क्षेत्र में क्या स्थान है। हमने यह समझने का प्रयास किया कि नैतिक आदेश क्या हैं और यह भी कि सापेक्ष और निरपेक्ष आदेश के मध्य क्या भेद है। यह सब इन प्रश्नों के बोध के लिए था कि हम कैसे अच्छे बन सकते हैं? और कैसे नैतिक जीवन के रास्ते पर प्रशस्त हो सकते हैं।

बोध–प्रश्न II

ध्यातव्यः क) उत्तर हेतु दिये गये स्थान का उपयोग कीजिए।

ख) अपने उत्तर का मिलान इकाई के अन्त में दिये गये उत्तर से कीजिए।

1. इमानुएल काण्ट कौन थे? क्या वे एक नीति दार्शनिक थे?

.....
.....
.....
.....

2. निरपेक्ष आदेश और सापेक्ष आदेश में क्या अन्तर है?

MAADHYAM IAS
'way to achieve your dream'

.....
.....
.....
.....

3. नैतिक नियमों के अनुसार कार्य करने की हमें क्या आवश्यकता है?

.....
.....
.....
.....

7.10 कुंजी–शब्द

कर्तव्यशास्त्र : 'डिऑन्टोलोजी' पद ग्रीक पदों 'डिऑन', जो दायित्व को संदर्भित करता है और 'लोगोस', जो विज्ञान को संदर्भित करता है, के योग से बना है। कर्तव्यपरक सिद्धान्त का विचारणीय विषय लोगों के कृत्य हैं, न कि उन कृत्यों के परिणाम।

निरपेक्ष आदेश : निरपेक्ष आदेश नैतिक दायित्व हैं और वे परिस्थिति–निरपेक्ष पालनीय हैं।

सापेक्ष आदेश : सापेक्ष आदेश उन नियमों/आदेशों/निर्देशों को संदर्भित करते हैं जो बताते हैं कि यदि हम कुछ इच्छित करते हैं, तो हमें क्या करना चाहिए।

शुभेच्छा या शुभ संकल्प : शुभ कृत्य करने का संकल्प।

7.11 अन्य सहायक अध्ययन–सामग्री एवं सन्दर्भ

काण्ट, इमानुएल. *ग्राउन्डवर्क फॉर मेटाफिजिक्स ऑफ मॉरल्स.* ट्रांस्लेटिड बाई पॉल ग्वायर एण्ड एलेन वुड. न्यू यॉर्कः कम्ब्रिज यूनिवर्सिटी प्रेस, 1998.

काण्ट, इमानुएल. *क्रिटीक ऑफ प्रैक्टिकल रीजन.* ट्रांस्लेटिड बाई मेरी ग्रेगर. कैम्ब्रिजः कैम्ब्रिज यूनिवर्सिटी प्रेस, 2015.

पॉडकास्ट एवं ऑनलाइन संदर्भ

https://philosophynow-org/podcasts/The_Hidden_World_of_Immanuel_Kant

https://podcasts-oÛ-ac-uk/series/kants&critique&pure&reason

https://www-bbc-co-uk/programmes/b0952zl3

MAADHYAM IAS
'way to achieve your dream'

7.12 बोध–प्रश्नों के उत्तर

बोध–प्रश्न I

1. डिऑन्टोलोजी (कर्तव्यशास्त्र) पद ग्रीक पदों डिऑन और लॉजिक से बना है, जो क्रमशः कर्त्तव्य या दायित्व और विज्ञान को संदर्भित करते हैं। यह विचारधारा दर्शन में कर्तव्य और मानवीय आचरण/कृत्य की नैतिकता के मध्य सम्बन्ध को महत्ता प्रदान करती है। कोई कृत्य नैतिकतः शुभ है क्योंकि यह स्वयं में शुभ है; यह किसी नैतिक नियम के अनुसार सम्पादित किया जाता है।

2. परिणामवाद और कर्तव्यशास्त्र मानकीय नीतिशास्त्र के अन्तर्गत दो भिन्न सिद्धान्त हैं। एक ओर जहाँ पहला कहता है कि किसी कार्य की नैतिकता उसके परिणाम को देखकर निश्चित

की जानी चाहिए और वहीं बाद वाला, मानवीय आचरण के विश्लेषण में नैतिक नियमों, कर्तव्यों और उत्तरदायित्वों के बारे में चर्चा करता है।

3. हाँ, कर्तव्यशास्त्र का कर्तव्यों और दायित्वों के साथ सम्बन्ध है, क्योंकि इसका मानना है कि यदि कोई व्यक्ति कर्तव्यों और दायित्वों के अनुसार कार्य करेगा (संक्षेप में यदि वह नैतिक नियम का पालन करेगा), तो वह कार्य प्रकृति में शुभ या अच्छा होगा।

बोध–प्रश्न II

1. इमानुएल काण्ट जर्मन दार्शनिक थे। हाँ, उन्हें नीति दार्शनिक के तौर पर भी जाना जाता है। ज्ञानमीमांसा, तत्त्वमीमांसा के अलावा उन्होंने नीति दर्शन पर पर्याप्त लेखन किया है। वास्तव में, कर्तव्यशास्त्र उनके ही कारण स्वीकृत है।

2. हाँ, निरपेक्ष आदेश और सापेक्ष आदेश में अन्तर है। पूर्ववर्ती सार्वभौमिक निरपेक्ष कृत्यों से सम्बन्ध रखता है, जबकि पश्चातवर्ती उन विशिष्ट लक्ष्यों से जिन्हें आप अपने लिए तय करते हैं, यदि आप कुछ प्राप्त करना चाहते हैं, तो आपको उन निर्देशों का पालन करना होता है।

3. हमें नैतिक नियमों के अनुसार कार्य करना चाहिए क्योंकि ये प्रकृति में सार्वभौमिक हैं, यह शुभ को धारण करता है और उचित कृत्यों के बारे में चर्चा करता है।

MAADHYAM IAS
'way to achieve your dream'

इकाई 8 परिणामवादी नीतिशास्त्रः जे. एस. मिल

रूपेरखा

8.0 उद्देश्य

8.1 परिचय

8.2 परिणामवाद

8.3 परिणामवाद के प्रारूप

8.4 जे. एस. मिल का उपयोगितावाद

8.5 सारांश

8.6 कुंजी शब्द

8.7 अन्य सहायक अध्ययन–सामग्री एवं सन्दर्भ

8.8 बोध–प्रश्नों के उत्तर

8.0 उद्देश्य

MAADHYAM IAS 'way to achieve your dream'

प्रस्तुत इकाई में हम निम्नलिखित मुद्दों की चर्चा करेंगे,

- व्यक्ति को किस तरह कर्म करने चाहिए और किसी कर्म को नैतिक या अनैतिक बनाने वाला तत्व क्या है, प्रश्नों के उत्तर में प्रस्तुत तर्क,
- परिणामवाद क्या है और परिणामवाद के विभिन्न प्रारूपों की व्याख्या,
- शास्त्रीय परिणामवाद अथवा जॉन स्टुअर्ट मिल के उपयोगितावाद पर विशद वर्णन।

8.1 परिचय

* सुश्री सुरभि उनियाल, विद्यावाचस्पति शोधक, दर्शन केन्द्र, जवाहरलाल नेहरू विश्वविद्यालय, दिल्ली,
अनुवादक– डॉ. विजय कुमार, दर्शन विभाग, श्यामा प्रसाद मुखर्जी महाविद्यालय, दिल्ली

नैतिक दर्शन का केन्द्रीय प्रश्न यह है कि व्यक्ति का आचरण कैसे होना चाहिए। जीवन के प्रत्येक क्षण में हम ऐसी परिस्थितियों का सामना करते रहते हैं जबकि हमें यह निर्णय लेना होता है कि इस परिस्थिति में नैतिक रूप से कैसा आचरण उचित है। वास्तव में नियामक नीतिशास्त्र नैतिक आचरण के मानकों की खोज करता है। हम प्रायः शुभ अथवा अशुभ क्या है और जीवन जीने का कौन सा ढ़ंग नैतिक रूप से उचित अथवा अनुचित है जैसे प्रश्नों के सम्बन्ध में नियामक निर्णय लेते हैं। नैतिक व्यवहार को समझने के लिये विभिन्न सिद्धान्तों का विकास किया गया है। विभिन्न सिद्धान्त नैतिक कर्म के संबंध में विभिन्न प्रकार के नियमों अथवा मानकों को प्रस्तुत करते हैं। नियामक नीतिशास्त्र मूलतः दो विस्तृत श्रेणियों में विभाजित हैय कर्तव्यवादी और उद्देश्यवादी। कर्तव्यवादी सिद्धान्त का मुख्य उद्देश्य उन नियमों को जानना है जो मानवीय आचरण का पथ–निर्देशन करते हैं, जबकि उद्देश्यवादी सिद्धान्त कुछ विशिष्ट कर्मों का मूल्य निर्धारित करते हैं और उन मूल्यों को साध्य के रूप में दर्शाते हैं। कर्तव्यवादी दृष्टिकोण कर्तव्य को उन नियमों के अनुसरण के अनुसार परिभाषित करता है, जबकि प्रयोजनवादी दृष्टिकोण कर्तव्य या कर्म को उस कर्म के परिणाम के आधार पर परिभाषित करने का प्रयास करता है। इसलिए प्रयोजनवादी दृष्टिकोण को परिणामवाद भी कहा जाता है।

विभिन्न नियामक सिद्धान्तों के अन्तर को समझने के लिए, निष्क्रिय इच्छामृत्यु का उदाहरण लेते हैं। "क्या निष्क्रिय इच्छामृत्यु नैतिक है?" इस प्रश्न के उत्तर सम्बन्ध में विभिन्न सिद्धान्तों ने भिन्न–भिन्न युक्तियां प्रस्तुत कीं। मान लेते हैं कि कर्तव्यवादी और परिणामवादी दोनों इसे नैतिक रूप से अस्वीकार्य मानते हैं, परन्तु इसका तात्पर्य यह नहीं है कि वे समान मुद्दे के लिए समान युक्ति प्रस्तुत कर रहे हैं, बल्कि, उनके तर्क की आधारभूमि अलग–अलग है। चूँकि कर्तव्यवादी का मानना है कि किसी के जीवन को समाप्त करना अन्तर्निहित रूप से गलत है इसलिए उनके अनुसार निष्क्रिय इच्छा–मृत्यु गलत है फिर चाहे कोई व्यक्ति पीड़ा में ही क्यों न हो। उनके लिए अपने या किसी अन्य के जीवन को समाप्त करना आन्तरिक रूप से गलत है इसलिए यह नैतिक रूप से अस्वीकार्य है। दूसरी ओर, परिणामवादी यही निष्कर्ष भिन्न नैतिक नियमों के आधार पर निकालते हैं। उनके अनुसार, निष्क्रिय इच्छा–मृत्यु नैतिक रूप से इसलिए अस्वीकार्य है क्योंकि इसकी वैधता इसके अनेक दुरूपयोग लेकर आती है अथवा इसकी वैधता सर्वोत्तम परिणाम उत्पन्न नहीं करती है। अतः विभिन्न सिद्धान्त नैतिक कर्म करने के लिये भिन्न–भिन्न नियमों अथवा आदर्शों को प्रस्तुत करते हैं।

यह इकाई परिणामवादी नीतिशास्त्र पर केन्द्रित है। परिणामवादी नीतिशास्त्र का मानना है कि किसी कर्म के उचित एवं अनुचित होने का निर्धारण उस कर्म से उत्पन्न परिणाम के आधार पर किया जाता है। सभी परिणामवादी इन केन्द्रीय विचार को स्वीकार करते हैं कि किसी भी कर्म का नैतिक मूल्यांकन इस तथ्य पर निर्भर करता है कि वह कर्म कितना शुभ परिणाम

उत्पन्न करता है और कितने अशुभ परिणाम को दूर करता है। अतः परिणामवादी दृष्टिकोण से, नैतिक रूप से उचित कर्म वह है जिसका परिणाम शुभ हो।

मिल के उपयोगितावाद की विवेचना की पृष्ठभूमि निर्मित करने के उद्देश्य से इस इकाई का आरम्भ परिणामवाद और उसके विभिन्न प्रकारों के व्याख्या प्रस्तुत करने से होगा।

8.2 परिणामवाद

परिणामवाद नियामक नीतिशास्त्र का वह प्रकार जिसके अनुसार किसी कर्म के लिए नैतिक रूप से महत्वपूर्ण उसके द्वारा उत्पन्न परिणाम है। किसी कर्म या कृत्य के नैतिक मूल्यांकन में उसके द्वारा उत्पन्न परिणाम ही मुख्य रूप से महत्वपूर्ण है। परिणामवादी मानते हैं कि किसी कर्म के बारे में महत्वपूर्ण है कि वह किस तरह का कारणात्मक भेद उत्पन्न करता है, अथवा उससे किस तरह के परिणाम उत्पन्न करने की आशा की जा सकती है। यद्यपि, कभी–कभी हम किसी कृत्य के द्वारा उत्पन्न परिणामों के बारे में निश्चित नहीं होते हैं, तब भी, हम हमारे स्वयं के पूर्वानुभव या अन्यों के अनुभव के आधार पर उस कृत्य के परिणामों का पूर्वानुमान कर सकते हैं। जब हम किसी कृत्य का नैतिक मूल्यांकन करते हैं अथवा हम क्या किया जाये इस पर विचार करते हैं, तब हम उस समग्र अन्तर जो कोई कृत्य पैदा करता है या पैदा कर सकता है, को देखते हैं।

परिणामवाद का मत है कि नैतिकता का उद्देश्य समग्ररूप से शुभ परिणाम उत्पन्न करने वाले कृत्यों को करने में हमारा पथ–निर्देशन करना है। यह सम्भव है कि कौन से कृत्य समग्र शुभ परिणाम लाते हैं, इस पर मतभेद हो सकता है। लेकिन इस विचार पर सहमति है कि हम किसी कृत्य का नैतिक मूल्यांकनय कि वह कृत्य शुभ या अशुभ, उस कृत्य के परिणाम के आधार पर कर सकते हैं। यदि कोई कृत्य समग्र शुभ/कल्याण को उत्पन्न करने में असफल है तो वह कृत्य अशुभ है अन्यथा शुभ। विलियम शॉ वर्णित करते हैं, "गैर–परिणामवादियों से परिणामवादियों के भेद का कारण उनका यह आग्रह है कि शुभ या अशुभ को निश्चित करने के लिए, हमारे कृत्यों के परिणामों से भिन्न अन्य कुछ भी महत्वपूर्ण या आवश्यक नहीं है" (शॉ 2006: 5)।

हम उन कुछ उदाहरणों के बारे में सोच सकते हैं, जिन्हें परिणामवादी दर्शायेंगे। जैसे, ईमानदारी के कृत्य बेइमानी के कृत्यों की अपेक्षा अधिक समग्र शुभ परिणाम उत्पन्न करेंगे। दानशीलता के कृत्य हमेशा शुभ परिणाम उत्पन्न करेंगे। दूसरों को (निर्दोष लोगों को) हानि पहुँचाने की बजाय, हानि न पहुँचाना अधिक शुभ परिणाम उत्पन्न करेगा। इन उदाहरणों से यह समझा जा सकता है कि किसी कृत्य के समस्त परिणाम इसे निर्धारित करते हैं कि कृत्य शुभ है या अशुभ।

हमारे कृत्य या नैतिक कृत्य करने के हमारे निर्णय हमेशा परिणामवादी दृष्टि से प्रभावित होते हैं। निर्दोष को नहीं सताना चाहिए क्योंकि यह कृत्य उस व्यक्ति को सताने से पहले की अवस्था से वंचित कर देगा। जरूरतमंदों की सहायता करनी चाहिए क्योंकि यह उनके जीवन में कल्याण और सुख लायेगा। यह तर्क किया जा सकता है कि यदि हम परिणामवादी दृष्टि से किसी कृत्य का विश्लेषण कर रहे होते हैं, तब हम पाते हैं कि अशुभ या अनुचित कृत्यों का परिणाम अनिवार्यतः अशुभ होता है। लेकिन, हमें किसी कृत्य के नैतिक मूल्यांकन के लिए स्वयं कृत्य पर विचार करने की कोई आवश्यकता नहीं होती है। हम किसी कृत्य के शुभ या अशुभ का निर्धारण उसके द्वारा उत्पन्न परिणामों से करते हैं।

चलिए सहायता–प्राप्त आत्महत्या (assisted suicide) के सन्दर्भ में विचार करें और देखें कि परिणामवादी किस प्रकार इसके पक्ष या विपक्ष में तर्क प्रस्तुत करते हैं। मान लेते हैं कि किसी भी व्यक्ति के अनावश्यक कष्टों को कम से कम किया जाना चाहिए। इस आधार पर, परिणामवाद के ढांचे से, सहायता–प्राप्त आत्महत्या का मुद्दा अधिक दृढ़ जान पड़ता है। अनेक व्यक्तियों का मानना है कि सहायता–प्राप्त आत्महत्या अपने आप में (आंतरिक या तात्विक रूप से) अनुचित है; यह उस स्थिति में भी अनुचित है जबकि व्यक्ति का कष्ट इससे कम होता हो या व्यक्ति स्वयं मृत्यु चाहता हो। यहां तक कि परिणामवादी भी इस बात से सहमत हो सकते हैं कि सहायता–प्राप्त आत्महत्या अनुचित है किन्तु उनका ऐसा मानने का आधार दूसरा होगा। उदाहरण के लिए, उनके विरोध का कारण इसके दुरूपयोग का होना हो सकता है या उनके विरोध का कारण यह भी हो सकता है क्योंकि इसकी वैधता के फलस्वरूप बीमार या अपंग भी अपने आप को दूसरे के ऊपर बोझ समझते हुए इसका वरण करने के लिए प्रोत्साहित हो सकते हैं। ऐसा मानने का तार्किक आधार यह होगा कि सहायता–प्राप्त आत्महत्या की स्वीकृति सर्वाधिक शुभ परिणाम उत्पन्न नहीं करती है।

अधिकांश परिणामवादी तर्क करते हैं कि हमें शुभ परिणामों को बढ़ाना चाहिए। इसके पीछे विचार यह है कि अधिक शुभ उत्पन्न करना कम शुभ उत्पन्न करने से बेहतर है। 'शुभ' का सम्बन्ध केवल कर्म से ही नहीं है बल्कि नियम, नीति, प्रेरणा और मनोवृत्तियों (संस्कारों) से भी है। प्रायः, शुभ प्रतिफल को प्रसन्नता या सुख या कल्याण के रूप में समझा जाता है। इस अर्थ में कुछ विचारकों के अनुसार ऐपिक्यूरियस सुखवादी नीतिशास्त्र को विकसित करने के कारण आरम्भिक परिणामवादी दार्शनिक है। ऐपिक्यूरियस संगत परिणामों की सीमा आत्मा (स्व) तक सीमित करते हैं। अतः उन्हें अहंवादी परिणामवाद का जनक कहा जाता है। अहंवाद के अनुसार व्यक्ति को शुभ को प्रोत्साहित करना चाहिए, लेकिन शुभ वह है जो स्वयं के लिए शुभ है, न कि सभी के लिए (सामान्य) शुभ। इस प्रकार का परिणामवाद 'अहंवाद' अथवा 'व्यक्ति–विशेष परिणामवाद' के नाम से जाना जाता है। व्यक्तिवादी या व्यक्ति–विशेष परिणामवाद का मानना है कि किसी व्यक्ति को इस बात पर चिंतन करना चाहिए कि किसी कृ

त्य के परिणाम स्वयं उस पर अथवा उसके किसी समूह जैसे परिवार या मित्रों पर कैसा प्रभाव डालेंगे। इस सम्बन्ध में, नैतिक उचितता या नैतिक शुभ किसी व्यक्ति–विशेष या सीमित समूह पर निर्भर करती है। इसके विपरीत, सार्वभौमिक परिणामवाद मानता है कि किसी व्यक्ति को यह चिंतन करना चाहिए कि किसी कृत्य के परिणामों से सभी सम्मिलित पक्षों पर क्या प्रभाव पड़ता है। नैतिक शुभ सभी प्रभावित व्यक्तियों पर पड़ने वाले प्रभावों पर आधारित है। सभी समानरूप से महत्वपूर्ण हैं, और प्रत्येक को सभी व्यक्तियों (जिन्हें समान माना जाता है) के शुभ या उपयोगिता/कल्याण को समान महत्व देना चाहिए। चूंकि उपयोगितावाद या सार्वभौमिक परिणामवाद मानता है कि गिने गये व्यक्तियों को समान माना जाना चाहिए, तब यह विचारना महत्वपूर्ण है कि किन्हें गिना जाना चाहिए या किन्हें नैतिक प्रस्थिति प्रदान की जानी चाहिए (कि किन पर नैतिक दायरा लागू होता है)। यह जानना रोचक है कि प्रमुख उपयोगितावादी जैसे जेरेमी बेन्थम और पीटर सिंगर का मानना है कि सभी संवेदनग्राही या संज्ञावान (संवेदन के बोध में समर्थ) प्राणियों को नैतिक प्रस्थिति प्रदान की जानी चाहिए, इस आशय में कि नैतिक कर्ता का दायित्व उन सभी प्राणियों के प्रति है जिन्हें सुख और दर्द का अनुभव होता है।

उपयोगितावाद का प्रथम व्यवस्थित रूप जर्मी बेन्थम द्वारा प्रस्तुत किया गया था। शास्त्रीय परिणामवाद (उपयोगितावाद) की मान्यता है कि उपयुक्त नैतिक व्यवहार कभी भी किसी को दुःख नहीं पहुंचाता बल्कि सुख या 'उपयोगिता' को बढ़ाता है। इसलिए, उपयोगितावाद का आधारभूत सिद्धान्त उपयोगिता का सिद्धान्त है अर्थात् नैतिक रूप से उचित कर्म वह है जो प्रभावित वर्ग के उपयोगिता या कल्याण के सम्बन्ध में सर्वोत्तम समग्र परिणाम उत्पन्न करे। जर्मी बेन्थम के अनुसार, उचित कृत्य या नीति वह है, 'जो अधिकतम व्यक्तियों के लिए अधिकतम सुख उत्पन्न करे', अर्थात् सभी प्रभावित वर्गों के अधिकतम सदस्यों के लिए सुखप्रद या कल्याणकारी हो। किन्तु प्रश्न उठता है कि हम यह कैसे जाने कि कौन सी वस्तु–स्थिति मूल्यवान है और कौन सी नहीं? उपयोगितावाद कहता है कि सभी संज्ञावान या संवेदनग्राही जीवों का सुख अथवा कल्याण ही मूल्यवान वस्तु है। जर्मी बेन्थम मानते हैं कि शुभ सुख की अनुभूति या संवेदन और दुःख का अभाव है। जबकि अन्य शास्त्रीय उपयोगितावादियों जैसे कि जे. एस. मिल के अनुसार, शुभ वह है जो मूल्यवान मानसिक अवस्थाओं को सम्पूर्णता में प्रोत्साहित करता है और मानसिक अवस्थाएं बिना सुखप्रद हुए भी मूल्यवान हो सकती हैं। वह उच्च एवं निम्न सुखों के वर्गीकरण को भी स्वीकार करते हैं। (जे. एस मिल के उपयोगितावाद की विशद चर्चा आगामी परिच्छेद में की जायेगी)।

बोध–प्रश्न I

ध्यातव्यः क) उत्तर हेतु नीचे दिए गए रिक्त स्थान का उपयोग कीजिए।

ख) अपने उत्तर का मिलान इकाई के अन्त में दिये गये उत्तर से कीजिए।

1. परिणामवाद क्या है?

.....

.....

.....

.....

2. उपयोगितावाद को परिभाषित कीजिए। उदाहरण प्रस्तुत कीजिए।

.....

.....

.....

.....

8.3 परिणामवाद के प्रारूप

परिणामवाद के कई प्रारूप हैं जो इस केन्द्रीय विचार से जुड़े हुए हैं, कि किसी कृत्य या कर्म के शुभ या अशुभ के रूप में मूल्यांकन के लिये सबसे महत्वपूर्ण उस कृत्य का परिणाम है। प्रचलित ढंग से, परिणामवाद के दो मुख्य रूप हैं – कर्म परिणामवाद और नियम परिणामवाद।

MAADHYAM IAS

कर्म परिणामवाद का मुख्य–विचारणीय विषय वह कृत्य है जो उस कृत्य की नैतिक स्थिति निर्धारित करने के लिए समग्र शुभ या अशुभ परिणाम उत्पन्न करता है।

निमय परिणामवाद का मुख्य विचारणीय विषय वे नियम हैं जिनके अनुप्रयोग से कोई कृत्य समग्र शुभतर परिणाम उत्पन्न करेगा।

कर्म परिणामवाद मानता है कि किसी भी कर्म के उचित या अनुचित होने का निर्धारण उस कर्म की उपयोगिता के मूल्यांकन से किया जाना चाहिए। इसका अर्थ है कि नैतिक रूप से उचित कर्म वह है जो प्रभावित पक्ष के अधिकांश सदस्यों के कल्याण या लाभ सम्मत पूर्णतः सर्वोत्तम परिणाम उत्पन्न करता है। जब कभी व्यक्ति के समक्ष कर्मों में चुनाव का अवसर आता है तो उसे कर्म के उसी विकल्प को चुनना चाहिए जो प्रभावित पक्ष के सभी अथवा अधिकतम सदस्यों के लिए सम्भावित सर्वोत्तम परिणाम ले कर आए। अतः कर्म उपयोगितावाद उपयोगिता सिद्धान्त के आधार पर वैकल्पिक कर्म के मूल्यांकन और चुनाव की अग्रलिखित प्रक्रिया का निर्धारण करता हैः विभिन्न वैकल्पिक कर्मों जैसे कि ग1, ग2, ग3 आदि की पहचान करते हैं। फिर उन वैकल्पिक कर्मों के सम्भांवित परिणामों जैसे कि ग1 के परिणाम, ग2 के परिणाम

आदि की पहचान करते हैं। कर्म का चुनाव और मूल्यांकन मूलतः उपयोगिता सिद्धान्त के आधार पर किया जाता है। कर्म के उचित और अनुचित का निर्णय करने के क्रम में हमें अनेक बातों जैसे कि सभी उपलब्ध कर्मों और उनके परिणामों का ज्ञान होना चाहिए। फिर प्रत्येक उपलब्ध कर्म का मूल्य निर्धारण किया जाना चाहिए। व्यक्ति को कौन से कर्म से सर्वोत्तम सम्भावित परिणाम मिलेंगे का निर्णय करने हेतु विभिन्न उपलब्ध कर्मों के मध्य तुलना करनी चाहिए। अब चूँकि किसी भी व्यक्ति के सभी सम्भावित विकल्पों का ज्ञान नहीं हो सकता। इसलिए यहां व्यक्ति अपने पुराने अनुभवों के आधार पर सर्वोत्तम विकल्प का चुनाव कर सकता है।

यद्यपि कर्म परिणामवाद प्रथम दृष्टि में बड़ा आकर्षक लगता है किन्तु इसके कुछ समस्या जनक निहितार्थ भी हैं। यदि आप कहते हैं, ''साध्य साधन को न्यायोचित नहीं सिद्ध कर सकता'' तो आप गैर–परिणामवाद को स्वीकार कर रहे होते हैं। ऐसे अनेक कर्म हैं जिन्हें अनेक लोग अनुचित मानते हैं किन्तु परिणामवाद उन्हें बिल्कुल उचित मानता है अथवा बाध्यकारी तक मानता है। मान लीजिए एक चिकित्सक पाँच ऐसे लोगों की चिकिसा कर राह है, जिन्हें जीवन हेतु अंगदान की आवश्यकता है। उसी समय कोई उत्तम स्वास्थ्य और शरीर वाला व्यक्ति सामान्य परीक्षण के लिए चिकित्सक के पास आता है। अचानक से, चिकित्सक सोचता है कि यदि मैं इस स्वस्थ व्यक्ति के अंगों को निकालकर उनका प्रत्यारोपण उन पाँच मरीजों में कर दूँ, तो वे पाँच व्यक्तियों को जीवनदान मिल जायेगा। इस प्रक्रिया में उस स्वस्थ व्यक्ति की मृत्यु हो जायेगा। क्रिया परिणामवाद चिकित्सक के निर्णय के औचित्य को सिद्ध करने में नहीं हिचकिचायेगा। लेकिन सामान्य तौर पर, व्यक्ति इसे औचित्यपूर्ण कृत्य नहीं मानेंगे

MADHYAM IAS
'way to achieve your dream'

कर्म परिणामवाद की समस्या को नियम परिणामवाद की सहायता से हल किया जा सकता है। नियम परिणामवाद व्यक्तिगत कृत्यों पर ध्यान केन्द्रित नहीं करता है, अपितु उन नियमों या सिद्धान्तों की खोज या रचना करने का प्रयास करता है, जिनसे किसी समाज में अधिकतम लोगों को समग्र शुभ परिणाम प्राप्त हों।

नियम परिणामवाद मानता है कि हमें कोई कृत्य शुभ है या अशुभ इसको उपयोगता के सिद्धान्त से प्राप्त नियमों के आधार पर तय करना चाहिए। इसलिए, यदि हम एक नियम बनाते हैं कि "असत्य सम्भाषण अशुभ या अनुचित है और हमें असत्य सम्भाषण नहीं करना चाहिए" तब नैतिक कर्ता का अस्त्य सम्भाषण इसलिए नहीं करना चाहिए क्योंकि यह उसका व्यक्तिगत वरीयता (चयन, तरजीह) है बल्कि यह उस नियम पर आधारित है जिसका पालन समाज के समग्र शुभ के लिए करना चाहिए। यह व्यक्तिगत कृत्य के बारे में न होकर नियम या मान्यता के बारे में है जिसका समग्र कल्याण के लिए पालन किया जाना चाहिए। नियम परिणामवाद इसके पालन हेतु दो तरीकों की चर्चा करते हैं,

1) नैतिक कर्ता को भिन्न–भिन्न नियमों का मूल्यांकन किसी विशिष्ट परिस्थिति में करना चाहिए और उस नियम या मान्यता को लागू करना चाहिए जिससे समस्त सर्वोत्तम परिणाम प्राप्त हों।

2) किसी विशिष्ट परिस्थिति हेतु प्रथम चरणध्तरीके से प्राप्त नियम का पालन व्यक्ति को बिना यह सोचे करना चाहिए कि कोई वैकल्पिक कृत्य इससे बेहतर परिणाम दे सकता है। उदाहरणार्थ, यदि असत्य सम्भाषण अनुचित है, यह नियम है तो व्यक्ति को असत्य सम्भाषण नहीं करना चाहिए, चाहे असत्य सम्भाषण बेहतर परिणाम दे।

इस प्रकार, नियम परिणामवाद के अनुसार, हमें शुभ परिणाम देने वाले व्यक्तिगत कृत्यों को करने के बजाय, उन नियमों का अनुसरण करना चाहिए, जिनके अनुसरण से शुभ परिणाम उत्पन्न हों।

बोध–प्रश्न II

ध्यातव्यः क) अपने उत्तर हेतु दिए गए रिक्त स्थान का उपयोग कीजिए।

ख) अपने उत्तर का मिलान इकाई के अन्त में दिये गये उत्तर से कीजिए।

1. परिणामवाद के प्रारूप कौन कौन हैं?

.....
.....
.....
.....

MAADHYAM IAS
'way to achieve your dream'

2. कर्म परिणामवाद को विस्तार से परिभाषित करें।

.....
.....
.....
.....

3. नियम परिणामवाद को परिभाषित करें। नियम परिणामवाद में प्रयुक्त दो चरणों को स्पष्ट करें।

.....
.....

.....

.....

8.4 जे. एस. मिल का उपयोगितावाद

जॉन स्टुअर्ट मिल बेन्थम के अनुसरणकर्ता थे। बेन्थम के कुछ विचारों विशेषकर 'सुख की प्रकृति के सम्बन्ध में' से असहमत होते हुए भी वे बेन्थम के बड़े प्रशंसक थे। बेन्थम का मानना था कि सुखों के मध्य केवल मात्रात्मक अन्तर होता है, न कि गुणात्मक। जबकि मिल सुखों में गुणात्मक अन्तर को भी स्वीकारते हैं। मिल के नीति–दर्शन का विशद वर्णन उनकी पुस्तक *यूटिलिटेरियनिज्म* (1861) में मिलता है। इस पुस्तक का उद्देश्य नैतिकता के आधार के रूप में उपयोगिता सिद्धान्त के औचित्य को सिद्ध करना है। इस सिद्धान्त के अनुसार, कर्म उसी अनुपात में शुभ या उचित हैं जिस अनुपात में वे समग्र मानवीय सुख को बढ़ाते हैं। इसलिए, मिल कर्मों के परिणामों पर बल देते हैं, न कि अधिकारों या नैतिक सम्वेदनाओं पर।

मिल यह स्थापित करने का प्रयास करते हैं कि नैतिकता का लक्ष्य अस्तित्व की विशिष्ट अवस्था को उत्पन्न करना है। मिल यह तर्क करने का प्रयास करते हैं कि शुभ और अशुभ के रूप में कर्मों का विशेषीकरण पर्याप्त नहीं है, अपितु हमें उस (या उन) तत्वों को खोजने की आवश्यकता है, जो कर्मों को नैतिक प्रकृति (शुभ और अशुभय उचित और अनुचित) प्रदान करते हैं। लोग मिल से इस बात में सहमत नहीं हो सकते हैं कि क्या है या क्या होना चाहिए, जिसके आधार पर नैतिक कर्मों का मूल्यांकन किया जाना चाहिए। मिल कहते हैं कि कर्मों का सारतत्व उपयोगिता है, जोकि मानवीय अस्तित्व के लिए आवश्यक है और किसी कर्म को नैतिक मूल्यांकन के योग्य बनाता है।

इस भ्रान्ति के विरुद्ध कि उपयोगिता सुख की विरोधी है, मिल उपयोगिता को सुख के रूप में और दर्द या दुःख के अभाव के रूप में परिभाषित करने का प्रयास करते हैं। इस तरीके से उपयोगिता के सिद्धान्तो को अधिकतम सुख (प्रसन्नता या आनन्द) का सिद्धान्त भी कहा जा सकता है। इस सिद्धान्त का मानना है कि "कोई कृत्य या कर्म उस अनुपात में उचित हैं जिसमें वे प्रसन्नता को बढ़ाते हैं, और उस अनुपात में अनुचित जिसमें वे प्रसन्नता के व्युत्क्रम को उत्पन्न करते हैं। प्रसन्नता का निहितार्थ है सुख, और दुःख का अभाव, और अप्रसन्नता का निहितार्थ है दर्द, और सुख का अभाव" (मिल 1996: 210)। इस दृष्टिकोण के अनुसार, दर्द या दुःख का परिहार और सुख की खोज स्वतः साध्य है और स्वयं में वांछित है।

मिल के विरुद्ध सामान्य आपत्ति यह है कि केवल सुख को जीवन का लक्ष्य स्वीकारने का तात्पर्य है जीवन के अर्थ को सुख में अपचयित कर देना। मिल इसका उत्तर देने के लिए मानवीय सुख और पशुओं के सुख में गुणात्मक भेद करते हैं। वे इस बिन्दु पर बल देते हैं कि

मानव अपने उच्चतर क्षमताओं/संकायों के अभ्यास से सुख प्राप्त करता है और उन संकायों के पल्लवन के बिना वे हमेशा असंतुष्ट रहेंगे। अतः, मानव के लिए सुख उसकी उच्चतर संकायों के कार्यों को द्योतित करता है। इस प्रकार, मिल सुख की गुणात्मकता को केन्द्र में रखकर अपने उपयोगितावाद का सूत्रीकरण करते हैं।

वह कहते हैं,

''सुखों के मध्य गुणात्मकता के अन्तर से मेरा क्या तात्पर्य है, अथवा वह क्या है जो एक सुख को दूसरे सुख की तुलना में अधिक मूल्यवान बनाता है, मात्रा में महत के होने के सिवाय, इसका एक ही सम्भावित उत्तर है, केवल सुख के रूप में। दो सुखों में से, यदि कोई एक सुख है जिसको दोनों सुखों का पूर्व में अनुभव करने वाले सभी या उनमें से अधिकतर लोगों के द्वारा, चुनाव हेतु बिना किसी नैतिक बाध्यता के, वरीयता दी जाती है, वही वांछनीय सुख है। यदि उन दोनों में से एक को दोनों से सक्षम तरीके से प्रत्यक्षतः परिचित लोगों द्वारा यह जानते हुए भी कि यह महत असंतोष उत्पन्न करेगा, वरीयता दी जाती है, और वे इसका ख्वरीयता का, परित्याग किसी भी उस सुख की मात्रा के लिए जिसका उपभोग करने में वे समर्थ हैं, नहीं करेंगे, हम वरीय आनन्द को, इसकी तुलना में मात्रा की लघुता स्वीकारते हुए, गुणात्मक उच्चता के कारण के आधार पर औचित्यपूर्ण सिद्ध कर सकते हैं,'' (मिल 2015: 122)।

इसके अतिरिक्त मिल विश्वास करते हैं कि किसी नैतिक कृत्य के मूल्यांकन का आदर्श पैमाना इसमें सम्मिलित या इससे प्रभावित सभी व्यक्तियों के सुख का विचारण है, और न कि अकेले कर्ता के स्वयं के सुख का विचारण। इसलिए, किसी को भी अपने सुख को अन्यों के सुख से उच्चतर नहीं मानना चाहिए। मिल लोगों के सुख के मूल्य को मान्यता देने के सन्दर्भ में सभी मनुष्यों के साथ समान व्यवहारय फिर चाहे धनी हो या निर्धन, काला हो या गोरा, का समर्थन करते हैं।

मिल नैतिक कृत्यों को करने हेतु प्रेरणाओं/अभिप्रेरणाओं पर भी बातचीत करते हैं। वह दो प्रकार की प्रेरणाओं का उल्लेख करते हैं– बाह्य एवं आन्तरिक। बाह्य प्रेरना सामान्य प्रकृति की है, जिसे किसी भी अन्य नैतिक ढांचे से सम्बन्धित किया जा सकता है। उदाहरणार्थ, घनिष्ठों का दबाव, दैवीय आदेश, या सामाजिक अननुमोदन इत्यादि। दूसरी ओर, जब कोई व्यक्ति किसी परिस्थिति–विशेष का सामना करता है, तो आन्तरिक प्रेरणा उसकी स्वयं की अन्तश्चेतना और आन्तरिक भावना से उद्भूसत होती है। मिल के लिए, आन्तरिक प्रेरणा बाह्य प्रेरणा से अधिक प्रभावी है, क्योंकि इसके बीज प्राणीमात्र में उपस्थित हैं। आन्तरिक प्रेरणा से प्राकृतिक नैतिक दृष्टि विकसित होती है और लोग प्राकृतिक रूप से नैतिक बाध्यता का अहसास करते

हैं। मिल ने यह दिखाने का प्रयास किया कि उपयोगिता सुख के साहचर्य के साथ मनुष्य के अन्दर ही मजबूत नैतिक आधार बनाती है (मिल 2015: 140–147)।

अतः, मिल तर्क करते हैं कि उपयोगितावाद नैतिक मूल मानवीय प्रकृति, अधिक विशिष्ट तौर पर उनकी सामाजिक प्रकृति में, में ही निहित है। मिल विचारते हैं कि समाज को लोगों में इस नैतिक अभिमुखता को शिक्षा जैसे विभिन्न माध्यमों से मनारोपित और प्रोत्साहित करना चाहिए।

इस तरीके से मिल ने अपनी पुस्तक *युटिलिटेरियनिज्म* में उपयोगिता के नैतिक सिद्धान्त पर तर्क किया है। इस सिद्धान्त की आलोचना के प्रतिउत्तर में मिल ने न केवल जेरेमी बेन्थम के मूलभूत सिद्धान्तों के पक्ष में तर्क किया, अपितु बेन्थम के सिद्धान्तों की संरचना, अर्थ, और अनुप्रयोग में महत्वपूर्ण सुधार भी किये। यद्यपि उच्चतम शुभ की वास्तविकता और प्रकृति के सम्बन्ध में असमाप्य विवादों के कारण नीति–दर्शन की प्रगति सीमित हुई है, फिर भी मिल को प्रातःवेला में ही प्रतीत हो गया था कि प्रत्येक व्यक्ति इस बात पर सहमत हो सकता है कि मानवीय कृत्यों के परिणाम उनके नैतिक मूल्यों में महत्वपूर्ण योगदान देते हैं।

बोध–प्रश्न III

ध्यातव्यः क) उत्तर हेतु दिए गए रिक्त स्थान का उपयोग कीजिए।

ख) अपने उत्तर का मिलान इकाई के अन्त में दिये गये उत्तर से कीजिए।

MAADHYAM IAS
'way to achieve your dream'

1. मिल 'प्रथम सिद्धान्त' की अवधारणा से क्या समझते हैं?

.....

.....

.....

.....

8.5 सारांश

यह इकाई नैतिक दर्शन के एक सिद्धान्त उपयोगितावाद का विवरण प्रस्तुत करती है। उपयोगितावाद वह नियामक नैतिक सिद्धान्त है जो कहता है कि किसी कृत्य की नैतिकता का निर्धारण उसके द्वारा उत्पन्न परिणामों के आधार पर होता है। इसके दो प्रारूप हैंरू क्रिया परिणामवाद तथा नियम परिणावाद। क्रिया परिणामवाद उन परिणामवादी सिद्धान्तों को संदर्भित करता है, जिनके अनुसार नैतिक कृत्य वह है जो कि (पूर्ण अथवा सामान्य) उपयोगिता को अधिकतम के स्तर पर ले जाता है। वहीं, नियम परिणामवाद उन परिणामवादी सिद्धांतों को

संदर्भित करता है, जिनके अनुसार नैतिक कृत्य वह है जो उस नियम (नियमावली) के अनुसार होता है जो यदि सामान्य अर्थ में समझे तो, उपयोगिता को अधिकतम (पूर्ण अथवा सामान्य) स्तर पर ले जाए। यह इकाई स्टुअर्ट मिल द्वारा प्रस्तुत उपयोगितावाद का विवरण देती है। मिल उपयोगितावाद का वर्णन अधिकतम सुख सिद्धान्त के रूप में करते हैं। इसके अनुसार, ''कर्म उसी अनुपात में उचित है जिस अनुपात में वह सुख को बढ़ाता है और उस अनुपात में अनुचित है जिसमें सुख के व्युत्क्रम को बढ़ाता है। सुख आनन्द और दुःख या दर्द के अभाव को लक्षित करता है, और दुःख या अप्रसन्नता दर्द और सुख या आनन्द की कमी को लक्षित करती है"। मिल चूँकि गुणात्मक सुख की बात करते है इसलिए उनका सिद्धान्त बेन्थम के मात्रात्मक उपयोगितावाद के विपरीत गुणात्मक उपयोगितावाद के नाम से जाना जाता है।

8.6 कुंजी शब्द

परिणाम : उत्पन्न परिणाम, यहाँ इससे तात्पर्य किसी कर्म से उत्पन्न अन्तिम परिणाम है।

उपयोगिता सिद्धान्त : इसके अनुसार, नैतिक रूप से उचित कार्य वही है जो सभी प्रभावित व्यक्तियों के लिए उपयोगिता अथवा कल्याण से सम्बद्ध सर्वोत्तम समग्र परिणाम उत्पन्न करे।

8.7 अन्य सहायक अध्ययन–सामग्री एवं सन्दर्भ

ड्राइवर, जूलिया. *कॉन्सिक्वेन्शियलिज्म.* लंदनः राउटलेज, 2011.

जैकब, जॉनाथन. *डाइमेन्शन्स ऑफ मॅरल फिलॉसोफीः एन इन्ट्रोक्शन टु मेटाएथिक्स एण्ड मॉरल साइकोलॉजी.* जर्मनीः ब्लैकवेल पब्लिशिंग, 2002.

मिल, जॉन स्टुअर्ट. "युटिलिटेरियनिज्म", इन मार्क फिलिप (एडि.), *ऑन लिबर्टी, युटिलिटेरियनिज्म एण्ड अदर एस्सेज.* ऑक्सफोर्डः ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस, 2015.

मिल, जॉन स्टुअर्ट. *युटिलिटेरियनिज्म,* इन जॉन एम. रॉब्सन (एडि.), *कलेक्टिड वर्क्स ऑफ जॉन स्टुअर्ट मिल,* वॉल. 10. टोरन्टोः युनिवर्सिटी प्रेस/ लंदन : राउटलेज एण्ड केगन पॉल, 1969[1861].

मोयर, डीन (एडि.). *द राउटलेज कम्पेनियन टु नाइन्टीन्थ सेन्चुरी फिलॉसोफी.* कनाडाः राउटलेज, 2010.

लेन्डुआ, रस शेफर (एडि.). *एथिकल थ्योरीः एन एन्थोलॉजी.* ऑक्सफोर्डः ब्लैकवेल पब्लिसिंग, 2007.

MAADHYAM IAS

वेस्ट, हेनरी आर. (एडि.) *द ब्लेकवेल गाइड टु मिल'स यूटिलिटेरियनिज्म.* ऑस्ट्रेलियाः ब्लैकवेल पब्लिशिंग, 2006.

8.8 बोध–प्रश्नों के उत्तर

बोध–प्रश्न I

1. परिणामक नियामक नीतिशास्त्र का वह प्रकार है जिसके अनुसार किसी कर्म के लिए नैतिक रूप में महत्वपूर्ण उसके द्वारा उत्पन्न परिणाम हैं। कोई कर्म उचित है या नहीं या करने योग्य है या नहीं इसका निर्धारण उत्पन्न परिणाम पर निर्भर करता है। अधिकांश परिणामवादी मानते हैं कि हमें शुभ परिणामों को बढ़ाने वाले कर्म करने चाहिए। परिणामवाद का सरलतम रूप शास्त्रीय (सुखवादी) उपयोगितावाद है। शास्त्रीय उपयोगितावाद के अनुसार, किसी कर्म के उचित अथवा अनुचित होने का निर्धारण इस तथ्य से होता है कि उस कर्म के फलस्वरूप विश्व में दुःख की अपेक्षा अधिकतम सुख का प्रसार होता है या नहीं।

2. उपयोगितावाद परिणामवाद के एक रूप है जो उपयोगिता के सिद्धान्त को मानता है, अर्थात् नैतिक शुभ कृत्य वह है जो सभी प्रभावित पक्षों की उपयोगिता या कल्याण से सम्बद्ध सर्वोत्तम समग्र परिणामों को उत्पन्न करता है।

उपयोगितावाद का प्रसिद्ध उदाहरण, ट्रॉली का है। कल्पना कीजिए कि कोई ट्रॉली किसी पटरी पर बढ़ रही है, जिस पर पाँच मजदूर हैं। आप मीलों दूर नियंत्रण कक्ष में हैं, और आप एक स्विच से ट्रॉली को दूसरी पटरी पर ला सकते हैं, जिस पर एक मजदूर है। क्या आप स्विच दबायेंगे? एक व्यक्ति की मृत्यु पाँच की मृत्यु की अपेक्षा ठीक है, तब यदि आपको चुनना पड़े तो आपको स्विच दबाकर मृत्युओं को कम करना चाहिए। यह उपयोगितावादी तर्कणा का एक उदाहरण है।

बोध–प्रश्न II

1. दो प्रकार के परिणामवाद हैं; क्रिया परिणामवाद और नियम परिणामवाद।

2. कर्म परिणामवाद मानता है कि किसी भी कर्म के उचित या अनुचित होने का निर्धारण उस कर्म की उपयोगिता के मूल्यांकन से किया जाना चाहिए। इसका अर्थ है कि नैतिक रूप से उचित कर्म वह है जो प्रभावित पक्ष के अधिकांश सदस्यों के कल्याण या लाभ सम्मत पूर्णतः सर्वोत्तम परिणाम उत्पन्न करता है। जब कभी व्यक्ति के समक्ष कर्मों में चुनाव का अवसर आता है तो उसे कर्म के उसी विकल्प को चुनना चाहिए जो प्रभावित पक्ष के सभी अथवा अधिकतम सदस्यों के लिए सम्भावित सर्वोत्तम परिणाम ले कर आए। अतः, कर्म उपयोगितावाद उपयोगिता सिद्धान्त के आधार पर वैकल्पिक कर्म के मूल्यांकन और चुनाव हेतु अग्रलिखित प्रक्रिया का

निर्धारण करता हैः विभिन्न वैकल्पिक कर्मों जैसे कि ग1, ग2, ग3 आदि की पहचान करते हैं। फिर उन वैकल्पिक कर्मों के सम्भांवित परिणामों जैसे कि ग1 के परिणाम, ग2 के परिणाम आदि की पहचान करते हैं। कर्म का चुनाव और मूल्यांकन मूलतः उपयोगिता सिद्धान्त के आधार पर किया जाता है। कर्म के उचित और अनुचित का निर्णय करने के क्रम में हमें अनेक बातों जैसे कि सभी उपलब्ध कर्मों और उनके परिणामों का ज्ञान होना चाहिए। फिर प्रत्येक उपलब्ध कर्म का मूल्य निर्धारण किया जाना चाहिए। व्यक्ति को कौन से कर्म से सर्वोत्तम सम्भावित परिणाम मिलेंगे का निर्णय करने हेतु विभिन्न उपलब्ध कर्मों के मध्य तुलना करनी चाहिए। यह प्रतीत होता है कि किसी भी व्यक्ति के सभी सम्भावित विकल्पों का ज्ञान नहीं हो सकता। इसलिए यहां व्यक्ति अपने पुराने अनुभवों के आधार पर सर्वोत्तम विकल्प का चुनाव कर सकता है।

3. नियम परिणामवाद मानता है कि हमें कोई कृत्य शुभ है या अशुभ इसको उपयोगिता के सिद्धान्त से औचित्य प्राप्त नियमों के आधार पर तय करना चाहिए। कर्ता को उन नियमों के प्रयोग से, जिनका स्वीकरण सर्वोत्तम परिणाम उत्पन्न करता है, निर्णय करना चाहिए कि किसी परिस्थिति में क्या किया जाना चाहिए। प्रश्न यह नहीं है कि कौन–सा कृत्य अधिकतम उपयोगिता उत्पन्न करेगा, बल्कि यह है कि कौन–सा नियम या मान्यता अधिकतम उपयोगिता या कल्याण उत्पन्न करेगा। नियम परिणामवाद में अन्तर्निहित द्वि–चरण प्रक्रिया निम्नवत हैः

1) नैतिक कर्ता को भिन्न–भिन्न नियमों का मूल्यांकन किसी उपयोगिता के सिद्धान्त के आधार पर करना चाहिएय किसी व्यक्ति को नियमों का मूल्यांकन इस आधार पर करना चाहिए कि किस नियम से सभी प्रभावित पक्षों हेतु समस्त सर्वोत्तम परिणाम प्राप्त होता है।

2) किसी परिस्थिति–विशेष में, किसी कृत्य का शुभ और अशुभ के रूप में मूल्यांकन प्रथम चरण में औचित्यपूर्ण सिद्ध नैतिक नियमों को दृष्टिगत रखते हुए करना चाहिए। किसी विशिष्ट परिस्थिति हेतु प्रथम चरण/तरीके से प्राप्त नियम का पालन व्यक्ति को बिना यह सोचे करना चाहिए कि कोई वैकल्पिक कृत्य इससे बेहतर परिणाम दे सकता है।

बोध–प्रश्न III

1. मिल ने अपनी पुस्तक *युटिलिटेरियनिज्म* में आद्योपांत "प्रथम सिद्धान्त" की अवधारणा और नैतिकता के मूल की चर्चा की है। इस अवधारणा की सहायता से, मिल कहते हैं कि किसी कृत्य को शुभ या अशुभ के रूप में विशेषित कर देना पर्याप्त नहीं है, यद्यपि, कुछ और होना चाहिए जो इन कृत्यों को नैतिक चरित्र प्रदान करते हैं, और जो इस तथ्य का भी कारण है कि क्यों "शुभ" और "अशुभ" जैसे पद प्रथम स्थान पर प्रतिध्वनित होते हैं। लोग इस बात पर सहमत नहीं हो सकते हैं कि नैतिकता का यह सारभूत सिद्धान्त क्या है, और यह क्यों इतना विशेष है। अतः, उन्होंने, अपनी पुस्तक में इस मूल को पहचानने का प्रयास किया–

जिसे उपयोगिता का सिद्धान्त कहते हैं– और फिर यह दिखाया कि क्यों यह नैतिक मूल असाधारण और मानव के रूप में हमारे अस्तित्व के केन्द्र में है।

MAADHYAM IAS
'way to achieve your dream'

इकाई 9 नैतिक सिद्धान्तों का आलोचनात्मक मूल्यांकन

रूपरेखा

9.0 उद्देश्य

9.1 परिचय

9.2 प्रमुख नैतिक सिद्धान्तः एक अवलोकन

9.3 उपयोगितावाद का आलोचनात्मक मूल्यांकन

9.4 कर्तव्यपरक नीतिशास्त्र का आलोचनात्मक मूल्यांकन

9.5 सद्‌गुण नीतिशास्त्र का आलोचनात्मक मूल्यांकन

9.6 सारांश

9.7 कुंजी शब्द

9.8 अन्य सहायक अध्ययन–सामग्री एवं सन्दर्भ

9.9 बोध–प्रश्नों के उत्तर

MAADHYAM IAS
'way to achieve your dream'

9.0 उद्देश्य

इस इकाई के निम्नलिखित उद्देश्य हैं:

- प्रमुख नैतिक (नियामक) सिद्धान्तों, जैसे उपयोगितावाद, कर्तव्यपरक नीतिशास्त्र तथा सद्‌गुण नीतिशास्त्र की आधारभूत विषय–वस्तु तथा पूर्वमान्यताओं को समझना,
- नीतिशास्त्र के इन सिद्धान्तों का विश्लेषण करना,
- नीतिशास्त्र के इन सिद्धान्तों का आलोचनात्मक परीक्षण करना।

9.1 परिचय

* डॉ. मो. इनामुर रहमान, सहायक प्राध्यापक, दर्शन विभाग, प्रेसीडेन्सी विश्वविद्यालय, कोलकाता, अनुवादक– सुश्री रिंकी जादवानी, व्याख्याता (दर्शनशास्त्र), मानविकी विभाग, दिल्ली तकनीकि विश्वविद्यालय, दिल्ली

यह इकाई मुख्य रूप से नियामक नीतिशास्त्र के अभी तक के वर्णित सिद्धान्तों, सद्‌गुण नीतिशास्त्र, उपयोगितावाद, तथा काण्ट के कर्तव्यपरक नीतिशास्त्र के आलोचनात्मक विश्लेषण पर केन्द्रित होगी। ये सिद्धान्त नीतिशास्त्र के प्रमुख सिद्धान्त हैं जिन्होंने कई युगों तक मानव मस्तिष्क पर उनके कार्यों के लिए कारण प्रदान करके अपना प्रभुत्व स्थापित किया है। हमारे कृत्यों के लिए इन सिद्धान्तों द्वारा दिये गये कार्य–निर्देशक नियम, हमें कुछ प्रश्नों, जैसे क्या सही है और क्या गलत है? किसी विशेष परिस्थिति में यह कैसे निर्धारित किया जाये कि शुभ क्या है और क्या अशुभ?, और, इसी से सम्बन्धित, व्यापक प्रश्न कि समाज में शान्तिपूर्वक जीवन कैसे जिया जाये?, आदि को को समझने में सहायता करते हैं। शान्तिपूर्वक जीवन जीना सीधे इस बात से सम्बन्धित है कि एक व्यक्ति की तरह तथा एक समाज के रूप में अच्छा कैसे बना जाए?

इन सिद्धान्तों पर आलोचनात्मक–प्रतिबिम्बन से हमें एक बेहतर जीवन जीने के लिए कार्य–निर्देशित नियमों को पूनर्निर्मित तथा पुनर्व्यवस्थित करने में सहायता मिलेगी।

9.2 प्रमुख नैतिक सिद्धान्तः एक अवलोकन

नीतिशास्त्र के सभी सिद्धान्त इस प्रश्न का उत्तर देने की कोशिश करते हैं: एक व्यक्ति को एक ऐसी स्थिति में कैसे काम करना चहिए जिस स्थिति में अन्य भी शामिल हों। एक स्वतन्त्र कर्ता के कार्य हमेशा इस नैतिक मूल्यांकन के अधीन रहते हैं कि वह कार्य सही है या गलत/शुभ है या अशुभ। नैतिक सिद्धान्त कार्य– निर्देशक नियम प्रदान करके हमारे कार्यों का निर्धारण करने में सहायता करते हैं। उदाहरणतया हमें उसी प्रकार कृत्य करने चाहिए जिससे समग्र उपयोगिता अधिकतम हो (सामान्य सन्दर्भ में उपयोगितावादी सिद्धान्त)। एक शान्तिपूर्ण समाज की स्थापना के लिए हमारे कृत्यों का नैतिक मूल्यांकन आवश्यक है। उस समाज में, जिसमें अनैतिक या बुरे व्यक्तियों की भरमार होगी, लोगों का जीवन शान्तिपूर्ण नहीं होगा क्योंकि इससे जालसाजी, भ्रष्टाचार, चोरी हत्या आदि अनियन्त्रित हो जायेंगे। व्यक्तिगत तौर पर हमें उन सिद्धान्तों को समझने की जरूरत है जो हमें एक अच्छा व्यक्ति बनाने में सहायता करते हैं। अतरू हमें नैतिक सिद्धान्तों को परिभाषित करने तथा समझने की जरूरत है जिससे व्यक्ति के आचरण का मूल्यांकन किया जा सके।

नीतिशास्त्र के एक सिद्धान्त के रूप में उपयोगितावाद यह दृष्टिकोण अपनाता है कि किसी भी कृत्य/नीति/कानून/नियम की उपायोगिता ही कोई कार्य शुभ है या अशुभ, को निर्धारित करने का आधार होना चाहिए। किसी कार्य या नीति से उपजी उपयोगिता की प्रकृति को ही उसके नैतिक मूल्यांकन का आधार मानना चाहिए। किसी कृत्य का नैतिक निर्णय स्वयं कृत्य पर आधारित नहीं होता, अपितु उस कृत्य द्वारा उत्पन्न शुभ या अशुभ परिणाम से होता है। इस सिद्धान्त के अनुसार, हमें किसी कृत्य के समग्र निष्पादनों या कृत्य के परिणाम या कृत्य

के बारे में मूल्य–निर्णय देने हेतु इस कृत्य को जिन प्रतिफलों पारित करना पड़ता है उन समग्र प्रतिफलों, का मूल्यांकन करना चाहिए। यह दृष्टिकोण कृत्य का स्वयं में कोई मूल्य नही मानता है। सत्य बोलने के परिणामस्वरूप जो भी शुभ होता है उससे इतर भी उसका अंतर्भूत (स्वयं में) मूल्य हो सकता है। उपयोगितावादी ढांचे में शुभ तथा अशुभ को समझना इसे सुख तथा दुःख से जोड़ना है। किसी कार्य का शुभ या अशुभ होना इस बात पर निर्भर करता है कि उस कृत्य से कितना सुख या दुःख प्राप्त होता है। जेरेमी बेन्थम, जॉन स्टुअर्ट मिल तथा हेनरी सिजविक इस सिद्धान्त के प्रमुख प्रतिपादक हैं।

नीतिशास्त्र का कर्तव्यपरक सिद्धान्त यह प्रतिपादित करता है कि नैतिक मानदण्ड या नियम ही सबसे अधिक महत्वपूर्ण हैं। नैतिक कर्ता के कर्तव्यों को परिभाषित करने के लिए नैतिक मानदण्डों तथा नियमों की आवश्यकता होती है। इमानुएल काण्ट, जो इस सिद्धान्त के प्रमुख समर्थक हैं, कहते हैं कि किसी कृत्य या नीति का नैतिक मूल्यांकन, पूर्व परिभाषित नीति–नियमों के आधार पर किया जाना चाहिए ना कि उस कृत्य के परिणाम या प्रतिफलों के आधार पर। इसके अलावा यह सिद्धान्त यह भी मानता है कि अपने कर्तव्य का पालन करने के अलावा किसी बाहरी तत्वध्प्रेरणा के लिए कर्तव्य का निर्वाह करना बौद्धिक नहीं होता है। "कर्तव्य के लिए कर्तव्य का पालन" इस सिद्धान्त का एक मुख्य मत है। नैतिक नियम, "झूठ बोलना गलत है", किसी भी परिस्थिति में गलत होगा चाहे वह झूठ किसी की जान बचा सकता है। परिस्थितिजन्य या परिणाम स्वरूप मिलने वाले लाभ किसी कृत्य के नैतिक निर्णय में महत्वपूर्ण नही हैं। इस सिद्धान्त के अनुसार किसी कृत्य का नैतिक मूल्यांकन करने में उस कृत्य को करने हेतु व्यक्ति का अभिप्राय (इरादा) एक अनिवार्य कारक है।

MADHYAM IAS
'way to achieve your dream'

उपवर्णित दोनों सिद्धान्तों के विपरीत, जहां नैतिक निर्णय लेने के लिए कृत्य या नीति का आंकलन किया जाता है, सद्गुण नीतिशास्त्र यह मानता है कि मुख्य रूप से व्यक्ति के चरित्र और उसके बाद उसके कृत्य का मूल्यांकन करना आवश्यक है। एक अच्छा व्यक्ति बनने के लिए तथा अच्छे कृत्य करने के लिए न्यायप्रिय, ईमानदार, सत्यवादी, साहसी और दूसरों के प्रति दयालु होना, जैसे चारित्रिक गुणों को विकसित करना चाहिए। झूठ बोलना, धोखा देना, और विश्वासघात आदि गुणों को किसी के चरित्र में पल्लवित–पुष्पित होने से हतोत्साहित करना चाहिए। यह नैतिक दृष्टिकोण यह स्पष्ट करता है कि यदि समाज में अच्छे चरित्र के व्यक्ति हैं, वह समाज अंततः एक अच्छा समाज बनेगा। सद्गुण नीतिशास्त्री व्यक्ति के नैतिक चरित्र का मूल्यांकन करने के लिए उनके आन्तरिक गुणों पर अधिक ध्यान केन्द्रित करते हैं ना कि बाह्य गुणों पर।

सभी नियामक सिद्धान्तों का उद्देश्य व्यक्तियों के कर्मों तथा चरित्र को निर्देशित करके एक अच्छे समाज की स्थापना करना है। लेकिन इन सिद्धान्तों को आलोचना का सामना भी करना

पड़ा है। आगे आने वाले परिच्छेदों में हम उपरोक्त सभी नीतिशास्त्रीय सिद्धान्तों का आलोचनात्मक मूल्यांकन करेंगे।

बोध–प्रश्न I

ध्यातव्यः क) उत्तर हेतु दिये गये रिक्त स्थान का उपयोग कीजिए।

ख) अपने उत्तर का मिलान इकाई के अन्त में दिये गये उत्तर से कीजिए।

1. किसी कार्य के नैतिक मूल्यांकन के लिए उपयोगितावाद का क्या सिद्धान्त प्रस्तुत करता है?

.....

.....

.....

.....

2. उपयोगितावाद तथा कर्तव्यपरक नीतिशास्त्र में अन्तर की संक्षेप में व्याख्या कीजिए।

.....

.....

.....

.....

MAADHYAM IAS
'way to achieve your dream'

9.3 उपयोगितावाद का आलोचनात्मक मूल्यांकन

जेम्स रेचल (2012) के अनुसार, नीतिशास्त्र के सिद्धान्त के रूप में, उपयोगितावाद को इसके तीन केन्द्रीय बिन्दुओं द्वारा समझा जा सकता है। प्रथम, किसी कृत्य का नैतिक मूल्यांकन करने के लिए उस कृत्य का सिर्फ परिणाम ही विचारणीय होता है। दूसरा, किसी कृत्य के परिणाम का आंकलन इस बात पर निर्भर करता है कि वह कृत्य गुण तथा मात्रा के सन्दर्भ में कितना सुख तथा दुःख उत्पन्न करता है। तीसरा, परिणामों का मूल्यांकन करते हुए प्रत्येक व्यक्ति के सुख तथा दुःख को बराबर मानना चाहिए (रेचल, 2012: पृ. 110)। सुख तथा दुःख का मूल्यांकन में किसी व्यक्ति की समाज में स्थिति, वर्ग, जाति, धर्म, लिंग, इत्यादि के आधार पर कोई भेदभाव नहीं होना चाहिए।

बेन्थम के अनुसार नैतिकता का मुख्य उद्देश्य सम्पूर्ण जगत को जितना सम्भव हो उतना सुखमय बनाना है। इस सिद्धान्त की यह शर्त है कि यदि किसी व्यक्ति को नैतिक रूप से शुभ बनना है तो उसे किसी भी परिस्थिति में अपने कार्य के परिणामस्वरूप अधिकतम सुख प्रदान करना होगा। अधिकतम सुख का अर्थ है कि कर्ता के कृत्य से अधिक से अधिक व्यक्तियों को

सुख की प्राप्ति होनी चाहिए। इसके अलावा नैतिक रूप से शुभ होने के लिए किसी भी कृत्य को दुःख से ज्यादा सुख उत्पन्न करना चाहिए, अन्यथा उस कृत्य को बुरा मानना चाहिए।

मिल के अनुसार सुख साध्य है, जिसकी इच्छा की जानी चाहिए, तथा इसके अलावा प्रत्येक वस्तु की इच्छा इस साध्य को प्राप्त करने के लिए की जानी चाहिए। उदाहरण के लिए, भोजन के लिए मेरी इच्छा मेरी भूख को मिटायेगी लेकिन भोजन करने से अन्ततः मुझे सुख की प्राप्ति होगी। अन्यथा, भूख की अवस्था से दुःख की प्राप्ति होगी जिससे हमें बचना चाहिए।

रेचल का अनुसरण करते हुए, इस सिद्धान्त की प्रथम आलोचना यह है कि क्या नैतिकता के लिए सिर्फ सुख ही मायने रखता है? इसके अलावा, क्या हम अपने कृत्य/नीतियों/नियमों का केवल इस आधार पर मूल्यांकन कर सकते हैं कि वह कितना सुख तथा दुःख प्रदान करते हैं? उदाहरण के लिए, क्या कुछ छात्रों के समूह द्वारा नये छात्रों से दुर्व्यवहार करना, उन्हें प्रताड़ित करना सही है?, क्योंकि यह उन्हे सुख देता है? क्या न्यायालय में झूठ बोलना अच्छा या उचित होगा क्योंकि ये अधिकतम लोगों को सुख पहुँचायेगा? इन प्रश्नों का महत्व इन्हें उलट कर देखने से भी समझा जा सकता है। क्या वह सब कुछ जिससे अधिकतम प्रसन्नता या सुख की प्राप्ति होती है, वह नैतिक रूप से सही या शुभ है? इस तरह तो एक निर्दोष व्यक्ति को मारना भी एक अच्छा कृत्य कहा जायेगा यदि इससे अधिकतम व्यक्तियों को सुख की प्राप्ति होती है। यहाँ पर एक और उदाहरण दिया जा सकता है जो अधिकतर उपयोगितावाद के विरोध में दिया जाता है। मान लीजिए एक व्यक्ति किसी परिवार के बाथरूम में झांकता है लेकिन परिवार के किसी सदस्य को इसकी जानकारी नहीं है। ऐसा करने से उस व्यक्ति को जैसा भी सुख प्राप्त हो रहा हो, वह किसी को नुकसान नही पहुँचा रहा है, ना ही किसी को इस बात का ज्ञान है। यह कृत्य उस व्यक्ति के लिए अधिकतम सुख उत्पन्न करता है, जब तक कि वह व्यक्ति पकड़ा नहीं जाता है। अब प्रश्न यह आता है कि क्या इस कृत्य को एक अच्छा कृत्य मानना चाहिए? उपयोगितावाद के समर्थक इस प्रश्न का उत्तर सकारात्मक देंगे। यदि हम यहाँ पर न्याय की अवधारणा तथा व्यक्ति की निजता के अधिकार के हनन की बात नहीं भी करते हैं तब भी शुभ और अशुभ की हमारी सामान्य समझ इस कृत्य को गलत या बुरा ही ठहरायेगी।

उपरोक्त वर्णित बात से सम्बन्धित, उपयोगितावाद के विरोध में यह कहा जा सकता है कि व्यक्ति का जीवन बहुत सारे कारकों से बना तथा निर्देशित होता है, और उनमें से ही एक आनन्द/सुख होता है। सुख को अधिकतर मानवीय कृत्यों के लिए एकमात्र निर्देशक तत्त्व मानना इसे अत्यधिक प्रमुखता देना है। व्यक्ति के जीवन से जुड़े अन्य कारक जैसे न्याय, सत्य, अधिकार उपयोगितावादी ढाँचे में गौण लगते हैं। कोई यह आपत्ति कर सकता है कि न्याय या अधिकार जैसे मूल्य की स्थापना भी अन्ततः एक सुखमय समाज की ओर ही ले जाती है। यह मुद्दा सम्भव है। लेकिन न्याय किसी भी समाज में इस बात पर विचार किये

बिना व्याप्त होना चाहिए कि इसके परिणाम से अधिकतर लोगों को सुख की प्राप्ति होगी या नहीं। उदाहरण के लिए, एक बुरे अपराधी को कठोर सजा मिलनी चाहिए चाहे उस घटना से अधिकतम लोगों को दुःख पहुँच सकता हो।

उपयोगितावाद के विरोध में लगाये गये आरोप, कि ये "अधिकतम" के नियम का समर्थक है, को न्याय तथा अधिकार के उल्लंघन का मुद्दा उठाकर सिद्ध कर सकते हैं। उदाहरण के तौर पर, यदि किसी देश में मानव अधिकारों का उल्लंघन होता है और उससे अधिकतम लोगों को सुख की प्राप्ति होती है, तो उपयोगितावादी दार्शनिकों को इसे गलत कहने में कठिनाई होगी। इस तरह की परिस्थिति तब और जटिल हो जाती है जब बहुसंख्यक तथा अल्पसंख्यक साबित करने के लिए लोगों की संख्या (उपयोगितावाद में लोगों की संख्या मायने रखती है) उदाहरणार्थ, क्रमशः 60 तथा 40 हो। शुभ तथा अशुभ का नैतिक निर्णय बहुसंख्यक के पक्ष में होगा क्योंकि उनकी संख्या अधिक होगी। यहाँ मुख्य प्रश्न यह है कि क्या नैतिकताय क्या किसी कृत्य, घटना या नीति शुभ या अशुभ होना, सिर्फ संख्या पर निर्भर करती है? परन्तु, कोई प्रतिकूल कृत्य जो उन 40 लोगों पर विपरीत प्रभाव डालेगा, गलत होगा। उपयोगितावाद अपने सिद्धान्त में इन मुद्दों को समायोजित नहीं करता हुआ प्रतीत होता है।

सामान्य तौर पर हम उपयोगितावादी दृष्टिकोण को परिणामवादी समझते हैं। इसका अर्थ यह है कि किसी कृत्य के नैतिक मूल्यांकन के लिए उस कृत्य का परिणाम मायने रखता है। यदि किसी कृत्य का परिणाम दुःख से ज्यादा सुख देने में असफल होता है, तब उस कृत्य को अशुभ मानना चाहिए। यदि परिणाम से अधिकतम व्यक्तियों को सुख की प्राप्ति होती है, तब वह कृत्य एक शुभ कृत्य है। हालांकि अमर्त्य सेन जैसे दार्शनिक ने इस दृष्टिकोण का समर्थन किया है कि किसी कृत्य को करने से पहले उसके परिणाम के मूल्यांकन की आवश्यकता होती है। सेन कहते हैं कि किसी कृत्य के नकारात्मक परिणाम से बचने के लिए हमें उस कृत्य से सम्बन्धित परिणामों का पूर्वानुमान (जो हम आसानी से कर सकते हैं) कर लेना चहिए और उसके बाद उस कृत्य को करने या ना करने का निर्णय लेना चाहिए। किसी कृत्य के स्वयं के बारे में नैतिक निर्णय लेने के लिए इस बात पर विचार करना जरूरी है कि वह कृत्य परिणामस्वरूप क्या प्रदान करेगा। लेकिन इस सिद्धान्त के विरूद्ध आपत्ति यह है कि परिणाम ही एकमात्र कारक नहीं है जिसके आधार पर मूल्य–निर्धारण किया जाना चाहिए। बहुत सारे मामलों में, कृत्य अपने आप में ही उचित या अनुचित हो सकता है। उदाहरण के लिए किसी बच्चे को प्रताड़ित करना गलत है चाहे इससे किसी भी तरह का परिणाम प्राप्त हो।

सुख के सम्बन्ध में उपयोगिता को अधिकतम करने का दृष्टिकोण उपयोगितावाद को एक सापेक्षवादी सिद्धान्त बनाता है। किसी भी सही या शुभ कृत्य को सभी परिस्थतियों में सार्वभौमिक रूप से सही या शुभ नहीं माना जा सकता है। मान लीजिए, कोई कार्य 'अ' अच्छा कृत्य है, क्योंकि किसी विशेष स्थिति में यह दुःख से ज्यादा अधिकतम सुख प्रदान करता है।

वही कार्य 'अ' किसी अलग परिस्थिति में अधिकतम सुख नहीं भी प्रदान कर सकता है। इसलिए इसे शुभ कार्य नही मानेंगे। किसी विशेष कृत्य का सन्दर्भ और परिस्थिति के आधार पर अलग–अलग मूल्य निर्धारण हो सकता है। हत्या, छल–कपट, भ्रष्टाचार, धोखा देना, झूठ बोलना आदि को पूर्ण रूप से गलत या अशुभ नहीं कहा जा सकता है, ये अधिकतम लोगों को अधिकतम सुख दे सकते हैं।

बोध–प्रश्न II

ध्यातव्यः क) उत्तर हेतु दिये गये रिक्त स्थान का उपयोग कीजिए।

ख) अपने उत्तर का मिलान इकाई के अन्त में दिये गये उत्तर से कीजिए।

1. दार्शनिक उपयोगितावाद की परिणामवादी प्रकृति की आलोचना क्यों करते हैं?

.....

.....

.....

.....

2. उपयोगितावाद को सापेक्षवादी क्यों माना जाता है?

.....

.....

.....

.....

MAADHYAM IAS
'way to achieve your dream'

9.4 कर्तव्यपरक नीतिशास्त्र का आलोचनात्मक मूल्यांकन

कर्तव्यपरक नीतिशास्त्र, उपयोगितावाद के असमान, प्राथमिक रूप से शुद्ध बुद्धि से निर्देशित नैतिक कर्तव्यों को प्रमुखता देता है। उपयोगितावाद, जैसा कि ऊपर बताया गया है, उपयोगिता को व्यापक सुख तथा दुःख के सन्दर्भ में परिभाषित करने का प्रयास करता है। इमानुएल काण्ट, जो कर्तव्यपरक नीतिशास्त्र के अग्रणी समर्थक हैं, का विचार है कि नैतिक नियम या सिद्धान्त स्वतः साध्य हैं। इन नियमों के अनुसार कर्तव्य का पालन करना किसी अन्य उद्देश्य की पूर्ति के लिए नहीं होना चाहिए, दूसरे शब्दों में, "कर्तव्य के लिए कर्तव्य का पालन", इसके अलावा और कुछ नहीं। काण्ट ने इसकी व्याख्या निरपेक्ष कर्तव्यादेश (या आदेश) (Categorical Imperatives) तथा अभ्युगत (परिणामसापेक्ष; परिणाम की अपेक्षा वाले) कर्तव्यादेश (Hypothetical Imperatives) में अन्तर करके की है। परिणामसापेक्ष कर्तव्यादेश उस

प्रकार के "चाहिए" हैं, जो एक व्यक्ति अपनी इच्छाओं को पूरा करने के लिए प्रयोग करता है। उदाहरण के लिए, यदि मैं अच्छे प्राप्तांकों के साथ परीक्षा में पास होना चाहता हूँ तो मुझे पढ़ने में खूब मेहनत करनी चाहिए। या फिर, अगर मैं नही चाहता हूँ कि मैं कोरोना वायरस से संक्रमित हो जाऊं तो मुझे शारीरिक दूरी का पालन करना चाहिए। इन कार्यों का "चाहिए–स्वभाव" (should-ness or ought-ness) व्यक्ति की उन इच्छाओं पर निर्भर करता है जिनसे वह कुछ प्राप्त करना चाहता है। काण्ट के अनुसार, "चाहिए–स्वभाव" नैतिक बाध्यता को परिभाषित करता है, और यह विषयिनिष्ठ नहीं हो सकता तथा यह व्यक्ति के जीवन में इच्छाओं के बदलने के साथ बदल नहीं सकता है। उन्हें प्रकृतितः 'निरपेक्ष' होना चाहिए, हमें उनका अनुसरण बिना किसी व्यक्तिपरक इच्छाओं के करना चाहिए। निरपेक्ष आदेश निरूपाधिक (unconditional) होना चाहिए, तथा उनका पालन किसी और उद्देश्य की प्राप्ति के लिए नहीं करना चाहिए बल्कि इसलिए करना चाहिए क्योंकि वह स्वयं में साध्य है। झूठ नही बोलना चाहिए, इस उदाहरण में झूठ बोलना इसलिए निषिद्ध नही है क्योंकि इससे दूसरों को हानि होगी या उनके साथ विश्वासघात होगा, लेकिन काण्ट के निरपेक्ष आदेश के सन्दर्भ में, झूठ बोलने की अनुमति ही नहीं है क्योंकि यह अपने आप में एक बुरा कृत्य है। किसी भी बौद्धिक या तर्कसंगत व्यक्ति को किसी भी परिस्थिति में झूठ नहीं बोलना चाहिए।

काण्ट के दर्शन में नैतिक नियमों का निर्धारण करने में सूत्रवाक्य (maxim) केन्द्रीय भूमिका निभाते हैं। काण्ट का प्रथम सूत्रवाक्य नैतिक नियमों में वस्तुनिष्ठता लाना है, जैसा कि हम पहले भी कह चुके हैं कि नैतिक नियम व्यक्तिपरक नहीं हो सकते हैं। प्रथम सूत्रवाक्य व्यक्ति को उन नैतिक नियमों के अनुसार कृत्य करने की मांग करता है, जिनका वह एक सार्वभौमिक नियम की तरह पालन कर सके। उदाहरण के लिए, तुमने अपने मित्र से एक वादा किया लेकिन उसे पूरा करने की तुम्हारी कोई इच्छा नहीं है, और अन्ततः तुमने वह वादा तोड़ दिया। अब प्रश्न यह है कि क्या इस नियम का पालन किया जा सकता है कि दुनिया में प्रत्येक व्यक्ति/मित्र को वादा तोड़ना चाहिए? यदि हम इस नियम का पालन नहीं कर सकते हैं तो हम इस नैतिक नियम को सूत्रवाक्य नहीं मान सकते हैं। इसलिए हमें यह कृत्य नहीं करना चाहिए।

इसी प्रकार, व्यक्ति को झूठ नहीं बोलना चाहिए, उन्हें सत्य बोलना चाहिए; लोगों को धोखा नहीं देना चाहिए, किसी बेकसूर की हत्या नहीं करनी चाहिए, आदि को नैतिक नियम मान सकते हैं तथा इनका पालन इनके उल्लंघन बिना, सार्वभौमिक रूप से होना चाहिए। इसके अलावा इन कर्तव्यों का पालन करने का संकल्प किसी और उद्देश्य की प्राप्ति नहीं होना चाहिए, अपितु सिर्फ इन कर्तव्यों के पालन के लिए ही होना चाहिए। किसी व्यक्ति की सहायता इसलिए नहीं करनी चाहिए क्योंकि वह कुछ कृपा चाहता है या उसे लोगों की मदद करना पसंद है। इन दोनों ही स्थितियों में मदद करना व्यक्तिपरक/विषयिनिष्ठ संकल्प से प्रेरित है।

पर क्या हो यदि किसी को ऐसी कृपा पाने की कोई इच्छा ना हो और ना ही किसी को मदद करना पसंद हो? क्या तब भी मदद करना किसी के व्यक्तिपरक संकल्प जितना ही बाध्यकारी होगा? काण्ट के मतानुसार ऐसा नहीं होगा। इस प्रकार, यदि किसी की मदद करना नैतिक कर्तव्य माना जाता है, तो व्यक्ति को इसका पालन करना चाहिए चाहे उसमें कोई व्यक्तिपरक/विषयिनिष्ठ तत्व हो या ना हो। उन्हें अपने कर्तव्य का पालन सिर्फ, "कर्तव्य के लिए कर्तव्य" की भावना से करना चाहिए।

इस सन्दर्भ में काण्ट के विरोध में, मुख्य प्रश्न यह है कि यदि सत्य बोलना, जिसका सभी को एक नैतिक कर्तव्य के रूप में पालन करना चाहिए, किसी निर्दोष की हत्या के रूप में परिणत होता है, तब क्या होगा? सच बोलना या किसी निर्दोष की जान बचाना, इनमें से किसे प्राथमिक कर्तव्य कहा जा सकता है। काण्ट का नीतिशास्त्र परिणामवादी नहीं है। लोगों का यह मत हो सकता है कि किसी भी परिस्थिति में झूठ नही बोलना चाहिए चाहे इससे किसी निर्दोष की जान चली जाए। झूठ ना बोलने के कर्तव्य का पालन करके हम नैतिक नियम का अनुसरण कर सकते हैं, लेकिन क्या हम यह कह सकते हैं कि वह व्यक्ति हत्या का दोषी नहीं है? कम से कम, उस व्यक्ति ने इस प्रकार से उस घटना में योगदान दिया है जिससे किसी निर्दोष व्यक्ति की जान चली गयी। इसलिए ऐसा प्रतीत होता है कि जब व्यक्ति नैतिक दुविधा की स्थिति में होता है उस सन्दर्भ में काण्ट का कर्तव्यपरक नीतिशास्त्र समस्या को समुचित रूप से संज्ञान में नहीं लेता।

नैतिक नियम प्रतिपादित करते समय कृत्य के परिणाम पर विचार ना करना नीतिशास्त्र के इस दृष्टिकोण के लिए समस्यात्मक हो सकता है। इस समस्या को हम भारतीय महाकाव्य महाभारत में अर्जुन तथा कृष्ण के बीच हुए संवाद से समझ सकते हैं। कृष्ण अर्जुन को यह समझाने का प्रयास कर रहे थे कि एक क्षत्रिय या योद्धा समुदाय का सदस्य होने के नाते अर्जुन का यह कर्तव्य है कि वो युद्ध करे चाहे यह उसके अपने लोगों के विरूद्ध ही क्यों ना हो। उसे परिणाम की चिंता नहीं करनी चाहिए। दूसरी तरफ, अर्जुन को युद्ध करने से संकोच हो रहा था क्योंकि उसे यह पूर्वानुमान था कि युद्ध से बड़ी संख्या में निर्दोष लोगों की जान जायेगी। अर्जुन युद्ध के परिणाम को पहले से भांप गये थे तथा इस प्रकार के युद्ध को अनुचित मान रहे थे जिससे बड़ी संख्या में निर्दोष लोगों की जान की हानि होगी। उपरोक्त उदाहरण यह दिखाता है कि कुछ परिस्थितियों में किसी भी कर्म के नैतिक निर्धारण से पहले उससे संबद्ध परिणामों पर विचार करना आवश्यक होता है। मनुष्य होने के नाते हम अनेक सीमाओं से घिरे रहते हैं, और हमारा अवस्थित होना (Situatedness) (हमारा किसी परिवेश, व्यवस्था, वातावरण आदि में स्थित होना) उनमें से एक है। नैतिक निर्णय लेने के लिए या जीवन की विभिन्न परिस्थतियों में कृत्य करने के लिए किसी नैतिक सिद्धान्त को निष्पक्ष रूप से लागू नही किया जा सकता है। परिस्थति का मूल्यांकन तथा संबद्ध कारक तथा कृत्य से

संबद्ध परिणाम, नैतिक निर्णय लेने के लिए महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं। परिणाम के प्रति पूर्ण उदासीनता कभी–कभी हमारे कृत्यों को अनैतिक बना देती है।

काण्टीय नीतिशास्त्र के विरूद्ध आलोचना का एक और मुद्दा किसी नैतिक कृत्य को करने की प्रेरणा का होना है। मानव को अपने कर्तव्य का पालन सिर्फ कर्तव्य पालन के लिए करना चाहिए और किसी के लिए नहीं। काण्ट ने ऐसे किसी भी तत्व से बचने का प्रयास किया है जो किसी नैतिक कृत्य को विषयिनिष्ठ बनाता है। किसी कर्तव्य का पालन करने के लिए अलग–अलग प्रेरणा हो सकती है। कोई मानवता के नाते लोगों की सहायता करता हैय किसी को सच बोलने से कोई लाभ मिल सकता है, नहीं तो वह ऐसा नहीं करेगा। काण्ट के मतानुसार इन कृत्यों को हम नैतिक नहीं कह सकते हैं, क्योंकि नैतिक सिद्धान्त व्यक्तिपरक नहीं हो सकते तथा ये व्यक्तिगत वरीयता पर निर्भर नहीं कर सकते। एक व्यक्ति को मानवता के प्रति प्रेम है, इसलिए वह जरूरतमंद की सहायता करके अपने कर्तव्य का पालन करता है। लेकिन उनका क्या जिन्हें मानवता से प्रेम नहीं है या वे इस प्रकार के कार्य नहीं करते? उन लोगों का क्या जिन्हें कर्तव्य पालन से कोई लाभ नहीं मिल रहा है? तब, सैद्धान्तिक रूप से उन्हें अपने कर्तव्य का पालन ना करने का जिम्मेदार नहीं कहा जा सकता है। इसलिए, सभी तर्कसंगत मनुष्यों के लिए एक सार्वभौमिक ढांचे की स्थापना के लिए काण्ट ने कर्तव्य का पालन करने के लिए इन सभी व्यक्तिगत प्राथमिकताओं पर रोक लगाने का प्रयास किया। काण्ट कहते हैं कि किसी अन्य प्रेरणा के बिना कर्तव्य का पालन सिर्फ कर्तव्य के लिए करना ही बौद्धिक है। नैतिक रूप से कृत्य करने के लिए विवेक ही हमारा प्राथमिक प्रेरक आधार होना चाहिए। काण्ट प्रेम, दया, तथा सम्बन्धपरक कृत्यों को आकस्मिक मानता है, तथा भावनाओं से प्रभावित इन कृत्यों को शुभ संकल्प के कृत्य नहीं माना जा सकता है। यहाँ प्रश्न यह उठता है कि क्या मनुष्य अपने जीवन की विभिन्न परिस्थतियों में इतना अप्रभावित/उदासीन हो सकता है कि वह सिर्फ विवेक से प्रेरित होकर नैतिक निर्णय ले सके? एक व्यक्ति उस स्थिति में अपनी माँ तथा एक अजनबी के जीवन को समान मूल्य कैसे दे सकता है जब दोनों डूब रहे हों और बचाने वाला सिर्फ वही एक ही व्यक्ति हो और वह दोनों में से किसी एक की जान ही बचा सकता है। ज्यादातर काण्टीय दार्शनिक यह मत देंगे कि उसे अपनी माँ को बचा सकता है, लेकिन माँ को बचाने का उसका यह निर्णय उस व्यक्ति का अपनी माँ के साथ माँ–पुत्र के सम्बन्ध पर निर्भर नहीं होना चाहिए। दो मनुष्यों के जीवन का मूल्य समान समझना चाहिए। तर्कसंगत या बौद्धिक होने का अर्थ है कि प्रत्येक मनुष्य स्वयं साध्य है, यह काण्ट के दूसरे सूत्रवाक्य का सार है। लेकिन समस्या अब भी वही है कि मनुष्य किस हद तक अपने सम्बन्धों, संवेदनाओं, भावानुरागों, अनुकम्पा, सन्दर्भगत वातावरण की उपेक्षा करने में सक्षम है, जो, तर्क के अलावा, हमारे नैतिक निर्णय के निर्माण में काफी हद तक योगदान करते हैं।

MADHYAM IAS

काण्ट के द्वितीय सूत्रवाक्य ने आधुनिक मानव अधिकारों को आकार देने में काफी योगदान दिया है। प्रत्येक मनुष्य को स्वयं को तथा प्रत्येक अन्य व्यक्ति को हमेशा एक साध्य के रूप में देखना चाहिए, तथा केवल एक साधन के रूप में कभी नहीं देखना चाहिए। यह सूत्रवाक्य मानव का अंतर्भूत मूल्य, उसका मानव होना सुनिश्चित करता है। यह कहना गलत नहीं होगा कि काण्ट के दर्शन में व्यक्तिपन, व्यक्ति होना (personhood) मनुष्य के तर्कसंगत होने के आधार पर परिभाषित किया गया है। यह सूत्रवाक्य व्यक्ति को शोषण से बचाना सुनिश्चित करता है तथा उनके कल्याण के लिए 'संकल्प' के प्रयोग को बढ़ावा देता है, अधिकारों का सम्मान करता है तथा हानि पहुँचाने से रोकता है। मानव को स्वयं साध्य के रूप में देखना साध्य के साम्राज्य (Kingdom of Ends) की ओर अग्रसर करता है, जो कि काण्ट के तृतीय सूत्रवाक्य का उद्देश्य है।

यद्यपि यह सूत्रवाक्य समाज में मनुष्य के व्यापक कल्याण की बात करता है, लेकिन सभी को एक साध्य के रूप मे देखना कुछ असहज है। हमें समाज के लिए दण्ड नहीं देना चाहिए। काण्ट ने दण्ड देने के उपयोगितावाद के तर्क का खण्डन किया है क्योंकि वह अपराधियों के साथ, अन्य व्यक्तियों के सुख के लिए एक साधन मात्र के रूप में व्यवहार करना होगा। काण्ट के मतानुसार दण्ड की अवधारणा न्याय से सम्बन्धित है, और हमें दण्ड का निर्णय करना चाहिए जो अपराध के लिए उचित है। तो "आँख के बदले आँख" काण्ट के दण्ड की अवधारणा को समझने के लिए उपयुक्त सिद्धान्त है। यहाँ यह प्रश्न किया जा सकता हैउस स्थिति में कैसे निर्णय लेंगे यदि अपराधी स्वयं अपनी परिस्थितियों का शिकार हो, किसी ने गलती से किसी निर्दोष की हत्या कर दी हो? क्या हम उन परिस्थितियों का किसी अन्य सिद्धान्त से मूल्यांकन कर सकते हैं? या फिर केवल अपराध को देखकर ही हम उन्हें सजा देंगे, जो उन्होंने किसी परिस्थिति या सन्दर्भ से निरपेक्ष होकर किया? इस प्रकार के प्रश्न हमें यह विचार करने पर विवश करते हैं कि काण्ट नीतिशास्त्र ने सभी नैतिक मुद्दों को समायोजित नहीं किया है।

बोध–प्रश्न III

ध्यातव्यः क) उत्तर हेतु दिये गयरिक्त स्थान का उपयोग कीजिए।

ख) अपने उत्तर का मिलान इकाई के अन्त में दिये गये उत्तर से कीजिए।

1. निरपेक्ष आदेश या कर्तव्यादेश को परिभाषित कीजिए।

.....

.....

MADHYAM IAS
"way to achieve your dream"

.....

.....

2. काण्टीय कर्तव्यपरक नीतिशास्त्र के विरूद्ध प्रमुख आलोचनाओं का संक्षेप में वर्णन कीजिए।

.....

.....

.....

.....

9.5 सद्‌गुण नीतिशास्त्र का आलोचनात्मक मूल्यांकन

उपयोगितावाद तथा काण्ट का कर्तव्यपरक नीतिशास्त्र इस प्रश्न के इर्द गिर्द केन्द्रित है कि नैतिक रूप से कृत्य कैसे किया जाए या वह क्या है जो एक कृत्य को शुभ या अशुभ बनाता है? सद्‌गुण नीतिशास्त्र प्राचीन काल से ही यह प्रश्न पूछता आ रहा है, जैसाकि रेचल लिखते हैं, "चरित्र के कौन से गुण किसी व्यक्ति को अच्छा व्यक्ति बनाते हैं?" (रेचलः 2012, पृ. 157)। कर्म–निर्देशित तत्वों को ढूंढने की अपेक्षा, उन्होंने उन सद्‌गुणों की खोज की जो व्यक्ति को शुभ बनाते हैं। प्लेटो ने सद्‌गुणों को मनुष्य के बाहर ना परिभाषित करके उनमें आभ्यंतर ही परिभाषित किया है। सद्‌गुणों का निवास मनुष्य के अन्दर ही होता है। उपयोगितावाद और कर्तव्यपरक नीतिशास्त्र कृत्यों का शुभ व अशुभ होना नैतिक कर्तव्यों में तथा कृत्य के परिणाम में ढूंढने का प्रयास करते हैं। *रिपब्लिक* में प्लेटो कहते हैं कि यदि मनुष्य सद्‌गुणी होगा तो उसके कृत्य शुभ होंगे। प्लेटो और अरस्तू दोनों का यह मत है कि मनुष्य की शुभता कृत्यों को देखकर निर्धारित नहीं की जा सकती है। यदि यह एक सद्‌गुण है, तो इसे प्रत्येक कृत्य में आदतन तथा सतत रूप से होना चाहिए। हम किसी हत्यारे का एक शुभ कृत्य देखकर उसे अच्छा नही मान सकते हैं। अन्य नैतिक सिद्धान्त व्यक्ति को अच्छा इन्सान बनाने में या सद्‌गुणों का विकास करने पर विचार नहीं करते हैं। वे इस बात पर ध्यान देते हैं कि नैतिक निर्णय लेते समय हमें क्या सोचना चाहिए, हमें किस प्रकार कर्म करना चाहिए, और किसी कर्म को शुभ या अशुभ निर्धारित करने के लिए किस प्रकार उसका आंकलन तथा नैतिक निर्धारण करना चाहिए। सद्‌गुण नीतिशास्त्र विभिन्न प्रकार के सद्‌गुणों की बात करता है जिन्हें मनुष्य को विकसित करना चाहिए जिससे शुभता से किसी कृत्य को करना अल्पकालिक नहीं बल्कि उनकी आदत होनी चहिए। एलिजाबेथ एन्सकॉम्ब (1958) के अनुसार समकालीन समय में सद्‌गुण नीतिशास्त्र के सिद्धान्तों की अवहेलना की गयी है, और ऐसा लगता है कि जिन्होंने इसका अनुसरण करने का प्रयास किया है वो भी मूल सिद्धान्त से भटक गये हैं। हमें एक बार फिर उसी दृष्टिकोण पर वापस जाने की आवश्यकता है जो ग्रीक दार्शनिकों, विशेष रूप से अरस्तू ने विकसित किया है।

प्लेटो इस प्रश्न का उत्तर कि सद्गुणी कैसे बन सकते हैं, यह कहकर देते हैं कि आत्मा के विभिन्न भागों (विवेक, साहस, संयम) के बीच सामंजस्य/संतुलन होना चाहिए। अरस्तू ने सामंजस्य को परिभाषित करने का प्रयास यह कहकर किया है कि सद्गुण दो अवगुणों या दुर्गुणों के मध्य का बिन्दु है– जिनमें से एक चरम अवस्था है तथा दूसरा अपर्याप्त है। अरस्तू ने इस मध्यबिन्दु को "स्वर्णिम नियम" नाम दिया है। तो यह कहना कि साहसी होना एक सद्गुण है, अरस्तू के अनुसार इसका अर्थ होगा, कि किसी व्यक्ति को उतावला नहीं होना चाहिए जो कि लापरवाही का कारण होगाय तथा किसी को कायर भी नहीं होना चाहिए। यह प्रत्येक सद्गुण पर लागू होता है। प्लेटो ने इस मुद्दे पर गहन विचार किया है। प्लेटो के अनुसार सद्गुणी होने के लिए आत्मा को सामंजस्य की अवस्था में रहना होगा जहाँ विवेक, साहस, तथा संयम साथ–साथ हों। प्लेटो सामंजस्य की इस स्थिति को अरस्तू के "स्वर्णिम नियम" को प्राप्त करने के किए एक शर्त के रूप में रखेंगे। प्लेटो के अनुसार मानसिक सामंजस्य की स्थिति प्राप्त हो जाने पर व्यक्ति नियत रूप से शुभता से कृत्य करेगा।

इस सिद्धान्त के विरूद्ध मुख्य आलोचना यह व्याख्या ना कर पाना है कि किसी सद्गुण को सद्गुण क्यों माना जाना चाहिए? सत्यता को सद्गुण क्यों माने? किसी भी सद्गुण को सद्गुण क्यों कहा जाए? उपयोगितावाद के सन्दर्भ में भी तुरन्त यह व्याख्या दी जायेगी कि उपयोगितावाद के अनुसार किसी कार्य को शुभ या अशुभ क्यों मानेंगे। काण्टीय नीतिशास्त्र का अनुसरण करने वाले भी नैतिक निर्णय के लिए नियमों को आधार मानेंगे। लेकिन सद्गुण नीतिशास्त्र के सम्बन्ध में इस सम्बन्ध में व्याख्या अपर्याप्त है। अतः इस नैतिक सिद्धान्त द्वारा दयालुता/साहस/सत्यता को सद्गुण मानने का कोई मजबूत आधार नहीं दिया गया है। इसके अलावा, बहुत से लोगों का यह मानना है कि सद्गुण स्वयं में मूल्यवान नहीं होते हैं, वे मूल्यवान इसलिए होते हैं क्योंकि वे समाज के सम्पूर्ण कल्याण में सहायता करते हैं (उपयोगितावाद), या फिर वे कर्तव्य–पालन में सहायता करते हैं (कर्तव्यपरक नीतिशास्त्र)। जैसे कि, दूसरों के प्रति दया एक सद्गुण है क्योंकि ऐसा करके हम समाज कल्याण को बढ़ाते हैं। बहुत लोग इस दृष्टिकोण को अपनाते हैं कि रिपब्लिक में प्लेटो ने अंततः यह कहा है कि न्याय एक सद्गुण के रूप में स्वयं में तथा जो परिणाम यह लाता है उस रूप में भी मूल्यवान है।

सद्गुण नीतिशास्त्र की एक अन्य आलोचना यह की जाती है कि जब व्यक्ति नैतिक दुविधा में होता है तब यह नैतिक सिद्धान्त मार्गदर्शन के लिए बहुत कम ही विचार प्रदान करता है। उदाहरण के लिए, एक व्यक्ति सच बोलने तथा चुप रहने के बीच दुविधा में हो सकता है, सच बोलने से वह दूसरे व्यक्ति की भावनाओं को दुःख पहुंचायेगा और चुप रहकर वह दयालु तथा करूणामय बन जायेगा। दो सद्गुणों के मध्य टकराव की स्थिति में व्यक्ति सद्गुण की प्राथमिकता का चुनाव कैसे करेगा?

9.6 सारांश

इस इकाई में हमने विभिन्न नैतिक दृष्टिकोणों का आलोचनात्मक विश्लेषण करने का प्रयास किया है। यहाँ हम कह सकते हैं कि कोई भी सिद्धान्त दोषहीन और आलोचना के परे नहीं है। प्रत्येक सिद्धान्त की अपनी मजबूती है और प्रत्येक सिद्धान्त ने दर्शन के इतिहास पर अपने चिन्ह अंकित किये हैं। इन दृष्टिकोणों के बिना नीतिशास्त्र में समकालीन विकास सम्भव नहीं था। आलोचना का लक्ष्य किसी सिद्धान्त को तिरस्कृत करना नहीं होना चाहिए। आलोचनाएं सिद्धान्त के समस्यात्मक पहलुओं को दिखाती हैं और अवधारणाओं की कमियों की पूर्ति करने का प्रयास करती हैं। सभी आलोचनाओं के बावजूद, कोई भी इन सिद्धान्तों के शुभ और अशुभ या उचित और अनुचित के भेद की समझ में सकारात्मक योगदान को नकार नहीं सकता है।

बोध–प्रश्न IV

ध्यातव्यः क) उत्तर हेतु दिये गये स्थान का उपयोग कीजिए।

ख) अपने उत्तर का मिलान इकाई के अन्त में दिये गये उत्तर से कीजिए।

1. सद्‌गुण नीतिशास्त्र का विषय नीतिशास्त्र के अन्य दृष्टिकोणों से किस तरह भिन्न है?

.....

.....

.....

.....

MAADHYAM IAS
'way to achieve your dream'

2. सद्‌गुण नीतिशास्त्र के विरुद्ध मुख्य आलोचनाओं की संक्षिप्त चर्चा कीजिए।

.....

.....

.....

.....

9.7 कुंजी शब्द

आलोचनात्मक मूल्यांकन : किसी अवधारणा/सिद्धान्त का आलोचनात्मक परीक्षण।

नीति–दर्शन : नीति–दर्शन नैतिक जीवन में नियम/नियम–निर्माण के बारे में है। नीति–दर्शन के कुछ संगत प्रश्न हैं; नैतिक सिद्धान्त क्या हैं?, इन नैतिक सिद्धान्तों को स्थापित करने का आधार क्या है?

9.8 अन्य सहायक अध्ययन–सामग्री एवं सन्दर्भ

ब्लेकबर्न, एस. एथिक्सः *अ वेरी शॉर्ट इन्ट्रोडक्शन.* ऑक्सफोर्डः ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस, 2003.

ग्राहम, जी. *एट थ्योरीज ऑफ एथिक्स.* लंदन एण्ड न्यू यॉर्कः राउटलेज, 2004.

पोज्मेन, एल. *डिस्कवरिंग राइट एण्ड रांग.* बेल्मॉन्ट, सीएः वडस्वर्थ, 1990.

रेशेल्स, जे., एण्ड रेशेल्स, एस. *दि एलीमेन्ट्स ऑफ मॉरल फिलोसॉफी.* 7. न्यू यॉर्क, 2012.

सेन, ए. के. *दि आइडिया ऑफ जस्टिस.* हार्वर्डः हार्वर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस, 2009.

सिन्हा, जे. *अ मैन्युअल ऑफ एथिक्स.* केल्कट्टाः सिन्हा पब्लिकेशन हाउस, 1962.

9.9 बोध–प्रश्नों के उत्तर

बोध–प्रश्न I

1. उपयोगितावाद किसी कृत्य के शुभ या अशुभ के रूप में मूल्यांकन का आधार उपयोगिता को बनाता है। इस सिद्धान्त के समर्थकों ने उपयोगिता को सुख के पदों में परिभाषित किया है। उन्होंने सिद्धान्त दिया है कि यदि कोई कृत्य अधिकतम व्यक्तियों में दर्द/दुःख की अपेक्षा सुखध्रसन्नता उत्पन्न करता है, तब यह कृत्य शुभ माना जायेगा अन्यथा, इसे अशुभ माना जायेगा।

2. उपयोगितावाद और कर्तव्यशास्त्र के मध्य मुख्य अन्तर यह है कि उपयोगितावाद कहता है कि कोई कृत्य शुभ है या अशुभ यह निर्धारित करने के लिए उस कृत्य के परिणामों को विश्लेषित करने की आवश्यकता होती है। दूसरी ओर, कर्तव्यशास्त्र बताता है कि किसी कृत्य के बारे में नैतिक निर्णय बनाने के लिए हमें स्वयं कृत्य की परीक्षा करने की आवश्यकता है। इसके अलावा, उपयोगितावाद सुख और दुःख के पदों में उपयोगिता के प्रश्न पर केन्द्रित है। कर्तव्यपरक नीतिशास्त्र किसी कर्तव्य द्वारा उत्पन्न दुःख या सुख की अपेक्षा से रहित कर्तव्य की अवधारणा पर केन्द्रित है।

बोध–प्रश्न II

1. उपयोगितावाद परिणामवादी है क्योंकि यह किसी कृत्य के नैतिक मूल्यांकन में उस कृत्य से उत्पन्न परिणामों को प्राथमिकता देता है। कोई कृत्य/नीति/नियम शुभ है या अशुभ यह इस बात पर निर्भर करता है कि वह कृत्य परिणाम के रूप में कितना दुःख या सुख

उत्पन्न करते है। उपयोगितावाद के विरुद्ध आक्षेप यह है कि यह सिद्धान्त इस बात को नजरंदाज करता है कि कृत्य अपने आप में शुभ या अशुभ हो सकता है। कृत्यों का स्वयं में मूल्य हो सकता है। इसके अतिरिक्त, परिणाम सदैव किसी कृत्य का औचित्य सिद्ध नहीं कर सकते हैं। उदाहरणार्थ, लोग किसी निर्दोष को क्षति पहुँचाने में प्रसन्नता प्राप्त कर सकते हैं। लेकिन किसी निर्दोष को क्षति पहुँचाना अपने आप में अशुभ या बुरा है।

2. उपयोगितावाद द्वारा प्रदत्त नैतिक सिद्धान्त है कि कोई कृत्य शुभ है यदि यह अधिकतम व्यक्तियों में अधिकतम प्रसन्नता उत्पन्न करता है, अन्यथा इसे अशुभ माना जायेगा। इस सम्बन्ध में विद्वानों ने आपत्ति प्रस्तुत की है कि यदि ऐसा है तो किसी कृत्य के बारे में कोई नैतिक निर्णय बनाने में कोई एकरूपता नहीं होगी। कोई कृत्य–विशेष किसी एक परिस्थिति में शुभ कहा जा सकता है क्योंकि यह दुःख की अपेक्षा सुख उत्पन्न कर सकता है, लेकिन समान कृत्य किसी भिन्न परिस्थिति में अशुभ माना जा सकता है क्योंकि यह सुख की अपेक्षा दुःख उत्पन्न करता है। अतः, शुभ और अशुभ परिस्थिति–निर्भर हैं और इस प्रकार सापेक्ष।

बोध–प्रश्न III

1. काण्ट निरपेक्ष आदेश को नैतिक दायित्व की समझ में प्रस्तुत करता है। निरपेक्ष आदेश, सापेक्ष आदेश के लिए अनुप्रयुक्त किसी व्यक्ति की इच्छा या किसी अन्य साध्य की पूर्ति पर निर्भर नहीं हैं। निरपेक्ष आदेश की प्रकृति है 'आपको इसे करना चाहिए' बिना इस अपेक्षा के कि कोई इसे करने की इच्छा करता है या नहीं। यदि नैतिक नियम किसी कृत्य को दायित्व के तौर पर प्रस्तुत करते हैं, तो इसे किया जाना चाहिए। निरपेक्ष आदेश निरुपाधिक (शर्तरहित) और अपवाद–रहित हैं। किसी को भी किसी भी स्थिति में उनका अतिक्रमण नहीं करना चाहिए।

2. काण्ट के कर्तव्यशास्त्र के विरुद्ध एक प्रमुख आपत्ति यह है कि यह सिद्धान्त नैतिक दुविधाओं के सम्बन्ध में असंदिग्ध रूप से सही नहीं है। जब दो नैतिक कर्तव्यों में संघर्ष होता है, जैसे सत्य बोलना या निर्दोष का जीवन बचाना में से कौन–से कर्तव्य को वरीयता मिलनी चाहिए, यह सिद्धान्त इस तरह के प्रश्नों के सम्बन्ध में मुख्यतः मौन है, या हम कह सकते हैं कि यह हमारा पथ–निर्देशन नहीं करती है। एक अन्य महत्वपूर्ण आपत्ति यह है कि काण्ट का निरपेक्ष आदेश हमें कर्तव्य की पूर्ति में उत्पन्न परिणामों से सम्बन्धित किसी भी चिंता पर विचार करने से रोकता है। कभी–कभार हमें किसी कृत्य के प्रासंगिक निहितार्थों को देखने की आवश्यकता होती है; अन्यथा, हमारे एक कृत्य से अनेक नकारात्मक परिणाम उत्पन्न हो सकते हैं।

बोध–प्रश्न IV

MADHYAM IAS

1. सद्गुण नीतिशास्त्र, मुख्यतः, उपयोगितावाद और कर्तव्यपरक नीतिशास्त्र से पूर्णतः भिन्न प्रश्न पूछता है। यह पूछने के बजाय कि किसी कृत्य को क्या है जो अच्छा या बुरा बनाता है, यह उन चारित्रिक गुणों के बारे में पूछता है जो किसी व्यक्ति को अच्छा या बुरा बनाते हैं। इसलिए, सद्गुण नीतिशास्त्र का मुख्य लक्ष्य नीतिशास्त्र के अन्य दो दृष्टिकोणों से भिन्न है। अन्य महत्वपूर्ण अन्तर यह है कि सद्गुण नीतिशास्त्र नैतिक मूल्यात्मक निर्णय बनाने के लिए किसी कृत्य के अकेले दृष्टान्त को प्राथमिकता नहीं देता है, जैसाकि अन्य दो सिद्धान्त करते हैं। यह सद्गुण को स्थिर (आदतन) स्वीकारता है। हम किसी एक किये गये अच्छे कृत्य के आधार पर किसी व्यक्ति का मूल्यांकन अच्छे व्यक्ति के तौर पर नहीं कर सकते हैं। हो सकता है वह पेशेवर अपराधी हो, और उसने अच्छा कार्य संयोगवश किया हो।

2. सद्गुण नीतिशास्त्र की मुख्य आलोचना यह है कि अंततः सद्गुण को सद्गुण क्यों स्वीकारना चाहिए। हमें दयालुता या ईमानदारी को सद्गुण क्यों स्वीकारना चाहिए? सद्गुण नीतिशास्त्र इस प्रश्न का कोई समुचित उत्तर नहीं देता है।

MAADHYAM IAS
'way to achieve your dream'

खण्ड 3

अधि–नीतिशास्त्र

MAADHYAM IAS
'way to achieve your dream'

खण्ड परिचय

खण्ड 3 "अधि–नीतिशास्त्र" पाँच इकाईयों में विभाजित है। इस खण्ड में विद्यार्थी अधि–नीतिशास्त्र और प्रमुख अधि–नीतिशास्त्रीय सिद्धान्तों को समझेगा। इस खण्ड में हम प्रकृतिवाद, निर्–प्रकृतिवाद, विषयिनिष्ठवाद, सम्वेगवाद और परामर्शवाद की चर्चा करेंगे।

इकाई 10 "अधि–नीतिशास्त्र का परिचय" अधि–नीतिशास्त्र की परिभाषा और प्रकृति की चर्चा करती है। यह इकाई अनेक नीतिशास्त्रीय सिद्धान्तों; मानकीय नीतिशास्त्र, अधि–नीतिशास्त्र, अनुप्रयुक्त नीतिशास्त्र के मध्य अन्तर को भी प्रस्तुत करती है। यह इकाई अनेक अधि–नीतिशास्त्रीय सिद्धान्तों की व्याख्या करती है।

इकाई 11 "प्रकृतिवाद एवं निर्–प्रकृतिवाद" प्रकृतिवाद और निर्–प्रकृतिवाद के मध्य अन्तर के साथ–साथ विभिन्न प्रकृतिवादी एवं निर्–प्रकृतिवादी मतों की चर्चा करती है। इस इकाई में विद्यार्थी जी. ई. मूर के नैतिक गुण क्या है? इस प्रश्न पर मत का अध्ययन करेगा।

इकाई 12 "विषयिनिष्ठवादः डेविड ह्यूम" विषयिनिष्ठवाद के विभिन्न संस्करणों के बारे में है। विद्यार्थी डेविड ह्यूम के विषयिनिष्ठवाद की समझ में समर्थ होगा।

इकाई 13 "सम्वेगवादः चार्ल्स स्टीवेन्सन" सम्वेगवाद की पूर्वमान्यताओं और युक्तियों की चर्चा करती है। इस इकाई की मुख्य विषय–वस्तु चार्ल्स स्टीवेन्सन का सम्वेगवाद है।

इकाई 14 "परामर्शवादः आर एम हेयर" परामर्शवाद के अधि–नीतिशास्त्रीय मत की चर्चा करती है। यह इकाई हेयर के परामर्शवाद और उसकी नीति–दर्शन में महत्ता की चर्चा करती है।

MAADHYAM IAS

इकाई 10 अधिनीतिशास्त्र का परिचय

रूपरेखा

10.0 उद्देश्य

10.1 परिचय

10.2 परिभाषा

10.3 अधिनीतिशास्त्र की शाखायें

10.4 सारांश

10.5 कुंजी शब्द

10.6 अन्य सहायक अध्ययन–सामग्री एवं सन्दर्भ

10.7 बोध–प्रश्नों के उत्तर

10.0 उद्देश्य

प्रस्तुत इकाई आपको निम्नलिखित विषयों को समझने में सुयोग्य बनायेगी,

- अधिनीतिशास्त्र का अर्थ,
- नीतिशास्त्र की अन्य शाखाओं जैसे आदर्शमूलक/मानकीय नीतिशास्त्र और अनुप्रयुक्त नीतिशास्त्र के साथ इसकी तुलना,
- अधिनीतिशास्त्र की विभिन्न शाखाओ का परिचय, और उनकी पूर्वमान्यताएं, ढांचा, आदि।

10.1 परिचय

नीतिशास्त्र नैतिक सिद्धान्तों का दार्शनिक अध्ययन है। हमारे जीवन में क्या शुभ और क्या अशुभ ध्येय है और हमारे दैनिक जीवन के कौन से कर्म उचित और अनुचित हैं, नीतिशास्त्र

* सुश्री सुरभि उनियाल, विद्यावाचस्पति शोधक, दर्शन केन्द्र, जवाहरलाल नेहरू विश्वविद्यालय, दिल्ली,
अनुवादक– सुश्री शिल्पी श्रीवास्तव

इसका अध्ययन करता है। नीतिशास्त्र का प्रमुख कार्य ये निर्धारित करना है कि हमें अपना जीवन किस प्रकार जीना चाहिये और हमारे जीवन का ध्येय क्या होना चाहिये। हम यह भी कह सकते हैं कि यह हमारे उचित और अनुचित व्यवहार/कृत्य में सम्मिलित अवधारणाओं, पथ–प्रदर्शक नियमों और सिद्धान्तों का व्यवस्थित अया अनुचित बनाने वाले नियमों का अध्ययन करते हैं। इसके अन्तर्गत हम अच्छी आदतों या सद्गुण को अपनाने, कर्तव्य जिनका पालन करना चाहिये, और हमारे कृत्य के परिणामों का अध्ययन है। नीतिशास्त्र को मुख्यतः तीन शाखाओं में बांटा जाता है – आदर्शमूलक या मानकीय या नियामक नीतिशास्त्र (नॉर्मेटिव एथिक्स), अनुप्रयुक्त नीतिशास्त्र (एप्लायड एथिक्स) और अधि–नीतिशास्त्र (मेटा–एथिक्स)। नियामक नीतिशास्त्र उचित और अनुचित कर्मों की व्याख्या करता है। नियामक नीतिशास्त्र आदर्शों/मानकों, आचरण की संहिता, हमारे कृत्य को उचित अन्य पर प्रभाव, इन सभी पर विचार मोरल मॉरल करते हैं। अनुप्रयुक्त नीतिशास्त्र नैतिक सिद्धांतो का विशिष्ट परिस्थितियों पर अनुप्रयोग का प्रयास है। इसके अन्तर्गत कुछ विशेष विवादास्पद समस्याओं, जैसे गर्भपात, भ्रूण–हत्या, पशु–अधिकार, मृत्युदण्ड, मानव–प्रतिरूपण (ह्यूमन–क्लोनिंग) आदि का परीक्षण सम्मिलित है। जहाँ एक ओर नियामक नीतिशास्त्र और अनुप्रयुक्त नीतिशास्त्र इस तथ्य पर केंद्रित है कि वो क्या है जो शुभ है, और मनुष्य के लिये कौन से कर्म उचित है, वहीं दूसरी ओर अधिनीतिशास्त्र का विषय स्वयं नैतिकता का स्वरूप है। अधिनीतिशास्त्र नैतिक आदर्शों, उनके उद्गम एवं उनके वास्तविक अर्थ की अन्वेषण करता है। अधिनीतिशास्त्र आदर्शमूलक नीतिशास्त्र और अनुप्रयुक्त नीतिशास्त्र को आधार प्रदान करता है।

नियामक नीतिशास्त्र, अनुप्रयुक्त नीतिशास्त्र और अधिनीतिशास्त्र के बीच के भेद को हम फुटबॉल के खेल के दृष्टान्त द्वारा समझ सकते हैं। "यहाँ फुटबॉल के खेल से जुड़े विभिन्न अंगों को नीतिशास्त्र की विभिन्न शाखाओं के सन्दर्भ में समझेंगे। खेल में भाग लेने वाले खिलाड़ियों को हम अनुप्रयुक्त नीतिशास्त्रियों के समान मान सकते हैं। अनुप्रयुक्त नीतिशास्त्री विशेष परिस्थितियों से जुडे हुये नैतिक प्रश्नों में रुचि रखते हैं, जैसे कि, क्या गर्भपात अनुचित है? क्या आत्महत्या अनुज्ञेय (जायज) है?, क्या हम दान देने के लिये नैतिकरूप से बाध्य हैं? क्या मानव प्रतिरूपण अनुचित है? इत्यादि। खेल में रेफरी का कार्य होता है उन नियमों की व्याख्या करना जिनके अनुसार खिलाड़ी खेलेते हैं। नीतिशास्त्र में यह कार्य नियामक नीतिशास्त्री का होता है। नियामक नीतिशास्त्री की रुचि उन आधारभूत सिद्धांतों में होती है जो अनुप्रयुक्त नीतिशास्त्री का मार्गदर्शन करते हैं। उदाहरणतः क्या उचित और अनुचित का निर्णय हमारे कर्मों के फल पर निर्भर करना चाहिये? हमें किस प्रकार का मनुष्य बनने का प्रयास करना चाहिये? अंत में खेल–विश्लेषक होते हैं जो न तो स्वयं खेल खेलते है और ना ही खेल के नियमों को समझाते हैं परंतु ये समझने और वर्णन करने का प्रयास करते हैं कि वस्तुतरू खेल में क्या हो रहा है। यह कार्य अधिनीतिशास्त्री के कार्य के समान है, जो नीतिशास्त्र के

मूल कार्य के सन्दर्भ में प्रश्न करता है। अधिनीतिशास्त्र इस प्रकार से आदर्शमूलक नीतिशास्त्र एवं अनुप्रयुक्त नीतिशास्त्र से मूलतः भिन्न है।"

इस इकाई में हमें अधिनीतिशास्त्र का विस्तारपूर्वक परिचय मिलेगा और साथ ही हम इसके अन्तर्गत आने वाले विभिन्न सिद्धान्तों से भी परिचित होंगे।

10.2 परिभाषा

"अधिनीतिशास्त्र नैतिक विचारों, वार्ताओं एवं रीतियों के तत्वमीमांसीय, ज्ञानमीमांसीय, अर्थ–विषयक एवं मनोवैज्ञानिक पूर्वधारणाओं एवं प्रतिबद्धताओं को समझने का प्रयास है।" (प्लेटो स्टेनफोर्ड एन्सायक्लोपीडिया ऑफ फिलॉसोफी, अधिनीतिशास्त्र पर लेख)। अधिनीतिशास्त्र नैतिक निर्णयों एवं कृत्यों के स्वरूप और अर्थ की जिज्ञासा है। अधिनीतिशास्त्र का उद्देश्य यह अन्वेषण करना है कि नैतिक–सिद्धान्त का उद्गम क्या है, और उनका क्या तात्पर्य है। उदाहरणार्थ, जब हम यह कहते हैं कि, ईमानदारी शुभ (सद्गुण) है, तब हम क्या कहना चाहते हैं, अथवा दूसरे शब्दों में, किसी नैतिक निर्णय में 'शुभ' पद के प्रयोग से हमारा क्या तात्पर्य होता है। अधिनीतिशास्त्र पद, दो शब्दो के योग से बना है दृ अधि एवं नीतिशास्त्र। यहाँ अधि को प्रायः पश्चात् या परे के अर्थ में समझा जाता है जो कि इसका सही अर्थ नहीं है। अधि का अर्थ यहाँ 'के बारे में विचार' अथवा नीतिशास्त्र से "अलग बैठ के" है जिसका तात्पर्य नीतिशास्त्र के आधारभूत मुद्दों को समझना है। ये हमारी नैतिक रीतियों पर एक विहंगम दृष्टि डालते हुये नीतिशास्त्र के आधारभूत प्रश्नों को समझने का प्रयास करता है। अतरू यह कहना गलत होगा की अधिनीतिशास्त्र का क्षेत्र या विषय नीतिशास्त्र से दूर या परे है। सत्य तो यह है कि अधिनीतिशास्त्र नैतिकता के मूल स्वरूप की गहरी विवेचना करता है।

यद्यपि "अधिनीतिशास्त्र" शब्द का प्रयोग पहली बार बीसवीं शताब्दी में हुआ परन्तु नैतिक भाषा, गुण एवं निर्णयों की अवस्थिति एवं नींव के सन्दर्भ में आधारभूत दार्शनिक चिंतन प्राचीन यूनानी दार्शनिक प्लेटो एवं अरस्तू के लेखन में भी पाया जाता है। प्लेटो ने यूथेप्रो नामक संवाद में सुकरात द्वारा ईश्वरीय आदेशों और नैतिकता के बीच भेद करने को नवीन अधिनीतिशास्त्रीय वाद–विवाद का पूर्वगामी माना जाता है जिसने नैतिक मूल्यों को एक धर्म–निरपेक्ष आधार प्रदान किया। अरस्तु ने भी अपनी पुस्तक *निकोमेकियन एथिक्स* के प्रथम अध्याय में सद्गुण और आनंद को मनुष्य की जैविक और राजनैतिक प्रकृति पर निर्भर माना है और इसकी परीक्षा भी समकालीन अधिनीतिशास्त्र के दृष्टिकोण से की जा सकती है। इसी प्रकार मध्यकालीन युग के अनेक नैतिक विचार जो नैतिकता और मूल्यों को धार्मिक ग्रन्थों, आदेशों, या अनुसरणीय कर्मों के रूप में स्वीकारते हैं, कुछ विशिष्ट अधिनीतिशास्त्रीय मतों का समर्थन करते हैं। इसके विपरीत, इमानुएल काण्ट ने नीतिशास्त्र के ऐसे आधार का प्रतिपादन किया जो विभिन्न धार्मिक सम्प्रदायों की मान्यताओं से स्वतंत्र है। काण्ट ने अपनी पुस्तक *ग्राउण्डवर्क ऑन द*

मेटाफिजिक्स ऑफ मॉरल्स में बुद्धि से अनिवार्यतः निःसृत एक सार्वभौमिक नैतिक नियम की प्रस्तावना दी। उनका यह सिद्धान्त अनेक समकालीन नव–काण्टवादी विचारकों द्वारा समर्थित नैतिक वस्तुनिष्ठता के सिद्धान्त का आधार है। नीतिशास्त्र की मुख्य शाखा के रूप में अधिनीतिशास्त्र बीसवीं सदी में जी. ई. मूर के लेखन द्वारा स्थापित हुआ।

अधिनीतिशास्त्र इन प्रश्नों के उत्तर देने का प्रयास करता है – क्या नैतिक तथ्यों का अस्तित्व है या क्या नैतिक तथ्य पाये जाते हैं? यदि नैतिक तथ्य होते हैं उनका उद्‌गम क्या है? यदि नैतिक तथ्य हैं तो हमें उनका ज्ञान कैसे होता है? जब कोई व्यक्ति 'शुभ' और 'उचित' जैसे शब्दों का प्रयोग करता है तो उनका वास्तविक अर्थ क्या होता है? नैतिक मूल्य कहां से आते है? उनका स्रोत और आधार क्या है? क्या कुछ ऐसा है जो सभी समय में सभी व्यक्तियों के लिए उचित अथवा अनुचित है या नैतिकता व्यक्ति, सन्दर्भ और संस्कृति सापेक्ष है? ये कुछ ऐसे मूलभूत प्रश्न हैं जिनका अधिनीतिशास्त्र में अध्ययन किया जाता है। और जो आदर्श मूलक नीतिशास्त्र एवं अनुप्रयुक्त नीतिशास्त्र को आधार प्रदान करते हैं। केन्द्रीय–प्रश्न कि क्या कोई भी नैतिक मत सत्य है? और क्या स्वयं को नैतिक आचरण के लिए प्रतिबद्ध करना बौद्धिक रूप से सही है? इस प्रश्न का उत्तर देने के लिए ये आवश्यक है कि लोगों की नैतिक धारणाओं के सही या गलत के होने के सन्दर्भ में स्वयं के कुछ विचार हों। क्या नैतिक वाक्य प्रतिज्ञप्तियों को अभिव्यक्त करते हैं?" इस प्रश्न का उत्तर देने की प्रक्रिया में अधिनीतिशास्त्र को दो मुख्य भागों में बाँटा जा सकता है– संज्ञानात्मक नीतिशास्त्र एवं असंज्ञानात्मक नीतिशास्त्र जो कि स्वयं अनेक शाखाओं में विभाजित हैं।

MAADHYAM IAS
'way to achieve your dream'

बोध–प्रश्न I

ध्यातव्यः क) उत्तर हेतु दिये गये स्थान का प्रयोग कीजिए।

ख) अपने उत्तर का मिलान इकाई के अंत में दिये गये उत्तर से कीजिए।

1. अधिनीतिशास्त्र, नियामक नीतिशास्त्र एवं अनुप्रयुक्त नीतिशास्त्र में भेद कीजिए।

.....

.....

.....

.....

10.3 अधिनीतिशास्त्र की शाखाएं :–

अधिनीतिशास्त्र को सामान्यतः दो शाखाओं में विभाजित किया जाता है – संज्ञानात्मक नीतिशास्त्र एवं असंज्ञानात्मक नीतिशास्त्र। संज्ञानात्मक नीतिशास्त्र के अनुसार नैतिक वाक्य विश्वासों को व्यक्त करते हैं, इन विश्वासों का सत्यता–मूल्य (जिन्हें हम सत्य या असत्य की कोटि में रख सकते हैं) होता है और इसीलिए ये वाक्य सत्य अथवा असत्य की कोटि में रखे जा सकते हैं। दूसरी ओर असंज्ञानात्मक नीतिशास्त्र में, संज्ञानात्मक नीतिशास्त्र के विपरीत, यह मान्यता है कि नैतिक वाक्य विश्वास को व्यक्त नहीं करते हैं।

10.3.1 संज्ञानात्मक नीतिशास्त्र :–

संज्ञानात्मक नीतिशास्त्र एक अधिनीतिशास्त्रीय सिद्धान्त है जिसके अनुसार (1) नैतिक निर्णय विश्वास का को अभिव्यक्त करते हैं, और (2) उनका सत्यता मूल्य होता है अर्थात् ये कथन सत्य या असत्य कहे जा सकते हैं। मनोवैज्ञानिक संज्ञानवाद का मानना है कि नैतिक कथन नैतिक कृत्य के बारे में हमारे विश्वास की अभिव्यक्ति है। जब कोई ये धारणा व्यक्त करता है कि "हत्या करना अनुचित है" या "गर्भपात नैतिक दृष्टि से अनुचित है" तो वह इस सम्बन्ध में अपना विश्वास व्यक्त करता है। कथन, "हत्या करना अनुचित है" और "गर्भपात नैतिक दृष्टि से अनुचित है।" सत्य या असत्य हो सकते हैं, जिसका अर्थ है कि इनका सत्यता मूल्य होता है। नैतिक कथन सत्य या असत्य हो सकते है, इस विचार को अर्थ–सम्बन्धी संज्ञानवाद कहते हैं। अर्थ–सम्बन्धी संज्ञानवादी दार्शनिकों के अनुसार हमारे नैतिक कथनों की सत्यता या असत्यता इस बात पर निर्भर करती है कि वे कितनी सटीकता से इस जगत के विशिष्ट नैतिक आयाम को सम्बोधित करते हैं। वो क्या है जो इन कथनों को सत्य या असत्य बनाता है? अर्थ–सम्बन्धी संज्ञानवादी दार्शनिकों के अनुसार हमारी नैतिक भाषा का सार उसका विवरणात्मक होना है। जिस प्रकार यह कथन कि 'बिल्ली दरी पर बैठी है' एक विवरणात्मक तथ्य कि बिल्ली दरी पर बैठी है, को प्रस्तुत करता है और इसकी सत्यता इस पर निर्भर करती है कि बिल्ली सचमुच दरी पर बैठी है या नहीं। यह कथन एक ऐसे तथ्य को प्रस्तुत करता है जो जगत के वास्तविक स्वरूप या वस्तु–स्थिति से सम्बन्धित है। ठीक उसी प्रकार नैतिक कथन भी विवरणात्मक तथ्य प्रस्तुत करते हैं और उनकी सत्यता/असत्यता बाह्य जगत या वस्तु–स्थिति पर आधारित होती है। जब हमारा विवरण जगत के अनुरूप (जैसा है, वैसा ही) होता है तो नैतिक कथन सत्य होते हैं और जब वो अनुरुप नहीं होता तो असत्य। नैतिक संज्ञानवादी, मनोवैज्ञानिक संज्ञानवाद और अर्थ–सम्बन्धी संज्ञानवाद, इन दोनों ही मतों का सम्मिश्रण करता है जब वे यह तर्क प्रस्तुत करते हैं कि नैतिक कथन ऐसे विश्वासों को व्यक्त करते हैं जिनका सत्यता मूल्य होता है और जिसका सत्यता–मूल्य इस बात पर निर्भर करता है कि यह तथ्य अथवा जगत का कितना सटीक विवरण देता है। नैतिक यथार्थवाद, नैतिक विषयिनिष्ठवाद एवं त्रुटि का सिद्धान्त, नैतिक संज्ञानवाद के अन्तर्गत आते हैं।

MADHYAM IAS

10.3.1.1 नैतिक यथार्थवाद :

नैतिक यथार्थवाद के अनुसार नैतिक कथन विश्वास को व्यक्त करता है और यह विश्वास जगत का मन से स्वतंत्र तथ्य होता है। नैतिक यथार्थवादियों के दो आधारभूत आधारवाक्य हैं, पहला कि नैतिक तथ्यों का अस्तित्व है, और दूसरा कि नैतिक तथ्यों का मानव–मन से स्वतन्त्र अस्तित्व है। जब हम कहते हैं कि नैतिक तथ्य वस्तुनिष्ठ हैं और स्वतन्त्र हैं, तो इसका आशय है कि वे किसी व्यक्ति–विशेष के विश्वासों और अभिवृत्तियों या प्रवृत्तियों पर अथवा किसी संस्कृति की रूढ़ियों या मान्यताओं पर निर्भर नहीं करते हैं। ये विश्वास मात्र कर लेना कि "हत्या करना अनुचित है" इसे अनुचित नहीं बनाता अपितु इसे गलत बनाता है, हत्या से सम्बद्ध 'अनुचित' नामक वास्तविक गुण (जो वस्तुनिष्ठ और मनः–स्वतंत्र है) का अस्तित्व होना। नैतिक यथार्थवाद को दो प्रकारों में विभाजित किया जाता है : नीतिशास्त्रीय प्रकृतिवाद एवं नीतिशास्त्रीय निर्प्रकृतिवाद।

अ. नीतिशास्त्रीय प्रकृतिवाद

नीतिशास्त्रीय प्रकृतिवाद के अनुसार वस्तुनिष्ठ और प्राकृतिक नैतिक गुणों का अस्तित्व होता है। उनका मानना है कि हमें नैतिक सत्यों का आनुभविक ज्ञान होता है। प्रकृतिवाद की परिभाषा उस सिद्धान्त के रुप में दी जा सकती है जो कि मोटे तौर पर उन सभी अपचयन करने वाले नैतिक सिद्धान्तों को समेटता है जो नैतिक प्रत्ययों की प्राकृतिक घटनाओं के रूप में व्याख्या करते हैं, जैसे कि सुखवाद और उपयोगितावाद, 'शुभ', 'कर्तव्य' एवं 'उचित' की इच्छाओं की पूर्ति के रुप में व्याख्या करने वाले सिद्धान्त, और साथ–ही, विषयिनिष्ठवाद या आत्मनिष्ठवाद और सापेक्षवाद के प्रतिज्ञप्तिवादी एवं असंज्ञानवादी प्रकार। जेरेमी बेन्थम और जॉन स्टुअर्ट मिल जैसे उपयोगितावादी दार्शनिकों ने नैतिक शुभ की परिभाषा इस प्रकार दी है कि जो कार्य अधिकतम व्यक्तियों को अधिकतम सुख देता है (गुणात्मक सुख या आनन्द, विशेषरूप से, मिल के उपयोगितावाद के संस्करण में) वो शुभ है। इस प्रकार हम कह सकते हैं कि इन दार्शनिकों ने 'शुभ' को प्राकृतिक गुण माना (क्योंकि उनका कहना है कि, हम सुख को नाप सकते हैं)।

ब. नीतिशास्त्रीय निर्प्रकृतिवाद

नीतिशास्त्रीय निर्प्रकृतिवाद के अनुसार नैतिक गुण प्राकृतिक गुणों से पूर्णतः भिन्न हैं। जी. ई. मूर निर्प्रकृतिवाद के प्रमुख प्रस्तावक थे। मूर के अनुसार नैतिक गुणों का प्राकृतिक गुणों के समान बाहरी जगत में अस्तित्व नहीं है और ये मूलतः सरल निर्प्राकृतिक गुण होते हैं। यहाँ शुभ को एक प्राकृतिक गुण के समान नहीं देखा जाता है, जिसका ज्ञान आनुभविक तरीके से होता है। निर्प्रकृतिकवादी दार्शनिकों के अनुसार, निर्प्राकृतिक गुणों का ज्ञान हमें हममें उपस्थित नैतिक बोध की सहायता से अंतर्प्रज्ञा की तरह होता है। जी. ई. मूर ने नैतिक गुणों को प्राकृ

तिक गुणों के समान मानने का विरोध किया क्योंकि वे ये मानते थे कि नैतिक गुण मूल रूप से सरल होते हैं। मूर नैतिक गुणों का तादात्म्य प्राकृतिक गुणों से करने को 'प्राकृतिक दोष' (नैचुरलिस्टिक फैलेसी) की संज्ञा देते हैं। मूर शुभ को निर्–नैतिक गुणों, फिर चाहे यह प्राकृतिक हो या फिर अति–प्राकृतिक, के समान मानने के विरुद्ध हैं।

10.3.1.2 नैतिक विषयिनिष्ठवाद या नैतिक आत्मनिष्ठवाद

नैतिक विषयिनिष्ठवाद या नैतिक आत्मनिष्ठवाद के अनुसार नैतिक गुण वस्तुनिष्ठ नहीं होते और इसीलिए इसे नैतिक अयथार्थवाद का कहते हैं। नैतिक विषयिनिष्ठवाद के अनुसार नैतिक कथनों की सत्यता अथवा असत्यता, व्यक्तियों की अभिवृत्तियों अथवा रूढ़ियों या मान्यताओं पर निर्भर करती है। इस विचार के अनुसार, नैतिक कथन व्यक्तियों की अभिवृत्तियों, मतों या सम्वेदनाओं को अन्तर्निहित करता है। जब कोई व्यक्ति कहता है कि "इच्छामृत्यु अनुचित है और इसकी अनुमति नहीं देनी चाहिए" तो यह प्रतीत हो सकता है कि इस कथन का सत्यता मूल्य होगा परन्तु यह केवल इच्छामृत्यु के प्रति किसी व्यक्ति कि नापसंद अथवा असहमति को व्यक्त करता है। ये ठीक उसी प्रकार है जैसे कि ये कहना कि "मुझे इच्छामृत्यु पसंद नहीं है।" नैतिक विषयिनिष्ठवाद के अन्तर्गत व्यक्तिपरक विषयिनिष्ठवाद एवं सांस्कृतिक सापेक्षवाद के सिद्धान्त आते हैं। व्यक्तिपरक विषयिनिष्ठवाद का आशय है किसी व्यक्ति–विशेष का अनुभव या अभिवृत्ति और सांस्कृतिक सापेक्षवाद के अनुसार संस्कृतियां भिन्न–भिन्न हैं और उनके मूल्य या नैतिकता भिन्न–भिन्न होती है, इसी कारण इसे सापेक्षवाद कहते हैं। नैतिक आत्मनिष्ठवाद के अन्तर्गत आदर्श प्रेक्षक का सिद्धान्त एवं दैवीय आदेश सिद्धान्त आते हैं।

MAADHYAM IAS
'way to achieve your dream'

अ. आदर्श प्रेक्षक सिद्धान्त (आइडियल ऑब्जर्वर थ्योरी)

आदर्श प्रेक्षक सिद्धान्त के अनुसार नैतिक निर्णयों की सत्यता व असत्यता एक आदर्श प्रेक्षक की सहमति या असहमति पर आधारित होती है। एक आदर्श प्रेक्षक "वह है जो किसी विशिष्ट दृष्टिकोण से उत्पन्न पूर्वग्रहों से प्रभावित हुए बिना नैतिक निर्णय बनाता या लेता है"। (प्लेटो स्टेन्फॉर्ड एन्साइक्लोपीडिया, तटस्थता पर आलेख)। आदर्श प्रेक्षक पूर्ण रुप से बौद्धिक, तटस्थ, एवं कल्पनाशील होता है। एक आदर्श प्रेक्षक सभी चीजों का परीक्षण करता है और प्रत्येक के बारे में एक आदर्श अवधारणा रखता है। रिचर्ड बी. ब्रेन्ड मानते हैं कि आदर्श प्रेक्षक होने के लिए सभी नैतिक प्रासंगिक तथ्यों का ज्ञान होना आवश्यक विशेषता नहीं है। वह कहते हैं, "... हम विशेषताओं को और कम कर सकते हैं। आदर्श प्रेक्षक को इन (नैतिकरूप से प्रासंगिक), तथ्यों को जानने की आवश्यकता नहीं हैय उसका केवल उनके, उचितरूप से और पूर्णतः स्पष्ट ढंग से, तथ्य होने पर विश्वास करना पर्याप्त है और यह उनके ज्ञान से भिन्न है।" (रिचर्ड बी. ब्रेन्ड, "दि डेफिनिशन ऑफ एन "आइडियल ऑब्जर्वर" थ्योरी इन एथिक्स", 1955)।

एडम स्मिथ एवं डेविड ह्यूम आदर्श प्रेक्षक सिद्धान्तके प्राचीन रूप को प्रस्तावक के रूप में जाने जाते हैं और रोडरिक फ्रिथ आदर्श प्रेक्षक सिद्धान्तके नवीन रूप के प्रस्तावक माने जाते हैं।

ब. दैवीय समादेश या आदेश सिद्धान्त

दैवीय आदेश सिद्धान्त के अनुसार नैतिकता ईश्वर पर आधारित है। इस सिद्धान्त के अनुसार नैतिक तथ्य ईश्वर के आदेशों से निर्धारित होते हैं। अतः, नैतिक दृष्टि से उचित कर्म वो है जो ईश्वर के आदेश के अनुरूप है। इस सिद्धान्त को मानने वाले दार्शनिकों का मानना है कि ईश्वर देश और काल की सीमाओं के परे है। इन दैविय आदेशों की विषय–वस्तु प्रत्येक धर्म के अनुसार भिन्न–भिन्न है। परन्तु इन सभी धर्मों की मान्यता है कि नैतिकता और नैतिक आदेश अंततः ईश्वर पर आधारित होते हैं। थॉमस एक्विनास, रॉबर्ट एडम्स और फिलिप क्विन इस सिद्धान्त के समर्थक हैं।

10.3.1.3 त्रुटि का सिद्धान्त

त्रुटि का सिद्धान्त के अनुसार नैतिक कथन प्रतिज्ञप्ति (तार्किक कथन) हो सकते हैं, लेकिन सभी नैतिक प्रतिज्ञप्तियां असत्य होती हैं। इसका आशय है कि जब भी हम किसी नैतिक कथन का प्रयोग करते है तो सामान्यतः हम त्रुटि में हैं। इस सिद्धान्त के प्रधान प्रस्तावक जे. एल. मैकी थे। उनका मानना है कि हमारी नैतिक अभिव्यक्तियां ऐसे उन विश्वासों की अभिव्यक्तियां हैं जिनका सत्यता मूल्य होता है (सत्यता–मूल्यक विश्वासय विश्वास जिसे या तो सत्य या फिर असत्य की कोटि में रखा जा सकता है)। परन्तु वे यथार्थवाद का खण्डन करते हैं, जिसका यह मानना है कि ये अभिव्यक्तियां सर्वदा बाह्य जगत (बाह्यार्थ; बाह्य अर्थ) से सम्प्रेषण रखती हैं। हमारे नैतिक निर्णय या कथन में सर्वदा गलती या त्रुटि होने की सम्भावना होती है। बिना नैतिक गुण के, सत्यता–मूल्यक विश्वास के पदों में जगत का विवरण देना सम्भव नहीं है, इसीलिए वह इस विचार को नकारते हैं कि ये विश्वास सत्य हो सकते हैं यदि वे किसी नैतिक गुण से सम्बन्धित नहीं हैं। त्रुटि के सिद्धान्त के अन्तर्गत नैतिक उच्छेदवाद या शून्यवाद एवं नैतिक संशयवाद आते हैं।

बोध–प्रश्न I I

ध्यातव्यः क) उत्तर हेतु दिये गये स्थान का प्रयोग कीजिए।

ख) अपने उत्तर का मिलान इकाई के अंत में दिये गये उत्तर से कीजिए।

1. नैतिक संज्ञानवाद को परिभाषित करें।

.....

.....

.....

.....

2. नैतिक संज्ञानवाद के अन्तर्गत कौन से सिद्धान्त आते हैं? संक्षेप में परिभाषित कीजिए।

.....

.....

.....

.....

10.3.2 नैतिक असंज्ञानवाद

नैतिक असंज्ञानवाद एक अधिनीतिशास्त्रीय मत है जिसके अनुसार नैतिक वाक्य किसी विश्वास या प्रतिज्ञप्ति को अभिव्यक्त नहीं करते और इसलिए उन्हें सत्य या असत्य नहीं कहा जा सकता। असंज्ञानवादी नीतिशास्त्रियों के अनुसार, जब व्यक्ति नैतिक कथनों का उच्चारण करते है तो वे मन की स्थिति, अर्थात् विश्वास, अथवा संज्ञान या बोध को अभिव्यक्त नहीं करते। अपितु, वे असंज्ञानात्मक अभिवृत्तियों जैसे इच्छाओं, प्रवृत्तियों या संवेदनाएं भावनाओं को अभिव्यक्त करते हैं। उदाहरण के लिए, जब कोई कहता है कि "हत्या करना गलत है" तो वह हत्या के प्रति अपनी असहमति को अभिव्यक्त करता है। असंज्ञानवादी ये मानते हैं कि नैतिक कथनों या दावों (नैतिक कृत्य के प्रति सहमति और असहमति) का सत्यता मूल्य नहीं होता है।

मनोवैज्ञानिक असंज्ञानवादी दार्शनिकों के अनुसार नैतिक वाक्य विश्वासों पर आधारित नहीं होते अपितु उनका आधार भावनायें, इच्छायें, संवेदनाएं, पसंद एवं मनोभाव होते हैं। अर्थ सम्बन्धी असंज्ञानवादी दार्शनिकों के अनुसार, जब हम कहते हैं कि "हत्या गलत है" तब हम जगत के किसी नैतिक गुण का वर्णन नहीं कर रहे होते हैं, अपितु हम हत्या के कृत्य के प्रति हमारी भावना या मनोभाव को अभिव्यक्त कर रहे होते हैं। भावनाओं और मनोभावों या अभिवृत्तियों का सत्यता मूल्य नहीं होता क्योंकि वे जगत के किसी वस्तु के बारे में कोई तथ्य नहीं बताते हैं।

नैतिक असंज्ञानवाद अ–वर्णनात्मक वाक्–कृत्य (नॉन डिक्लेरेटिव स्पीच एक्ट) को स्वीकारता है, जिसका अर्थ हुआ कि नैतिक कथनों या दावों का अस्तित्व बिना सत्यता मूल्य के हो सकता है। असंज्ञानवादी (अ–वर्णनात्मक वाक्–कृत्य) का उदाहरण है "मत मारो" का उच्चारण । इस उच्चारण कोई सत्यता मूल्य नहीं है।

सम्वेगात्मक नीतिशास्त्र, अर्ध–यथार्थवाद और सार्वभौमिक परामर्शवाद आदि वो सिद्धान्त हैं जो नैतिक असंज्ञानवाद के अन्तर्गत आते हैं।

10.3.2.1 सम्वेगवाद

सम्वेगवाद के अनुसार नैतिक वाक्य केवल किसी व्यक्ति की भावनाओं या अभिवृत्तियों को व्यक्त करते हैं। ए.जे. एअर एवं सी. एल. स्टीवेन्सन सम्वेगवाद के समर्थक हैं।

> सम्वेगवाद के अनुसार, नैतिक कथन "हत्या गलत है" केवल हत्या के कृत्य के विरुद्ध हमारी भावनाओं की अभिव्यक्ति है। यह हत्या के प्रति हमारी नकारात्मक वृत्ति को एक औपचारिक भाषाई स्वरूप देती है। वास्तव में, सम्वेगवाद को "छिः/शाबाश" वाला अधिनीतिशास्त्रीय सिद्धान्त भी कहा जाता है क्योंकि जब हम कहते है कि कोई कार्य नैतिक रूप से उचित नहीं है तो हम उसकी भर्त्सना करते है और जब उचित है तो उसे शाबाशी देते हैं। (मार्क डिम्मोक और एन्ड्रयु फिशर, एथिक्स फॉर ए–लेवेल)

ए.जे.एयर के अनुसार नैतिक कथनों का कोई तथ्यात्मक अर्थ नहीं होता है। नैतिक उच्चारण या वाचन या कथन प्रतिज्ञप्ति या तर्क–वाक्य नहीं होते हैं। इसीलिए नैतिक उच्चारणों को सत्य या असत्य की कोटि में नहीं रखा जा सकता है। वह आलेख "दि इमॉटिव थ्योरी ऑफ एथिक्स" में कहते हैं,

> किसी कथन में एक नैतिक प्रतीक की उपस्थिति उसमें तथ्यात्मक रूप से कुछ भी नहीं जोड़ती। अतः यदि मैं किसी से कहता हूँ कि "तुमने वो पैसे चुराकर गलत किया" तो मैं तथ्यात्मक रूप से केवन उतना ही कहता हूँ कि "तुमने वो पैसे चुराये" ये जोड़ते हुए कि ये कार्य गलत है हम इसमे कोई तथ्य नहीं जोड़ते हैं। ये केवल इस कार्य के प्रति अपनी नैतिक असहमति को प्रकट कर रहा हूँ। ये वैसा ही है जैसे मैने "तुमने वो पैसे चुराये" इस वाक्य को डरावनी आवाज से कहा होता या लिखते समय कुछ विशेष विस्मयबोधक चिन्हों का प्रयोग किया होता। हमारा स्वर या चिन्ह उस कथन के शाब्दिक अर्थ में कोई परिवर्तन नहीं लाते । वो केवल ये दर्शाते हैं कि उस वाक्य की अभिव्यक्ति वक्ता के हृदय में कुछ विशेष भावनाओं को जन्म देती है । यदि मैं अपने कथन को एक सामान्य रूप देते हुए कहूँ कि "पैसे चुराना गलत है" तो मैं एक ऐसे वाक्य का निर्माण करता हूँ जिसका कोई तथ्यात्मक अर्थ नहीं है दृ अर्थात् एक ऐसा तर्कवाक्य जो सत्य या असत्य नहीं हो सकता। ये वैसा ही है जैसे मेरा लिखना "पैसे चुराना !!" जहाँ विस्मयबोधक चिन्ह के आकार और मोटाई से, प्रयोग के प्रथा के अनुसार ये प्रकट हो जाता है कि एक विशेष प्रकार की नैतिक असहमति की भावना व्यक्त की जा रही है। ये स्पष्ट है कि यहाँ ऐसा कुछ भी नहीं कहा जा रहा है जिसे सत्य या असत्य कहा जा सके। (*दि इमोटिव थ्योरी ऑफ एथिक्स*, पृष्ठ 124)

इस प्रकार एयर ये तर्क देते हैं कि नैतिक कथन हमेशा व्यक्ति–विशेष से जुड़े होते है और इनमें सत्यता–मूल्य का अभाव होता है। सी. एल. स्टीवेनसन भी एयर के विचारों से प्रभावित होकर ये मानते हैं कि नैतिक वाक्य वक्ता की भावनाओं को व्यक्त करते हैं।

10.3.2.2 अर्ध – यथार्थवाद

अर्ध–यथार्थवाद वो अधिनीतिशास्त्रीय सिद्धान्त है जो ये तर्क देता है कि नैतिक उच्चारण सम्वेदनात्मक अभिवृत्तियों या सम्वेदनाओं का प्रक्षेपण है जिससे कि सम्वेदनाएं वास्तविक (यथार्थ) गुण हों। नैतिक उच्चारण प्रतिज्ञप्तियों को अभिव्यक्त नहीं करते हैं। इस मत को साइमन ब्लैकबर्न द्वारा समर्थन दिया गया है। उनका मानना है कि यह सम्भव है कि नैतिक कथनों से सम्प्रेषण के लिए जगत में किसी नैतिक तथ्य का अस्तित्व न हो, भाषाई तौर पर नैतिक कथन इस तरह व्यवहार करते हैं जैसे कि वे तथ्यात्मक दावे हों और इसलिए उन्हें "सत्य" अथवा "असत्य" से सम्बद्ध करना उचित है।

10.3.2.3 सार्वभौमिक परामर्शवाद

सार्वभौमिक परामर्शवाद वो अधि नीतिशास्त्रीय सिद्धान्त है जिसके अनुसार नैतिक वाक्य आदेशों या प्रेरणाओं के समान कार्य करते हैं और ये आदेश सार्वभौमिक होते हैं। आर. एम. हेयर इस सिद्धान्त के प्रमुख समर्थक हैं। उनका मानना है कि कोई भी नैतिक उच्चारण भावनात्मक या सम्वेगात्मक सहमति या असहमति से कहीं अधिक व्यक्त करता है। नैतिक उच्चारण विषयिनिष्ठ परामर्श को अभिव्यक्त करते हैं। वे परामर्श की प्रकृति के होते हैं। जब कोई किसी नैतिक निर्णय या कथन का उच्चारण करता है, तो वह चाहता है कि अन्य व्यक्ति भी इस नैतिक निर्णय के अनुसार कार्य करे। उदाहरणार्थ, अ कहता है कि "आत्महत्या नैतिक रुप से अनुचित है" तो इसका अर्थ है कि अ दूसरों को आत्महत्या के समर्थन करने या उसके पक्ष में निर्णय लेने से रोकना चाहता है। परामर्शवाद नैतिक वक्तव्यों को कर्म–निर्धारक आदेशों के रुप को पाने का प्रयास है। नैतिक उच्चारण या वक्तव्य जैसे "सत्य बोलना उचित है", का तात्पर्य कुछ इस तरह है कि "सत्य बोलो"। हेयर कहते हैं कि नैतिक कथन सार्वभौमिक किये जा सकने योग्य होते हैं, जिसका तात्पर्य है कि वे वस्तुनिष्ठ मूल्य रखते हैं।

बोध–प्रश्न III

ध्यातव्यः क) उत्तर हेतु दिये गये स्थान का प्रयोग कीजिए।

ख) अपने उत्तर का मिलान इकाई के अंत में दिये गये उत्तर से कीजिए।

1. नैतिक असंज्ञानवाद को परिभाषित कीजिए।

.....

.....

.....

.....

2. नैतिक संज्ञानवाद और नैतिक असंज्ञानवाद में भेद कीजिए ।

.....

.....

.....

.....

10.4 सारांश

पिछले खण्डों में ये दिखाया गया है कि किस प्रकार अधिनीतिशास्त्र नियामक नीतिशास्त्र और अनुप्रयुक्त नीतिशास्त्र को आधार प्रदान करता है। अधिनीतिशास्त्र नीतिशास्त्र की वो शाखा है जो नैतिक पदों और नैतिक आधारों या स्थापनाओं की प्रकृति और अर्थ का अन्वेषण या अन्वीक्षा करती है। इसे मोटे तौर पर दो शाखाओं में विभाजित किया जाता है : नैतिक संज्ञानवाद एवं नैतिक असंज्ञानवाद जिन्हें फिर अन्य सिद्धातों में विभाजित किया जाता है। ये सभी सिद्धान्त (नैतिक संज्ञानवाद व नैतिक असंज्ञानवाद को सम्मिलित करते हुए) नीतिशास्त्र का आधार बनाते हैं। ये नीतिशास्त्र के प्रमुख शब्दों और प्रत्ययों जैसे "शुभ" "उचित" आदि को परिभाषित करने का प्रयास करते हैं। वे यह भी दर्शाने का प्रयास करते हैं कि हमें नैतिक तथ्यों का ज्ञान किस प्रकार होता है। विभिन्न अधिनीतिशास्त्रीय सिद्धान्त इस प्रश्न का उत्तर कि "क्या नैतिक कथनों का सत्यता मूल्य होता है?" अलग अलग प्रकार से देते हैं। नियामक नीतिशास्त्र और अनुप्रयुक्त नीतिशास्त्र के सिद्धान्त इन अधिनीतिशास्त्रीय सिद्धांतों के अन्तर्गत आते हैं। नीचे दिये गये चित्रात्मक निरूपण के द्वारा हम विभिन्न सिद्धान्तों और उनके वर्गीकरण को समझ सकते है।

MADHYAM IAS

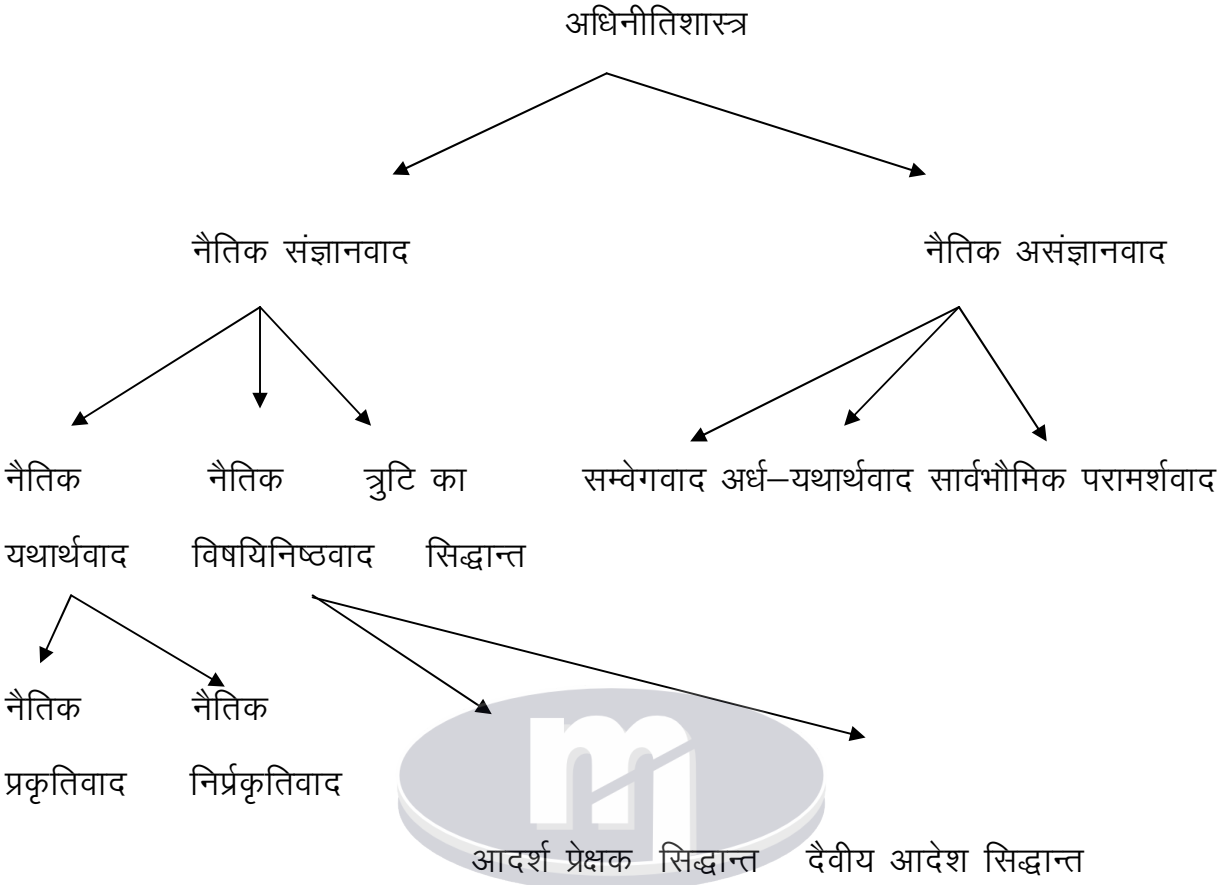

MAADHYAM IAS

10.5 कुंजी शब्द

मूलभूत : मूलभूत से यहाँ अर्थ है कोई ऐसा विचार या सिद्धान्त जिस पर कुछ अन्य आधारित हो । जैसे, अधिनीतिशास्त्र वह मूल या आधार है जिस पर नियामक नीतिशास्त्र और अनुप्रयुक्त नीतिशास्त्र का आधारित हैं।

सत्य – मूलक : इसका अर्थ है कि किसी कथन का सत्यता मूल्य है और वह सत्य या असत्य बतौर वर्णित किया जा सकता है ।

वस्तुनिष्ठ (मन – स्वतंत्र) तथ्य : वस्तुनिष्ठ, मन – स्वतंत्र तथ्य होने का अर्थ है कि इन तथ्यों का अस्तित्व मन पर आधारित नहीं है। अपितु वे बाहरी जगत में अस्तित्वमान हैं। उन्हें वस्तुनिष्ठ या आनुभविक रुप से जाना जा सकता है।

10.6 अन्य सहायक अध्ययन–सामग्री एवं सन्दर्भ

एयर ए. जे. *लैंग्वेज, ट्रूथ एण्ड लॉजिक.* डोवर पब्लिकेशन. न्यू यॉर्क, 1952.

एयर, ए. जे. "दि इमोट्व थ्योरी ऑफ एथिक्स." इन मॉरल फिलोसॉफीरू सिलेक्टेड रीडिंग्स. सेकेण्ड एडिशन. एडिटिड बाई जॉर्ज शेर. हर्कॉर्ट–ब्रेसरू फॉर्ट वर्थ, टीएक्स, 1996. पृ. 120–128.

ब्रेन्ड, रिचर्ड बी. "दि डेफिनिशन ऑफ एन "आइडियल ऑब्जर्वर थ्योरी इन एथिक्स." फिलोसॉफी एण्ड फिनोमिनोलॉजिकल रिसर्च, 1955, वो. 15ध्3, पृ. 407–413. एस्सेस्ड https://www-jstor-org/stable/2103510.

डिम्मोक, मार्क एण्ड एंड्रियू फिशर. *एथिक्स फॉर ए लेवल.* कैम्ब्रिजः ओपन बुक पब्लिशर्स, 2017.

फिशर, एंड्रियू. *मेटाएथिक्सः एन इनट्रोडक्शन.* न्यू यॉर्कः रूटलेज, 2011.

मैकी, जे.एल. *एथिक्सः इनवेंटिंग राईट एण्ड रॉन्ग.* पैंग्युइन बुक्स, 1977.

मूर, जी. ई. *प्रिंसीपिया एथिका.* कैम्ब्रिजः कैम्ब्रिज यूनिवर्सिटी प्रेस, 1903.

मैकक्लोस्कि, एच. एल. मेटा एण्ड नोर्मैटिव्स एथिक्स. द हेगः मार्टिनुफ निझोफ, 1969.

श्रोडर, मार्क. *नॉनकोग्निटिविज्म इन एथिक्स.* न्यू यॉर्कः रूटलेज, 2010.

द ऑक्सफोर्ड हैंडबुक ऑफ एथिकल थ्योरी, एडिटिड बाई डेविड कॉप. न्यू यॉर्कः ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस, 2006.

MAADHYAM IAS
'way to achieve your dream'

ऑनलाइन संसाधनः

प्लेटो स्टेनफॉर्ड एन्साइक्लोपीडिया ऑफ फिलोसॉफी, "मेटाएथिक्स" पर आलेख।

प्लेटो स्टेनफॉर्ड एन्साइक्लोपीडिया ऑफ फिलोसॉफी, "इम्पार्सियालिटी" पर आलेख।

10.7 बोध–प्रश्नों के उत्तर

बोध–प्रश्न I

1. नीतिशास्त्र को सामान्यतः तीन प्रमुख शाखाओं में विभाजित किया जाता है : नियामक नीतिशास्त्र, अनुप्रयुक्त नीतिशास्त्र एवं अधिनीतिशास्त्र। नियामक नीतिशास्त्र हमारे कर्मों के उचित या अनुचित होने के मापदण्डों की व्याख्या करता है। ये इस बात का अध्ययन है कि वो क्या हो जो हमारे कार्यों को उचित या अनुचित बनाता है। दूसरी ओर, अनुप्रयुक्त नीतिशास्त्र

नैतिक सिद्धांतों को विशेष परिस्थितियों में आरोपित करने का प्रयास करता है। इसके अन्तर्गत में आरोपित करने का प्रयास करता है। इसके अन्तर्गत हम गर्भपात, भ्रूण हत्या, पशुओं के अधिकार, मृत्युदण्ड और मानव प्रतिरूपण जैसे विशिष्ट विवादास्पद मुद्दों का परीक्षण करते हैं जहाँ एक ओर नियामक नीतिशास्त्र और अनुप्रयुक्त नीतिशास्त्र इस बात पर केन्द्रित है कि क्या नैतिक दृष्टि से उचित है और हमें क्या करना चाहिए, अधिनीतिशास्त्र का कार्य स्वयं नैतिकता को समझना है। अधिनीतिशास्त्र, आदर्श मूलक नीतिशास्त्र और अनुप्रयुक्त नीतिशास्त्र को आधार प्रदान करती है ।

बोध–प्रश्न II

1. नैतिक संज्ञानवाद एक अधिनीतिशास्त्रीय सिद्धान्त है जिसके अनुसार

(1) नैतिक निर्णय हमारे विश्वासों को व्यक्त करते हैं और (2) इनका सत्यता मूल्य होता है, अर्थात् ये सत्य अथवा असत्य हो सकते हैं।

2. नैतिक संज्ञानवाद के अन्तर्गत नैतिक यथार्थवाद, नैतिक विषयिनिष्ठवाद एवं त्रुटि का सिद्धान्त आते हैं। नैतिक यथार्थवाद के अनुसार नैतिक कथन किसी विश्वास को व्यक्त करते हैं और ये विश्वास जगत के मन से स्वतंत्र तथ्य हैं। इस सिद्धान्तके दो प्रकार हैं, नैतिक प्रकृतिवाद अथवा नैतिक निर्प्रकृतिवाद। दूसरी ओर, नैतिक विषयिनिष्ठवाद के अनुसार नैतिक कथनों की सत्यता व असत्यता व्यक्तियों के अभिवृत्तियों और संवेगों पर आधारित होती है। यहाँ नैतिक वाक्य को व्यक्तियों की भावनाओं, मनोभावों और मत के समान माना गया है। नैतिक विषयिनिष्ठवाद दो अन्य सिद्धान्तों का आधार है : आदर्श प्रेक्षक सिद्धान्त और दैवीय आदेश सिद्धान्त। और अंत में, त्रुटि के सिद्धान्तके अनुसार नैतिक कथन तथ्यात्मक वाक्य हो सकते है परन्तु सभी नैतिक कथन असत्य होते हैं ।

बोध–प्रश्न III

1. नैतिक असंज्ञानवाद एक अधिनीतिशास्त्रीय मत है जिसके अनुसार नैतिक वाक्य किसी विश्वास या मत को व्यक्त नहीं करते और इसलिए वे सत्य या असत्य नहीं होते। असंज्ञानवादी दार्शनिकों के अनुसार जब लोग कोई नैतिक वाक्य कहते हैं तो वो किसी मनः स्थिति या विश्वास को व्यक्त नहीं करते बल्कि ये असंज्ञानवादी मनोभावों जैसे भावनाओं और संवेगों को व्यक्त करते है ।

2. नैतिक संज्ञानवाद के अनुसार नैतिक निर्णय हमारे सत्यता–मूलक विश्वासों को व्यक्त करते हैं। दूसरी ओर नैतिक असंज्ञानवाद के अनुसार नैतिक वाक्य विश्वास या मत को व्यक्त नहीं करते और इसीलिए उन्हें सत्य या असत्य नहीं माना जा सकता।

MAADHYAM IAS

इकाई 11 नीतिशास्त्रीय प्रकृतिवाद और निर्प्रकृतिवाद

रूपरेखा

11.0 उद्देश्य

11.1 परिचय

11.2 नीतिशास्त्रीय प्रकृतिवाद

11.3 नीतिशास्त्रीय निर्प्रकृतिवाद

11.4 सारांश

11.5 कुंजी शब्द

11.6 अन्य सहायक अध्ययन–सामग्री एवं सन्दर्भ

11.7 बोध–प्रश्नों के उत्तर

11.0 उद्देश्य

इस इकाई का उद्देश्य है,

- अधिनीतिशास्त्र के सिद्धांतो के रूप में नीतिशास्त्रीय प्रकृतिवाद और नीतिशास्त्रीय निर्प्रकृतिवाद की व्याख्या करना,
- उनके बीच एक महत्वपूर्ण भेद को चिन्हित करना,
- यह दिखाना कि नीतिशास्त्रीय प्रकृतिवाद और नीतिशास्त्रीय निर्प्रकृतिवाद अधिनीतिशास्त्र के निम्न प्रश्नों को किस प्रकार समझते हैं – क्या कोई नैतिक तथ्य होते है? यदि नैतिक तथ्य है, तो उनका उद्‌गम क्या है? और यदि कोई नैतिक तथ्य है तो हमें उनका ज्ञान किस प्रकार होता है? जब लोग 'शुभ' और 'उचित' जैसे शब्दों का प्रयोग करते हैं तो उनका निश्चित आशय क्या है?

11.1 परिचय

नैतिक चिंतन हमारे जीवन का जीवनदायी आयाम है। अपने दैनिक जीवन में हम विभिन्न नैतिक प्रश्नों का सामना करते हैं जैसे – क्या हमारे कर्म उचित हैं या अनुचित? शुभ हैं या अशुभ? हमारे चरित्र के कुछ गुण सद्‌गुण हैं या अवगुण? और वो क्या है जो किसी कर्म को

शुभ या अशुभ, उचित या अनुचित बनाता है? इन अधिनीतिशास्त्रीय प्रश्नों के अधिनीतिशास्त्र के विभिन्न सिद्धांतों में अलग–अलग उत्तर मिलते हैं। अधिनीतिशास्त्रीय सिद्धांतों को मुख्यतरू दो शाखाओं में बांटा गया है – संज्ञानात्मक नीतिशास्त्र एवं असंज्ञानात्मक नीतिशास्त्र। संज्ञानात्मक नीतिशास्त्र के अनुसार नैतिक वाक्यों के द्वारा जिन तथ्यों को व्यक्त किया जाता है उनका सत्यता मूल्य होता है। इसलिए ये सत्य अथवा असत्य हो सकते हैं। वहीं दूसरी ओर असंज्ञानात्मक नीतिशास्त्र के अनुसार नैतिक वाक्य विश्वासों को अभिव्यक्त नहीं करते।

संज्ञानात्मक नीतिशास्त्र के अनुसार नैतिक भाषा के द्वारा हम जगत के स्वरूप के बारे में नैतिक तथ्यों को व्यक्त करते हैं। ये मानना कि किसी के प्राण लेना अनुचित है का अर्थ है कि हम ये मानते हैं कि वाक्य 'किसी के प्राण लेना अनुचित है' एक सत्य है। इस प्रकार, नैतिक भाषा का प्रयोग संसार का विवरण देने के लिए होता है, और इसलिए नैतिक वाक्य सत्य या असत्य हो सकते हैं। संज्ञानवादियों अनुसार, नैतिक कथन या वाक्य विवरणात्मक तथ्य प्रस्तुत करते हैं और इसीलिए उनकी सत्यता बाह्य जगत पर आधारित होती है। जब हमारा विवरण (नैतिक दावों या निर्णयों में उपस्थित विवरण) बाह्य जगत (बाह्य जगत में उपस्थित तथ्य) के अनुरूप ('यथा तथ्य', जो जैसा है उसका वैसा ही निरूपण) होता है तो हमारे नैतिक दावे या निर्णय सत्य होते हैं अन्यथा असत्य। नैतिक यथार्थवाद, व्यक्तिनिष्ठ नीतिशास्त्र एवं त्रुटि का सिद्धान्त संज्ञानात्मक नीतिशास्त्र के अन्तर्गत आने वाले विभिन्न सिद्धान्त है।

नैतिक यथार्थवाद या नैतिक वर्णनात्मक सिद्धान्त के अनुसार नैतिक कथन विश्वास को अभिव्यक्त करते हैं और ये कथन जगत के सन्दर्भ में एक मन से स्वतंत्र तथ्य हैं। वर्णनात्मक सिद्धान्त के अनुसार नैतिक गुण वास्तविक, वस्तुनिष्ठ गुण हैं जो कि नैतिक मूल्यांकन के उपयुक्त विषय हैं। ये नैतिक गुण जगत के विशुद्ध अंग हैं। नैतिक यथार्थवाद नैतिक गुणों और प्राकृतिक गुणों के बीच के सटीक सम्बन्ध को समझाने का प्रयास करता है। प्राकृतिक गुण वो गुण हैं जिन्हें हम इन्द्रिय अनुभव और वैज्ञानिक अन्वेषण द्वारा पहचानते हैं। ये दो अलग–अलग मतों की ओर ले जाता हैः नीतिशास्त्रीय प्रकृतिवाद और नीतिशास्त्रीय निर्प्रकृतिवाद ।

नीतिशास्त्रीय प्रकृतिवाद और नीतिशास्त्रीय निर्प्रकृतिवाद दोनों ही नैतिक यथार्थवाद के प्रकार हैं। नैतिक प्रकृतिवाद के अनुसार वस्तुनिष्ठ एवं प्राकृतिक नैतिक गुणों का अस्तित्व है और उन्हें अनुभव के द्वारा जाना जा सकता है। जबकि नीतिशास्त्रीय निर्प्रकृतिवाद के अनुसार नैतिक गुण प्राकृतिक गुणों से सर्वथा भिन्न हैं।

आगामी खण्डों में हम नीतिशास्त्रीय प्रकृतिवाद और नीतिशास्त्रीय निर्प्रकृतिवाद पर विस्तार में चर्चा करेंगे।

11.2 नीतिशास्त्रीय प्रकृतिवाद

नीतिशास्त्रीय प्रकृतिवादियों का मानना है कि प्राकृतिक नैतिक गुण और सम्बन्धों का अस्तित्व होता है। उनके अनुसार, नैतिक गुण जैसे शुभ, न्याय, उचित, इत्यादि प्राकृतिक हैं। अतरू प्रकृतिवादी नीतिशास्त्र के अनुसार, नैतिक वाक्यों का प्रयोग ऐसी प्रतिज्ञप्तियों (तर्क–वाक्यों; तार्किक कथनों) को व्यक्त करने के लिए होता है जो जगत की वास्तविक (सत्) और वस्तुनिष्ठ विशेषताओं की सहायता से सत्य बनते हैं। नीतिशास्त्रीय प्रकृतिवाद के अनुसार नैतिक मूल्य और नैतिक कर्तव्य जगत के विज्ञान आधारित, प्राकृतिक मत के अनुसार उचित है। "प्रमुख रूप से यह मानता है, (अ) कि नैतिक दावे जैसे मनुष्यों की अच्छाई व उनके चारित्रिक विशेषताएं और अन्य चीजें, जैसे हमारे कर्मों की उचितता या अनुचितता प्राकृतिक गुण हैं और ये उसी प्रकार के गुण हैं, जो वैज्ञानिक अध्ययन का विषय हैं और (ब) इनका अध्ययन/अन्वेषण उसी सामान्य प्रक्रिया द्वारा होना चाहिए जैसे कि (विज्ञान द्वारा) (प्राकृतिक) उन गुणों का।" वस्तुनिष्ठ होने के कारण नैतिक मूल्यों को भी ठीक उसी प्रकार जाना जा सकता है जैसे वैज्ञानिक तथ्यों को। नीतिशास्त्रीय प्रकृतिवादी ये मानते है कि नैतिक मत अंततः प्राकृतिक जगत के लक्षणों के बारे में हैं जो कि स्वयं वैज्ञानिक अध्ययन का विषय हैं और इसीलिए, वे नैतिक यथार्थवाद का समर्थन करते है जिसके अनुसार नैतिक दावे केवल संवेगात्मक कथन नहीं होते अपितु इनका सत्यता मूल्य होता है।

नीतिशास्त्रीय प्रकृतिवाद को अग्रलिखित मतों की समग्रता में समझा जा सकता हैः वस्तुनिष्ठ और मन से स्वतंत्र नैतिक तथ्यों का अस्तित्व है, नैतिक तथ्य प्राकृतिक तथ्य हैं; हम नैतिक दावों की सत्यता के बारे में वैसे ही जानते हैं जैसे प्राकृतिक विज्ञानों के दावों के बारे में, और हमारे नैतिक दावे प्राकृतिक विज्ञानों के विशिष्ट दावों के पर्याय हैं।

जॉन स्टुअर्ट मिल के उपयोगितावाद को बहुधा नीतिशास्त्रीय प्रकृतिवाद का एक उदाहरण कहा जाता है। उपयोगितावाद के सिद्धान्त के अनुसार कोई कर्म नैतिक रूप से शुभ है यदि वो अधिक से अधिक सुख का कारण है और अशुभ या अनुचित है, यदि वो सुख देने मे असफल अथवा दुखः का कारण है ।

बोध–प्रश्न I

ध्यातव्यः क) उत्तर हेतु दिये गये स्थान का प्रयोग कीजिए।

ख) अपने उत्तर का मिलान इकाई के अंत में दिये गये उत्तर से कीजिए।

1. नीतिशास्त्रीय प्रकृतिवाद को परिभाषित कीजिए।

.....

.....

.....

.....

11.3 नीतिशास्त्रीय निर्प्रकृतिवाद

नीतिशास्त्रीय निर्प्रकृतिवाद के अनुसार, नैतिक गुण और तथ्य प्राकृतिक गुणों और तथ्यों से भिन्न हैं। इसके अनुसार नैतिक वाक्य ऐसी प्रतिज्ञप्तियों को व्यक्त करते हैं जिनका सत्यता मूल्य होता है और इनकी सत्यता और असत्यता जगत के वस्तुनिष्ठ गुणों पर आधारित है जो कि मानव मन से स्वतंत्र है। नैतिक निर्प्रकृतिवाद का मानना है कि इन नैतिक गुणों को किन्हीं निर्नैतिक गुणों के रूप में परिभाषित/अपचयित नहीं किया जा सकता, जबकि नैतिक प्रकृतिवाद का मानना है कि नैतिक गुणों को निर्नैतिक गुणों या प्राकृतिक गुणों के रूप में परिभाषित या अपचयित किया जा सकता है

जी. ई. मूर निर्प्रकृतिवाद को मानने वाले प्रमुख दार्शनिक हैं। प्रिंसिपिया एथिका में जी. ई. मूर ने ये तर्क दिया है कि नैतिक गुणों को प्राकृतिक गुणों की तरह नहीं देखा जा सकता है। आम जीवन में (दैनन्दिन जीवन में), हम नैतिक गुणों (उदाहरण के लिए, शुभ या अच्छाई) को निर्नैतिक गुणों (उदाहरण के लिए, प्राकृतिक) से सह–सम्बन्धित करते हैं। लेकिन इसका तात्पर्य यह नहीं है कि नैतिक गुण और निर्नैतिक गुण प्रकृति में अभिन्न हैं। सामान्यतः, हम कहते हैं कि 'अ शुभ है', का तात्पर्य है 'अ सुख देता है।' अथवा 'अ सुखकारी है।' इस तरह हम शुभ और सुख को अभिन्न बनाते हैं। मूर कहते हैं कि शुभ (या अन्य कोई नैतिक गुण) को अन्य किसी भी गुण से अभिन्न नहीं माना जा सकता है। जब हम नैतिक गुण को प्राकृतिक गुणों के रूप में परिभाषित करने का प्रयास करते हैं, तब हम 'प्राकृतिक दोष' कर रहे होते हैं। जब किसी नैतिक गुण को परिभाषित करने का प्रयास किया जाता है लेकिन परिभाषित नहीं किया जा सकता है। तब यह प्रश्न पूछा जाना शेष रह जाता है कि 'शुभ (या अन्य कोई नैतिक गुण) क्या है?' मूर इस परिस्थिति को 'मुक्त प्रश्न युक्ति' कहते हैं।

बोध–प्रश्न II

ध्यातव्यः (अ) उत्तर हेतु दिये गये स्थान का प्रयोग कीजिए।

(ब) अपने उत्तर के मिलान इकाई के अंत में दिये गये उत्तर से कीजिए।

1. नीतिशास्त्रीय निर्प्रकृतिवाद को परिभाषित कीजिए।

.....

.....

.....

.....

11.3.1 जी. ई मूर का प्रकृतिवादी दोष

मूर के अनुसार शुभ (या अन्य किसी नैतिक गुण) की किसी भी प्राकृतिक या अप्राकृतिक गुण के रूप में व्याख्या करने का प्रयास सर्वथा दोषपूर्ण है। किसी भी प्राकृतिक गुण के रूप में शुभ की व्याख्या के प्रयास को मूर ने प्रकृतिवादी दोष का नाम दिया। उनके अनुसार शुभ या शुभता एक सरल प्रत्यय है और इसका विश्लेषण सम्भव नहीं है। शुभता के अंग नहीं हैं। इसलिए इसे अंगों के रूप में परिभाषित नहीं किया जा सकता है। मूर कहते हैं कि 'शुभ शुभ है', और इसे परिभाषित नहीं किया जा सकता है। नैतिक तथ्यों का अस्तित्व होता है जैसे X शुभ है, यह एक नैतिक तथ्य है कि यह है। मूर कहते हैं,

> ये सत्य हो सकता है कि वे सभी वस्तुएं जो शुभ हैं वे अन्य कुछ भी हों, ठीक उसी प्रकार जैसे यह सत्य है कि सभी पीली वस्तुएं प्रकाश में निश्चित तरंगो को पैदा करती हैं। और यह तथ्य है, कि नीतिशास्त्र का लक्ष्य यह जानना है कि सभी वस्तुओं में अन्य कौन से गुण हैं जो शुभ हैं। परन्तु अनेक दार्शनिकों ने ये समझा है कि जब हम इन अन्य गुणों की बात कहते हैं तो हम इनके माध्यम से शुभ को ही परिभाषित कर रहे होते हैंय कि ये गुण "अन्य" न होकर, परमतः और समग्र रूप में शुभ के समान। ये विचार मेरे अनुसार प्राकृतिक दोष है और मैं इसका खंडन करता हूँ। (मूर, *प्रिंसिपिया एथिका*, खण्ड 10.3)

MAADHYAM IAS

मूर के लिए, 'शुभ' एक सरल, अपरिभाष्य और निर्प्राकृतिक गुण है। उदाहरण के लिए, पीला एक सरल, प्राकृतिक गुण है। आप पीले से अनभिज्ञ व्यक्ति को पीला क्या है इसकी व्याख्या नहीं कर सकते हैं। पीला संसार के हमारे दृश्य–अनुभव का हिस्सा है। मूर के शब्दों में,

> हम इसे (पीला) को, इसकी भौतिक समतुल्यता के वर्णन द्वारा परिभाषित करने का प्रयास कर सकते हैं; हम कह सकते हैं इसे देखने के लिए किस प्रकार की प्रकाश–तरंगदैर्ध्य की आवश्यकता सामान्य नेत्र को उद्दीप्त करने में है। लेकिन एक क्षण का विचार भी यह दिखाने के लिए पर्याप्त है कि ये प्रकाश– तरंगदैर्ध्य स्वयं में पीला नहीं हैं। ये वो नहीं है, जो हम देखते हैं। वास्तव में, हम उनका अस्तित्व कभी नहीं जान सकते हैं, बशर्ते हम भिन्न–भिन्न रंगों के मध्य उपस्थित विशेषताओं की भिन्नता को जानते हों। अधिक से अधिक हम यह कह सकते हैं कि ये तरंगदैर्ध्य (प्रकाश–कम्पन) वह हैं जो दिक में उस पीला से संवादित हैं जिस पीले को हम वास्तव में देखते हैं। (मूर, *प्रिंसिपिया एथिका*, खण्ड 10.2)

इसी तरह, हम 'शुभ' अथवा 'शुभता' को परिभाषित नहीं कर सकते हैंय इसे केवल (शुभता के कृत्यों में) दर्शाया या दिखाया जा सकता है।

11.3.2 मुक्त प्रश्न युक्ति (ऑपिन क्वेश्चन आर्ग्युमेन्ट)

मूर ने शुभ की निर्प्राकृतिक परिभाषा के समर्थन में 'मुक्त प्रश्न युक्ति' दिया था। शुभ के अपरिभाष्य होने के सन्दर्भ में उनके विचारों को मुक्त प्रश्न युक्ति के द्वारा समझा जा सकता है। इस तर्क के अनुसार क्या शुभ की किसी प्राकृतिक गुण या गुणों के समूह के सन्दर्भ में व्याख्या दी जा सकती है, यह एक साम्प्रत्ययिक तौर पर खुला प्रश्न है। मान लीजिये कोई शुभ को सुख के रूप में परिभाषित करता है। ये सत्य हो सकता है कि सुख अपने आप में शुभ वस्तु हो। परन्तु मूर के अनुसार ये फिर भी एक वास्तविक प्रश्न है, जिसका उत्तर वांछनीय है, कि क्या शुभ वही है जो सुख है। यदि ये परिभाषा की बात होती, अर्थात् यदि शुभ और सुख समानार्थी शब्द होते क्योंकि वे पारिभाषिक समतुल्य हैं, तो कोई खुला प्रश्न ही नहीं होता। शब्दों के अर्थ द्वारा ही समस्या का हल हो जाता। मूर की समस्या ये थी कि यदि एक स्वंयसिद्ध मूल्य (शुभ) का विश्लेषण निर्नैतिक (नॉन–मॉरल) पदों में किया जा सके, तब शुभ अपने आप में निर्नैतिक होकर रह जायेगा। परन्तु शुभ वह है जो वह है, कुछ अन्य नही।

मान लीजिए हम शुभ को 'अ' के रूप में परिभाषित करते हैं। हम अ पर अलग – अलग गुणों से आरोपित कर सकते हैं जो कि इसपे निर्भर करेगा कि हमारे अनुसार शुभ क्या है। यदि "अ" "सुखद एवं वांछनीय है" और हम ये प्रश्न करें कि "क्या जो सुखद और वांछनीय है, वह सुखद और वांछनीय है?" तो हम कोई खुला प्रश्न नहीं कर रहे। पर जब हम पूछते हैं कि "क्या जो सुखद और वांछनीय है वह शुभ भी है?" तो हम एक खुला प्रश्न पूछते हैं। ऐसा भी संभव है कि वे सभी वस्तुएं जो 'अ' हैं, शुभ हों। पर इसका अर्थ यह नही है की "अ" एवं "शुभ" एक ही है या समानार्थी है। यदि शुभ का अर्थ सुख है तो ये पूछना निरर्थक होगा कि 'क्या सुख शुभ है?' ये पूछना ऐसा ही होगा जैसे 'क्या सुख सुख है?' यह वास्तविक प्रश्न नहीं है (इसका उत्तर 'हाँ' ही हो सकता है)। परन्तु 'क्या सुख शुभ है?' एक वास्तविक प्रश्न है – जिसका अर्थ हाँ या ना दोनो में से कुछ भी हो सकता है। अतः शुभ सुख या किसी अन्य गुण से अभिन्न नहीं हो सकता है।

अब, कोई यह पूछ सकता है कि क्या कोई वस्तु है जिसमें शुभत्व का गुण है? इस अर्थ में हम कह सकते हैं कि सुख शुभ है। परन्तु ऐसा कहने का अर्थ है कि हम यहाँ दो भिन्न चीजों की बात कर रहे है ना कि एक (एक तो सुख और दूसरी शुभ) उदाहरण के लिए, आप अपनी लम्बाई या वजन से अभिन्न नहीं हैं।

इस प्रकार मूर ने ये स्थापित किया कि नैतिक गुण प्राकृतिक गुणों से अभिन्न नहीं हैं। उनका मानना है कि नैतिक मूल्यों का अस्तित्व निर्नैतिक गुणों पर निर्भर करता है। कोई भी चीज शुभ है क्योंकि उसमें शुभ बनाने वाले गुण है। यदि किसी वस्तु में वो गुण विशेष है तो निश्चय ही शुभ होगी। परन्तु शुभ के प्रत्यय को किसी निर्नैतिक (अथवा किसी अन्य नैतिक गुण) गुण में

MADHYAM IAS

अपचयित नहीं किया जा सकता है। दयालुता, सज्जनता, विवेकशील और न्यायप्रिय होना किसी व्यक्ति में पाये जाने वाले नैतिक गुण हैं। परन्तु शुभ इनमें से किसी का भी समानार्थी नहीं है और ना ही शुभ की परिभाषा इन गुणों के माध्यम से दी जा सकती है। जब भी हम 'शुभ' की परिभाषा, मान लीजिए 'अ' के रूप में करते हैं, तब यह प्रश्न शेष रह जाता है कि, 'क्या अ वास्तव में शुभ है?' मूर इसे 'मुक्त या खुला प्रश्न युक्ति' कहते हैं।

11.3.3 अंतः प्रज्ञावाद

अंतः प्रज्ञावाद निर्प्राकृतिक नीतिशास्त्र का एक प्रकार है। यह अग्रलिखित प्रश्नों का उत्तर देने का प्रयास करता है कि – यदि नैतिक गुण प्राकृतिक गुणों से भिन्न हैं तो हमें उनका बोध कैसे होता है? हम ये कैसे जानते है कि शुभ क्या है या अशुभ क्या है? इस सिद्धान्त के अनुसार हमें नैतिक गुणों का ज्ञान अन्तःप्रज्ञा द्वारा होता है। परंतु ये अतः प्रज्ञा या सहज बोध क्या है और हमें कैसे पता चलता है कि ये सत्य है? क्या हमारे पास नैतिक बोध के लिये कोई विशेष भाग है? मूर इन प्रश्नों को अनुत्तरित छोड़ देते हैंः "जब मैं इन कथनों को सहज बोध कहता हूँ, तो केवल ये कहना चाहता हूँ कि इनका प्रमाणीकरण सम्भव नहीं है। मैं इस बारे में कि, इनके बारे में हमारी चेतना के ढंग या उद्‌गम के बारे में मैं कोई निहितार्थ नहीं रखता।" (प्रिंसिपिया एथिका, अध्याय प्रथम)। उनका तर्क है कि ये कथन विश्लेषणात्मक रूप से सत्य नहीं हैं और ना ही हम इन्हें आनुभविक परीक्षण द्वारा जान सकते हैं। अतः ये संश्लेषणात्मक प्रागानुभविक ज्ञान (संश्लेषणात्मक यानि नया ज्ञान, प्रागानुभविक यानि हमारे अनुभव के पूर्व) का ही प्रकार है। मूर अन्तः प्रज्ञा को 'स्वयं–सिद्ध' प्रतिज्ञप्तियों के समानार्थी मानते हैं, क्योंकि शुभ के बारे में सत्य और असत्य के दावे की व्याख्या इस दावे को स्वीकारके ही की जा सकती है।

कोई इन स्वयं–सिद्ध दावों को सीधे ग्रहण कर सकता है क्योंकि ये स्वयं की सम्भाव्यता से ही सिद्ध हैं। हम इन दावों का क्रमशः विकास करते हैं, इसलिए यह नहीं कहा जा सकता है कि सभी व्यक्ति सदा इसकी सत्यता से परिचित होते हैं। इन्हें जानने के लिए इन मुद्दों का स्पष्ट और विचारपूर्वक बोध आवश्यक है। ये नैतिक अन्तःप्रज्ञा स्वयः–सिद्ध हैं का तात्पर्य है कि इन्हें इन्द्रियों के द्वारा नहीं जाना जा सकता है। हमारे पास स्वयं–सिद्ध सत्य हैं जैसे गणित के सत्यय नैतिक अन्तःप्रज्ञा, अनिवार्य सत्यों की तरह स्वयं–सिद्ध है। अतः अंतः प्रज्ञावाद के अनुसार ये कहना आवश्यक नही है कि मानव बुद्धि मे अंतरू प्रज्ञा कि एक विशिष्ट शाखा है जो किसी परालौकिक शक्ति के समान सहज ही ये जान लेती है की कोई भी वस्तु या कार्य शुभ है या नहीं। यह केवल यह वर्णित करता है कि कुछ नैतिक निर्णय स्वयं–सिद्ध और संश्लेषणात्मक होते हैं।

बोध–प्रश्न III

MAAPHYAM IAS

ध्यातव्यः क) उत्तर हेतु दिये गये स्थान का प्रयोग कीजिए।

ख) अपने उत्तर का मिलान इकाई के अंत में दिये गये उत्तर से कीजिए।

1. प्रकृतिवादी दोष क्या है?

.....

.....

.....

.....

2. जी. ई. मूर के अनुसार 'शुभ' के प्रत्यय की व्याख्या दीजिये।

.....

.....

.....

.....

11.4 सारांश

नीतिशास्त्रीय प्रकृतिवाद और निर्प्रकृतिवाद नैतिक यथार्थवाद के प्रकार हैं जो कि संज्ञानात्मक नीतिशास्त्र के अन्तर्गत आता है। नीतिशास्त्रीय प्रकृतिवाद के अनुसार नैतिक गुण जैसे शुभ, न्याय, उचित आदि प्राकृतिक गुण हैं। इनके अनुसार नैतिक गुणों और प्राकृतिक गुणों में कोई भेद नहीं है। इसके विपरीत, नीतिशास्त्रीय निर्प्रकृतिवाद के अनुसार नैतिक गुण प्राकृतिक गुणों के समान नहीं हैं।

11.5 कुंजी शब्द

दोषः इसका अर्थ है किसी प्रकार की त्रुटि या भ्रम की संरचना । इस इकाई इसका प्रयोग ये बताने के लिए किया गया है कि नैतिक गुणों को प्राकृतिक गुणों के समान मानने वाले तर्क एक भ्रम रचते हैं।

वस्तुनिष्ठः वो जो बाह्य जगत में स्थित है और इन्द्रियों द्वारा जाना जा सकता है। ये विज्ञान की विषय वस्तु हैं क्योंकि विज्ञान जगत में स्थित प्राकृतिक तथ्यों का अध्ययन करता है।

11.6 अन्य सहायक अध्ययन–सामग्री एवं सन्दर्भ

कॉप, डेविड. "व्हाई नेचुरलिज्म?". एथिकल थ्योरी एण्ड मॉरल प्रैक्टिस, 6/2, पेपर प्रेजेन्टिड टू दि एनुअल कॉन्फरेन्स ऑफ द ब्रिटिश सोसाईटी फॉर एथिकल थ्योरी, रीडिंग, 25–26, अप्रैल 2002 (जून, 2003), पृ. 179–200.

फिशर, एंड्र्यु. *मेटाएथिक्सः एन इंट्रोडक्शन.* न्यू यॉर्कः रूटलेज, 2011.

मूर, जी. ई. *प्रिंसिपिया एथिका.* कैम्ब्रिजः कैम्ब्रिज युनिवर्सिटी प्रेस, 1903.

जैकब्स, जॉनाथन. *डायमेन्शन ऑफ मॉरल थ्योरीः एन इंट्रोडक्शन टू मेटाएथिक्स एण्ड मॉरल साय्कोलॉजी.* ऑक्सफोर्डः ब्लैक्वेल पब्लिशिंग, 2002.

कॉप, डेविड (एडि.). *द ऑक्सफोर्ड हैंडबुक ऑफ एथिकल थ्योरी.* न्यू यॉर्कः ऑक्सफोर्ड युनिवर्सिटी प्रेस, 2006.

11.7 बोध–प्रश्नों के उत्तर

बोध–प्रश्न I

1. नीतिशास्त्रीय प्रकृतिवाद नैतिक यथार्थवाद का एक प्रकार है जो कि नैतिक संज्ञानवाद के अन्तर्गत आता है। इसके अनुसार नैतिक गुण व सम्बन्ध प्राकृतिक होते हैं। नीतिशास्त्रीय प्रकृतिवाद के अनुसार नैतिक वाक्य ऐसे कथनों को व्यक्त करते हैं जिनकी सत्यता मानव मत से स्वतंत्र, बाह्य जगत के वस्तुनिष्ठ गुणों पर निर्भर करती है।

MAADHYAM IAS
'way to achieve your dream'

बोध–प्रश्न II

1. नीतिशास्त्रीय निर्प्रकृतिवाद के अनुसार नैतिक गुण व तथ्य प्राकृतिक गुणों एवं तथ्यों से सर्वथा भिन्न हैं। इसके अनुसार नैतिक वाक्य ऐसी प्रतिज्ञप्तियों को व्यक्त करते हैं जिनका सत्यता मूल्य होता है और इनकी सत्यता और असत्यता जगत के वस्तुनिष्ठ गुणों पर आधारित है जो कि मानव मन से स्वतंत्र है, परन्तु जगत के ये नैतिक लक्षण किसी भी निर्प्राकृतिक गुण में अपचयित नहीं किए जा सकते।

बोध–प्रश्न III

1. जी.ई. मूर ने नीतिशास्त्रीय प्रकृतिवाद की आलोचना में प्रकृतिवादी दोष को प्रस्तावित किया। मूर के अनुसार 'शुभ' को किसी भी प्राकृतिक गुण के समानार्थी मानना प्राकृतिक दोष है।

2. जी. ई. मूर के अनुसार शुभ एक सरल, अपरिभाष्य, निर्प्राकृतिक गुण है । उन्होंने इसकी तुलना पीले रंग से की। पीला एक सरल प्रत्यय है और जिसने कभी ये रंग ना देखा हो

उसको इसे समझ पाना सम्भव नहीं है। इसी प्रकार 'शुभ' को परिभाषित नही किया जा सकता केवल उसको दिखाया या प्रदर्शित किया जा सकता है।

MAADHYAM IAS
'way to achieve your dream'

इकाई 12 विषयिनिष्ठवाद : डेविड ह्यूम

रूपरेखा

12.0 उद्देश्य

12.1 परिचय

12.2 परिभाषा

12.3 विभिन्न प्रकार के नैतिक विषयिनिष्ठवाद

12.4 डेविड ह्यूम का विषयिनिष्ठवाद

12.5 सारांश

12.6 कुंजी शब्द

12.7 अन्य सहायक अध्ययन–सामग्री एवं सन्दर्भ

12.8 बोध–प्रश्नों के उत्तर

12.0 उद्देश्य

MAADHYAM IAS
'way to achieve your dream'

प्रस्तुत इकाई का उद्देश्य है,

- नीतिशास्त्र के सन्दर्भ में विषयिनिष्ठवाद के अर्थ और इसकी पूर्वमान्यताओं को समझना,
- विषयिनिष्ठवाद के विभिन्न प्रकारों की व्याख्या करना,
- डेविड ह्यूम के विषयिनिष्ठवादी अवधारणा को समझना।

12.1 परिचय

* सुश्री लिजाश्री हजारिका, विद्यावाचस्पति शोधक, दर्शन केन्द्र, जवाहरलाल नेहरू विश्वविद्यालय, दिल्ली, अनुवादक– डॉ. अमित कुमार प्रधान, सहायक प्राध्यापक, दर्शन विभाग, रामजस महाविद्यालय, दिल्ली

विषयिनिष्ठवाद या आत्मनिष्ठवाद (सब्जेक्टिविज्म) वह सिद्धान्त है जिसका मानना है कि ज्ञान मात्र विषयिनिष्ठ है और तत्सम्बन्धी (संवादित) बाह्य अथवा वस्तुनिष्ठ सत्य नहीं होता है। इस सिद्धान्त के अनुसार हमारी मनोदशाएँ या मानसिक क्रियाकलाप ही जीवन के असंदिग्ध (प्रश्नों से परे) तथ्य हैं। दो प्रकार के विषयिनिष्ठवाद हैं– तत्त्वमीमांसीय विषयिनिष्ठवाद और नैतिक विषयिनिष्ठवाद। तत्त्वमीमांसीय विषयिनिष्ठवाद का मानना है कि सत् वही है जिसको कर्ता सत् के रूप में देखता है। और विषयी के प्रत्यक्ष से स्वतन्त्र कोई अन्य सत्ता (सत्) नहीं है। नैतिक विषयिनिष्ठवाद के अनुसार, हम नैतिक कथनों को तथ्यात्मक कथनों में समानयित (अपचयित) किया जा सकता है। वे तथ्यात्मक कथन "व्यक्तियों की अभिवृत्तियों और किसी संस्कृति या समाज या व्यक्तियों के समूह की रूढ़ियों बारे में" हो सकते हैं। यह इकाई नैतिक विषयिनिष्ठवाद की विशद चर्चा करेगी। जब व्यक्ति बहुधा नैतिक मानकों की चर्चा करते हैं, तो वे मुख्यतः उसकी उत्पत्ति से सरोकार रखते हैं अर्थात् नैतिक मानक कहाँ से निःसृत होते हैं या वह लोगों पर कैसे लागू होते हैं? क्या नैतिक मानदण्ड जगत से सम्बन्ध रखते हैं, क्या वह व्यक्तियों से स्वतन्त्र हैं, या उनका स्रोत स्वयं व्यक्ति है? क्या नैतिक मूल्य वस्तुनिष्ठ हैं अथवा विषयिनिष्ठ? अधिनीतिशास्त्र का अध्ययन करते समय व्यक्ति विषय के अध्ययन हेतु किये गए अकादमिक विभाजनों से भ्रमित हो जाता है। अधिनीतिशास्त्र का अध्ययन करते समय हमको यह जेहन में रखना चाहिए कि अधिनीतिशास्त्र की विषय–वस्तु नैतिक दावों की उत्पत्ति नहीं, अपितु उनकी स्थिति है। इन प्रश्नों का उत्तर देते समय अधिनीतिशास्त्र नैतिक यथार्थवाद (कभी कभी इसे नैतिक वस्तुनिष्ठवाद या निरपेक्षवाद या सार्वभौमवाद कहा जाता है) और नैतिक प्रति–यथार्थवाद या नैतिक अयथार्थवाद (कभी कभी इसे नैतिक गैर–वस्तुनिष्ठवाद या नैतिक सापेक्षवाद कहा जाता है) में विभक्त हो जाता है। नैतिक प्रति–यथार्थवाद अधिनीतिशास्त्र का एक प्रकार है जो मानता है कि मानवीय मनस से स्वतन्त्र कोई नैतिक तथ्य नहीं होते हैं। नैतिकता वस्तुनिष्ठ नहीं है। नैतिक निर्णय अथवा मूल्यांकन करने वाले निर्णय स्पष्टतः मनस के आविष्कार हैं। नैतिक मानक व्यक्तियों की रुचियों, भावनाओं तथा अभिवृत्तियों पर निर्भर हैं । नैतिक प्रति–यथार्थवाद का मानना है कि नैतिक गुणधर्म मनस पर निर्भर हैं। यह सम्मिलित कर सकता है कि, (1) नैतिक गुणधर्म के अस्तित्व का पूर्ण निराकरण (2) नैतिक गुणधर्म अस्तित्ववान हैं किन्तु उनका अस्तित्व मनस पर निर्भर है। निम्नांकित रेखाचित्र नैतिक प्रति–यथार्थवाद के विभिन्न प्रकारों को दर्शाता है –

MADHYAM IAS

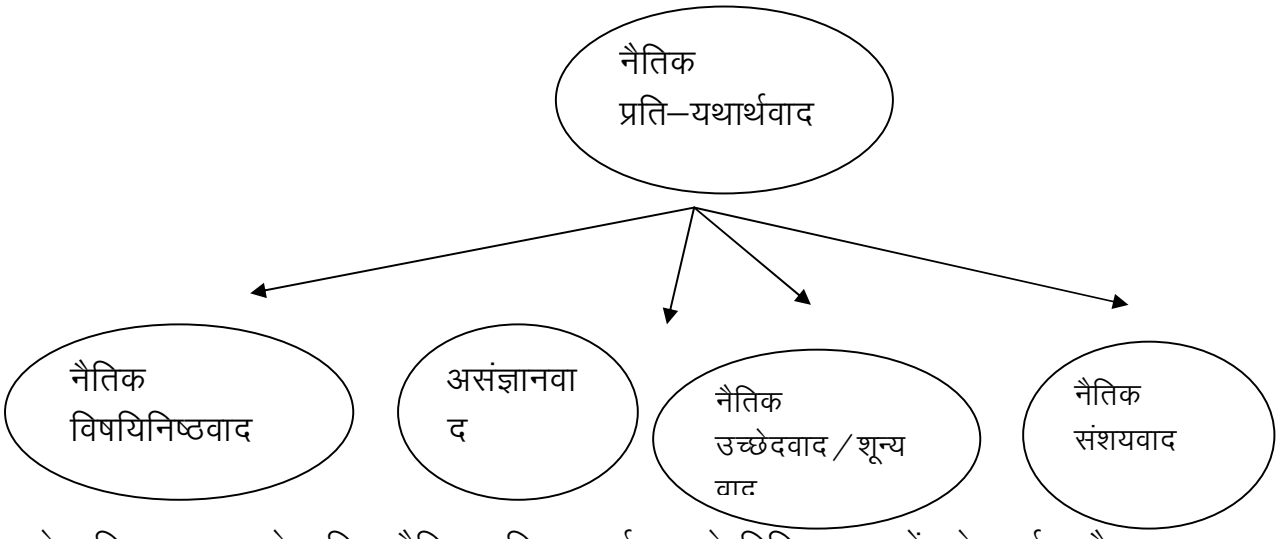

रेखाचित्र 1. यह रेखाचित्र नैतिक प्रति–यथार्थवाद के विभिन्न प्रकारों को दर्शाता है।

नैतिक विषयिनिष्ठवाद नैतिक प्रति–यथार्थवाद के विभिन्न प्रकारों में से एक है जिसका तर्क है कि नैतिक कथन विषयिनिष्ठ होते हैं। नैतिक विषयिनिष्ठवाद स्वीकार करता है कि नैतिक तथ्य अस्तित्ववान होते हैं परन्तु इसके यह यह भी मानता है कि नैतिक तथ्य किसी प्रकार से मानसिक क्रियाओं द्वारा निर्मित एवं निर्दिष्ट होते हैं। जगत में कुछ भी शुभ या अशुभ नहीं है वरन हमारा चिंतन शुभत्व एवं अशुभत्व के गुणों का आरोपण करता है। मोटे तौर पर, नैतिक विषयिनिष्ठवाद नैतिक सापेक्षतावाद का एक रूप है। नैतिक सापेक्षतावाद का मानना है कि नैतिक विश्वास एक विशिष्ट समाज अथवा व्यक्ति द्वारा स्वीकृत मानकों के सापेक्ष होता है। नैतिक सापेक्षतावाद मूल्यों के किसी वस्तुनिष्ठ नैतिक आधार अथवा किसी प्रकार के सर्वकालिक मूल्य में विश्वास नहीं रखता है। यह इस विचार को नकार देता है कि कोई एक सार्वभौमिक रूप से वैध नैतिकता है जिसे वैध नैतिक तर्कणा द्वारा अन्वेषित किया जा सके। नैतिक सापेक्षतावाद एक सिद्धान्त है जिसका कहना है कि कोई सार्वभौमिक (और वतुनिष्ठ) रूप से वैध मानक नहीं होते हैं, जिसके आधार पर किसी नैतिक कृत्य का मूल्यांकन किया जा सके। नैतिक मानकों की वैधता अग्रलिखित दो बातों पर निर्भर करती है, (1) सांस्कृतिक स्वीकार्यता (लोकरीतिवाद) – नैतिक लोकरीतिवाद के अनुसार, नैतिक मानकों की वैधता एक विशिष्ट सांस्कृतिक समूह में स्वीकार्यता पर निर्भर करती है। (2) व्यक्तिगत चयन या प्रतिबद्धता (विषयिनिष्ठवाद) – विषयिनिष्ठवाद के अनुसार, नैतिक मानकों की वैधता व्यक्ति के क्रियाकलापों में स्वीकार्यता पर। हमें नैतिक विषयिनिष्ठवाद एवं नैतिक सापेक्षवाद को एक समान नहीं समझना चाहिए। पद्धति में दोनों भिन्न हैं। नैतिक विषयिनिष्ठवादियों के लिए, कर्म का नैतिक रूप से उचित या अनुचित होना वैयक्तिक–विषयी द्वारा उस कर्म के अनुमोदन या अननुमोदन पर निर्भर करता है। नैतिक सापेक्षवादियों के लिए, कर्म का नैतिक रूप से उचित या अनुचित होना व्यक्ति अथवा संस्कृति के अनुमोदन या अननुमोदन पर निर्भर करता है।

MADHYAM IAS

12.2 परिभाषा

नैतिक विषयिनिष्ठवाद एक अधिनैतिक सिद्धान्त है जिसका मानना है की नैतिक मानक अथवा सत्य विषयिनिष्ठ नैतिक निर्णयों को बनाने वाले वक्ता के मतों और भावनाओं पर निर्भर करते हैं। यह सिद्धान्त नैतिक वस्तुवाद का विरोधी है। नैतिक वस्तुवाद का मानना है की नैतिक निर्णयों की सत्यता अथवा असत्यता किसी व्यक्ति या व्यक्तियों के समूह के विश्वासों अथवा भावनाओं पर निर्भर नहीं करती है। उदाहरणतः, झूठ बोलना नैतिक रूप से अनुचित है। कुछ कर्मों का उचित या अनुचित होना, मानवीय मत से स्वतन्त्र होता है। नैतिक विषयिनिष्ठवाद का मत है कि मूल्य महत्वपूर्ण रूप से एक व्यक्ति की आपातिक मनोवैज्ञानिक दशाओं पर निर्भर करता है। यह तर्क करता है कि नैतिक मूल्यांकन विषयिनिष्ठ नैतिक निर्णयों पर स्वतन्त्र रूप से निर्भर करता है, न कि अन्तः–विषयिनिष्ठ वस्तुनिष्ठ नैतिक निर्णयों पर। नैतिक विषयिनिष्ठवादियों के लिए, नैतिक तथ्यों का अस्तित्व नहीं है, वरन कर्मों के प्रति व्यक्तियों की अभिवृत्तियां होती हैं। यहाँ प्रश्न उठता है कि हम कब कह सकते हैं कि नैतिक निर्णय विषयिनिष्ठ है? एक नैतिक निर्णय विषयिनिष्ठ होगा यदि उसकी सत्यता वक्ता की अभिवृत्तियों, विश्वासों एवं प्राथमिकताओं के अनुरूप हो। उदाहरणतः, अ का एक बच्चा है। जब वह डिपार्टमेंटल स्टोर में था तो बच्चे ने शीतल पेय की एक बोतल उठा ली और उसे फर्श पर गिरा दिया। अ ने उसे अपने घुटनों पर झुकाया और उसकी पीठ पर ठीक से पिटाई की। एक महिला, जो यह देख रही थी, ने अ पर चीखते हुए हस्तक्षेप किया कि अपने बच्चे को पीटना भयावह है। अ का प्रत्युत्तर था, "आपको मुझे यह बताने का कोई अधिकार नहीं है कि मेरे अपने बच्चे के सन्दर्भ में क्या उचित है और क्या अनुचित।" इससे उसका आशय था कि सिर्फ अ ही निर्धारित कर सकता है कि क्या उचित है और क्या अनुचित। नैतिक विषयिनिष्ठवाद का मानना है कि हमारे समस्त नैतिक निर्णय हमारे द्वारा चयनित नैतिक मानकों के सापेक्ष होते हैं। मेरे लिए नैतिक रूप से क्या उचित है वह इस बात पर निर्भर करता है कि नैतिक मानकों के सन्दर्भ में मेरी मान्यता (या वरीयता या चुनाव) क्या है। उदाहरण के तौर पर गर्भपात (भ्रूणहत्या) को मैं अपनी संस्कृति के अनुसार नैतिक रूप से स्वीकार्य मान सकता हूँ। इसी प्रकार आप गर्भपात को अपनी संस्कृति के अनुसार नैतिक रूप से अस्वीकार्य मान सकते हैं। नैतिक विषयिनिष्ठवाद का मानना है कि कोई वस्तुनिष्ठ (और सार्वभौमिक) नैतिक गुण या धर्म नहीं होते हैं और नैतिक कथन दरअसल इच्छाधीन या स्वेच्छाचारी होते हैं क्योंकि वह कूटस्थ या अपरिवर्तनीय सत्यों को अभिव्यक्त नहीं करते हैं। नैतिक कथनों का सत्यता–मूल्य प्रेक्षक की अभिवृत्तियों अथवा मान्यताओं से निर्धारित होता है। अतः एक कथन को नैतिक रूप से उचित मानने का आशय मात्र इतना है कि इस रूचि के लोग उसका अनुमोदन करते हैं। सारभूत रूप से इसका मानना है कि नीतिशास्त्र में सत्यापनीयता एवं प्रमाणीकरण विषयी से ही आता है। नैतिक विषयिनिष्ठवादी मानते हैं कि कोई वस्तुनिष्ठ नैतिक मानक नहीं होते हैं। एक

MAADHYAM IAS

व्यक्ति जो दृष्टिकोण रखता है वही नैतिक मानकों का निर्धारक होता है। सामुदायिक अपील, ईश्वर अथवा व्यक्ति के दृष्टिकोण से इतर चीजें इत्यादि नैतिक मानकों का निर्धारण नहीं करती हैं। नीतिशास्त्र व्यक्ति के एक विशिष्ट दृष्टिकोण के सापेक्षिक है। वह व्यक्ति के मूल्यों का निर्णय नहीं करता वरन व्यक्ति का दृष्टिकोण उसके नैतिक परिप्रेक्ष्य का आधार होता है। कोई मूल्य दूसरे मूल्य से उच्चतर नहीं है क्योंकि प्रत्येक व्यक्ति को अपना दृष्टिकोण रखने का अधिकार है। इसका आशय यह है कि एक मूल्य के ऊपर दूसरे मूल्य को आरोपित नहीं किया जा सकता है। ज्यां जैक रूसो नैतिक विषयिनिष्ठवाद का समर्थन करते हैं। वे मानते हैं कि लोग यदि समाज द्वारा भ्रष्ट ना हों तो वह मूलतः अच्छे होते हैं और उचित कार्य करते हैं। वह 'हृदय के नियम' के समर्थक हैं। हृदय का नियम मानता है कि केवल हमारी अपनी भावनाएं ही बताती हैं कि क्या उचित है और क्या अनुचित नाकि समाज के अमूर्त सिद्धान्त।

एक नैतिक विषयिनिष्ठवादी का तर्क होगा कि कथन 'ब दुष्ट था' ब द्वारा किये गए कर्मों के प्रति एक घोर नापसंदगी अभिव्यक्त करता है परन्तु इससे यह निगमित नहीं होता है कि ब वस्तुतः दुष्ट था। दूसरा व्यक्ति जो इस कथन से नैतिक आधार पर पूर्णतः असहमत हो वह कोई बौद्धिक त्रुटि नहीं कर रहा है, वरन एक भिन्न अभिवृत्ति को अभिव्यक्त कर रहा है। वस्तुनिष्ठ नैतिक तथ्य नहीं होते हैं। नैतिक कथन एक विशिष्ट मुद्दे पर वक्ता द्वारा स्वीकृत अभिवृत्तियों सम्बन्धी तथ्यात्मक कथन हैं। अतः यदि कोई कहता है कि 'अहिंसा शुभ है' तो इसका आशय है कि वह इस मुद्दे पर अपनी अभिवृत्ति को प्रकट कर रहा है। इसका मानना है कि नैतिक कथन प्रतिज्ञप्तियां हो सकते हैं। नैतिक कथन सामाजिक या सांस्कृतिक नियमों अथवा वस्तुनिष्ठ या सार्वभौमिक सत्य के बजाय एक व्यक्ति की अभिवृत्तियों का वर्णन करते हैं। नैतिकता एक मत या विश्वास है जिसका तर्कों अथवा तथ्यों पर आधारित होना जरुरी नहीं है। इनकी मान्यता है कि हमारे नैतिक मत हमारी मनोवृत्तियों पर आधारित हैं, और इससे अधिक कुछ नहीं। वस्तुनिष्ठ रूप से कुछ भी उचित या अनुचित नहीं होता है। यह तथ्य है कि कुछ लोग समलिंगी होते हैं और कुछ विषमलिंगी परन्तु यह तथ्य नहीं है कि एक अच्छा है और दूसरा बुरा। किसी व्यक्ति का नैतिक रूप से उचित या अनुचित होना उसकी मनोवृत्ति पर निर्भर करता है। यह इस विचार की पुष्टि करता है कि कोई कर्म या वस्तु उचित या अनुचित नहीं हैं वरन हमारी भावनाओं की अभिव्यक्ति है। अतः हम किसी व्यक्ति के मत का उचित या अनुचित के रूप में निर्णय नहीं कर सकते हैं क्योंकि वह एक कर्ता का मत मात्र है।दृष्टान्ततः, धनार्जन के उद्देश्य से कोख का प्रयोग नैतिक रूप से स्वीकार्य हो सकता है और अस्वीकार्य भी हो सकता है। दोनों नैतिक निर्णय दो भिन्न मतों को अभिव्यक्त करते हैं जो किसी विशेष सन्दर्भ में दिए गए हैं। चूंकि ये दोनों केवल मत हैं अतः इनमें कोई विरोध नहीं है।

बोध–प्रश्न I

ध्यातव्यः क) उत्तर हेतु दिये गये रिक्त स्थान का प्रयोग कीजिए।

ख) अपने उत्तर का मिलान इकाई के अंत में दिये गये उत्तर से कीजिए।

1. नैतिक प्रति–यथार्थवाद या नैतिक अयथार्थवाद क्या है? नैतिक प्रति–यथार्थवाद के विभिन्न प्रकार क्या हैं?

.....

.....

.....

.....

12.3 विभिन्न प्रकार के नैतिक विषयिनिष्ठवाद

नैतिक विषयिनिष्ठवाद के चार प्रकार हैं। वे हैं–

(1) सरल विषयिनिष्ठवाद (Simple Subjectivism)– इस मत के अनुसार नैतिक कथन वस्तुनिष्ठ या सार्वभौमिक तथ्यों के बजाय भावनाओं, वरीयताओं या प्राथमिकताओं और मनोवृत्तियों को व्यक्त करते हैं। सरल विषयिनिष्ठवाद का तर्क है कि जब व्यक्ति नैतिक कथन करते हैं तो वह सम्बन्धित मुद्दे पर मात्र अपनी विषयिनिष्ठ भावनाओं को अभिव्यक्त कर रहे होते हैं। इसके अलावा एक सरल विषयिनिष्ठवादी का मानना होगा कि नैतिकता के बारे में हम जो कुछ कहते हैं वह उस मुद्दे पर हमारी भावनाओं की विवरणात्मक अभिव्यक्ति मात्र है। इस दृष्टिकोण के अनुसार नैतिकता सम्बन्धी कोई तथ्य नहीं है। अतः नैतिकता वस्तुनिष्ठ नहीं होती है वरन धारक पर निर्भर करती है। बतौर उदाहरण, जब एलेक्स कहता है कि विवाहेतर सम्बन्ध अनैतिक हैं तो वह मात्र अपनी अभिवृत्ति का वर्णन कर रहा है। वह मात्र इतना कह रहा है कि वह विवाहेतर सम्बन्धों के विचार को नकारता है। इसके विरोध में जॉन का मत कि विवाहेतर सम्बन्ध अनैतिक नहीं है, जॉन की अभिवृत्ति को बताता है। एक सरल विषयिनिष्ठवादी इन भिन्न दृष्टिकोणों को एक दूसरे से असहमत होता नहीं मानेगा। दोनों पक्षों के पास अपनी भावनाओं को रखने का अधिकार है अतः दोनों कथन सत्य हैं। सरल विषयिनिष्ठवाद मानता है कि मनुष्य अस्खलनीय हैं क्योंकि यह नैतिक असहमति के अस्तित्व को ही नकार देता है।

(2) वैयक्तिक विषयिनिष्ठवाद (Individualist Subjectivism)– इस मत का प्रतिपादन सर्वप्रथम प्रोटेगोरस ने किया। प्रोटागोरस कहते हैं कि मनुष्य ही सभी वस्तुओं का मापदण्ड है। यह स्वार्थवाद का एक प्रारूप है जिसका मानना है कि मनुष्य को मात्र अपनी स्वार्थसिद्धि करना चाहिए। नैतिक कथन वक्ता की अभिवृत्तियों के विवरण मात्र हैं। जब मैं कहता हूँ कि गर्भपात गलत है तो मेरा आशय और कुछ नहीं है बस इतना है कि मैं गर्भपात का अननुमोदन करता हूँ। ठीक वैसे ही जैसे X उचित/शुभ/स्वीकार्य है=मैं X का अनुमोदन

करता हूँ तथा x अनुचित/अशुभ/अस्वीकार्य है=मैं x का अननुमोदन करता हूँ। वैयक्तिक विषयिनिष्ठवाद बहुधा सम्वेगवादी सिद्धान्त से विभ्रमित कर दिया जाता है। सम्वेगवाद वह सिद्धान्त है जिसके अनुसार नैतिक कथन वक्ता की अभिवृत्तियों को अभिव्यक्त करता है। सम्वेगवादियों के अनुसार नैतिक कथन कोई विवरण नहीं देते हैं अतः कथन को सत्यता मूल्य प्रदान नहीं किया जा सकता, परन्तु वैयक्तिक विषयिनिष्ठवाद के अनुसार व्यक्ति द्वारा अभिव्यक्त विश्वासों एवं अभिवृत्तियों द्वारा नैतिक कथन विवरण देते हैं।

(3) आदर्श दृष्टा सिद्धान्त (Ideal Observer Theory)– आदर्श दृष्टा या प्रेक्षक सिद्धान्त मानता है कि नैतिक वाक्य कल्पित दृष्टा की अभिवृत्तियों के बारे में प्रतिज्ञप्तियों को अभिव्यक्त करते हैं। दूसरे शब्दों में, आदर्श दृष्टा सिद्धान्त का मानना है कि नैतिक निर्णयों को एक तटस्थ, बौद्धिक एवं (सम्भवतः) सभी सूचनाओं से विज्ञ अवलोकनकर्ता के वक्तव्य के रूप में व्याख्यायित करना चाहिए। इसका आशय है कि ख शुभ है क्योंकि आदर्श दृष्टा ख का अनुमोदन करता है। आदर्श दृष्टा सिद्धान्त का मुख्य विचार यह है कि नैतिक कथनों को निम्नलिखित उदाहरण के ढांचे में परिभाषित करना चाहिए –"क ख से बेहतर है" का आशय है कि यदि कोई सभी सूचनाओं से विज्ञ, जीवन्त कल्पनाशीलता से युक्त, तटस्थ एवं शांत–चित्त व्यक्ति हो तो वह क एवं ख में से क का चयन करेगा। आदर्श दृष्टा सिद्धान्त नैतिक निर्णयों की सत्यता को एक आदर्श दृष्टा के अनुमोदन अथवा अननुमोदन के सन्दर्भ में समझता है। रोड्रिक फर्थ ने सर्वप्रथम इस प्रश्न का उत्तर दिया कि क उचित है अथवा क शुभ है का आशय क्या है? एडम स्मिथ तथा डेविड ह्यूम आदर्श दृष्टा सिद्धान्त के पूर्वज थे। क उचित/शुभ/स्वीकार्य है = क एक आदर्श दृष्टा से अनुमोदित है। एक आदर्श दृष्टा वह है जो नैतिक निर्णय देने के लिए सर्वोत्कृष्ट स्थिति में है। या तो वह एक उत्तम मनुष्य है, कम पूर्वग्रहों वाला, सार्थक ब्योरों से विज्ञ और विवेकशील है या ईश्वर। नैतिक कथन एक विशिष्ट प्रकार के व्यक्तियों द्वारा निर्धारित होंगे। यह नैतिक तथ्यों को आकस्मिकता से बचाएगा। यह इस सिद्धान्त को सार्वभौमिकता प्रदान कर सकता है और नैतिक विषयिनिष्ठवाद के अन्य रूपों के विरुद्ध उठने वाली आपत्तियों से बचने में समर्थ हो सकता है।

MAADHYAM IAS
'way to achieve your dream'

(4) दैवीय समादेश सिद्धान्त (Divine Command Theory)– यह यह एक अधिनैतिक सिद्धान्त है जिसका प्रतिपादन है कि एक कर्म का नैतिक रूप से शुभ होना इस बात के समतुल्य है कि वह ईश्वर द्वारा समादेशित है। इस सिद्धान्त का मानना है कि नैतिकता ईश्वरीय निर्देश के द्वारा निर्धारित होती है और एक व्यक्ति ईश्वरीय निर्देशों का पालन करके ही नैतिक हो सकता है। मोटे तौर पर यह एक ऐसा मत है जिसमें नैतिकता ईश्वर पर निर्भर करती है और ईश्वरीय समादेशों का पालन करना नैतिक दायित्व बन जाता है। यहाँ यह दावा भी शामिल है कि नैतिकता अंततोगत्वा ईश्वरीय आदेशों पर आधारित है और ईश्वर द्वारा निर्देशित/वांछित कर्म ही नैतिक कर्म हैं। इस सिद्धान्त की विशिष्ट विषयवस्तु

धर्म–विशेष एवं दैवीय समादेश सिद्धान्त के मत–विशेष के अनुरूप परिवर्तित होती है। इस सिद्धान्त के अनेक समर्थक हैं यथा थॉमस एक्विनास, रोबर्ट एडम्स और फिलिप क्विन। हालाँकि इमान्युअल कांट, जॉन लॉक इत्यादि के दार्शनिक चिंतन ने इस सिद्धान्त को प्रभावित किया। इस सिद्धान्त की मान्यता है कि नैतिक सत्य ईश्वर से स्वतन्त्र नहीं है और नैतिकता दैवीय निर्देशनों के द्वारा निर्धारित होती है। इस सिद्धान्त का कठोर प्रारूप बताते हैं कि दैवीय समादेश ही एकमात्र कारण हैं जो शुभ कर्मों को नैतिक बनाते हैं, जबकि उदारवादी प्रारूप दैवीय निर्देशनों को बुद्धि विवेक के साथ एक महत्वपूर्ण अंगभूत मानते हैं। दैवीय समादेश सिद्धान्तकारों की मान्यता ही कि कुछ वस्तुनिष्ठ मानक हैं जो सबके लिए एक समान हैं और व्यक्तिगत विश्वासों से मुक्त हैं। यह नैतिक मानक सबके लिए सत्य हैं भले ही वह उनमें विश्वास रखते हों या नहीं। भले ही वह उन्हें जानते हों या नहीं। यह चरम नैतिक मानक ईश्वर के समादेश से अस्तित्ववान हैं। ईश्वर मात्र शुभ कर्मों हेतु समादेश करता है, वह कभी भी व्यक्ति को अशुभ कर्मों हेतु निर्देश नहीं देगा। ईश्वर सर्वशक्तिमान,सर्वज्ञ एवं सबसे प्रेम करने वाला है। ईश्वर ने एक मनुष्य के रूप में हमारे लिए जो शुभ है उसे करने का आदेश दिया है और उसके आदेश स्वतः ही नैतिक रूप से उचित हैं।

बोध प्रश्न II

ध्यातव्यः क) उत्तर हेतु दिये गये रिक्त स्थान का प्रयोग कीजिए।

ख) अपने उत्तर का मिलान इकाई के अंत में दिये गये उत्तर से कीजिए।

MAADHYAM IAS
'way to achieve your dream'

1. वैयक्तिक विषयिनिष्ठवाद क्या है?

.....

.....

.....

.....

2. नैतिक विषयिनिष्ठवाद के प्रति सम्भावित आपत्तियाँ क्या हैं?

.....

.....

.....

.....

12.4 डेविड ह्यूम का विषयिनिष्ठवादी मत

डेविड ह्यूम (1711–1776) एक स्कॉटिश इतिहासकार, अर्थशास्त्री एवं दार्शनिक थे। ह्यूम द्वारा नैतिकता की आधारशिला सम्बन्धी विवादों की परीक्षा उनकी दो महत्त्वपूर्ण पुस्तकों *ट्रीटाइज ऑफ ह्यूमन नेचर* एवं *एन इन्क्वारी कंसर्निंग द प्रिंसिपल्स ऑफ मॉरल्स* में निहित है। उन्होंने मानवीय मामलों में प्रकृतिवादी उपागम अपनाया। ह्यूम ने इस विचार को नकार दिया कि नैतिकता एवं राजनीति मानवीय आनन्द विषयक विवेकशील समझौते या करार पर आधारित हो सकती है। ह्यूम का नैतिक सिद्धान्त उनके अनुभववादी मनस के सिद्धान्त पर आधारित है। अपने अनुभववादी सिद्धान्त में वह 4 सिद्धान्तों का विधान करते हैं– (1) विवेक अकेले संकल्प का अभिप्रेरक नहीं हो सकता वरन वह भावावेशों का गुलाम है। (2) नैतिक सुभिन्नताएं या अन्तर विवेक से व्युत्पन्न नहीं होते हैं। (3) नैतिक सुभिन्नताएं नैतिक मनोभावों से व्युत्पन्न होती हैं; उस अवलोकनकर्ता की अनुमोदन या अननुमोदन की भावनाओं से, जो किसी कर्म या चरित्रगतलक्षण का चिन्तन–मनन करता है। (4) कुछ गुण या अवगुण प्राकृतिक होते हैं और कुछ कृत्रिम होते हैं, यथा– न्याय। उनका मानना था कि मानवीय बुद्धि–विवेक मूल्यों से सम्बन्धित प्रश्नों का उत्तर नहीं दे सकता है। शुभ, उचित, अशुभ जैसे प्रश्नों का कोई विवेक पूर्ण उत्तर नहीं है। उदाहरण के लिए उनका मानना था कि 'लोगों को किस प्रकार जीवनयापन करना चाहिए' विषयक प्रोटेस्टेंट एवं कैथोलिक मतभेद का निर्धारण मानवीय आनन्द के एक वस्तुनिष्ठ विवरण के सन्दर्भ में नहीं हो सकता और इसे बुद्धि के प्रयोग द्वारा नहीं जाना जा सकते। नैतिकता एवं न्याय हेतु एक सर्वशक्तिमान शासक की आवश्यकता नहीं है क्योंकि हमारी भावनाएं यदाकदा ही हमें दूसरों के सरोकारों की तरफ ले जाती हैं। अनेक दार्शनिकों का मानना है की विवेक हमारी क्रियाओं एवं प्रवृत्तियों को प्रशिक्षित कर सकता है परन्तु ह्यूम के अनुसार विवेक मात्र वस्तुओं के बीच के अंतर्सम्बन्धों को प्रकाशित करता है। वह यह नहीं बताता कि हमें क्या करना चाहिए। बुद्धि–विवेक ज्ञान का स्रोत हो सकता है परन्तु यह अभिप्रेरणाओं का स्रोत नहीं हो सकता है। सरल शब्दों में बुद्धि–विवेक हमें बताता है कि संसार कैसा है परन्तु वह यह नहीं बताता कि संसार कैसा होना चाहिए। ह्यूम हाब्स से इस बात पर सहमत हैं कि अभिप्रेरणाएँ सद्गुणों के निर्धारण में महत्वपूर्ण भूमिका अदा करतीं हैं लेकिन वह अभिप्रेरणाएँ स्वार्थ युक्त नहीं हैं। मनुष्य मुख्यतः स्वार्थी हो सकता है परन्तु उसके व्यवहार की सटीक समीक्षा उन स्थितियों को प्रकाशित करती है जहाँ यदि निजी हित को सार्वजनिक हित से अलग कर दिया जाए तो मनुष्य सार्वजनिक हित के कार्य सम्पादित करता है। उनका अवलोकन है कि हमारे नैतिक निर्णय किसी विशिष्ट कर्म या वस्तु सम्बन्धी उसकी उपयोगिता पर आधारित हैं। परन्तु इस उपयोगिता को हाब्स जैसे स्वार्थवाद से विभ्रमित नहीं करना चाहिए। उनका विश्वास था कि हम सामाजिक उपयोगिता की परवाह करते हैं तब भी जब वह हमारे निजी हित में ना हो। ह्यूम के नैतिक दर्शन का महत्वपूर्ण आयाम हैं भावनाएं, जिसे वह सहानुभूति कहते हैं, जिसका आशय है अपने साथी को कष्ट में देख कर हमारे अंदर उद्भूत होने वाला सम्वेग। उनका कहना है कि जब कभी ऐसा होता है हम सहायता करने की

आकांक्षा से तत्पर हो जाते हैं क्योंकि दूसरों के कष्ट एवं क्लेश को देख कर हम भी दुःखी होते हैं। वह पुनः इस बात को कहते हैं कि नैतिक कर्मों का उद्‌गम बुद्धि से नहीं होता है वरन सम्वेगों से होता है। सम्वेग हमारे अंदर निहित वह गुणधर्म हैं जो सुख की आकांक्षा रखती हैं और दुःखों से परहेज। बुद्धि– विवेक मात्र परिस्थितियों का विश्लेषण कर सकता है और हमारी क्रियाओं के फलस्वरूप उत्पन्न होने वाले सुख या दुःख के संतुलन का आंकलन कर सकता है परन्तु बुद्धि स्वयं कर्मों को प्रवृत नहीं कर सकती है। इसलिए उनका कहना है कि बुद्धि भावावेशों की गुलाम होती है। ह्यूम ने बुद्धिवादियों एवं स्वेच्छावादियों की प्रस्थापनाओं को नकार दिया जो नैतिकता को एक अति प्राकृतिक आधार प्रदान करते थे। नैतिक बुद्धिवादियों का मानना है कि नैतिक सुभिन्नताएं अलौकिक सिद्धान्तों पर आधारित हैं जो सभी बौद्धिक प्राणियों का नियमन करती हैं। बुद्धिवादी एवं वस्तुवादी हमें बताते हैं कि एक कूटस्थ सत्य है – माता पिता की आज्ञा का पालन होना चाहिए, सहोदरों में यौन सम्बन्ध नहीं बनाना चाहिए, और अगम्यागमन (इन्सेस्ट) अनैतिक है। हालाँकि जगत में लगातार इन सिद्धान्तों का उल्लंघन होता रहता है। नैतिकता एक व्यावहारिक व्यापार है जिसमे कर्म एवं संकल्प शामिल होते हैं। नैतिकता की सार भूत अभिप्रेरक शक्ति उपलब्ध कराने में ना तो अमूर्त बौद्धिक चिन्तन समर्थ है और ना ही दैवीय सत्ता। ह्यूम ने अपने अपने नैतिक दर्शन में इस प्रश्न का उत्तर देने का प्रयास किया कि नैतिकता कहाँ निहित है? नैतिकता की बुनियाद कहाँ स्थित है? उनका मानना है कि यह मानवीय प्रकृति में निहित है।

ह्यूम की नीतिशास्त्रीय चुनौती बुद्धि विवेक एवं कर्म के सम्बन्धों के अन्वेषण से आरंभ होती है। ह्यूम का बुद्धि से आशय सत्य, विश्वास, असत्य को निर्धारित करने की क्षमता से है। यह 2+2=4 जैसे सत्य तथा 2+2=5 जैसे असत्य का अन्वेषण करती है। यह कारण एवं कार्य के सम्बन्ध के निर्धारण में भी सहायता करती है। परन्तु यह किसी कर्म को अभिप्रेरित नहीं कर सकती है। 'हमें एक विशेष कर्म क्यों करना चाहिए' ऐसे प्रश्नों के सन्दर्भ में बुद्धि हमें यह नहीं बता सकती कि हमें कौन से कर्म करने चाहिए और कौन से कर्म नहीं करने चाहिए। यह इस बात को निर्धारित कर सकती है कि सोडा पीने की क्रिया से वजन बढ़ जाता है परन्तु यह प्रयोजन के विषय में कुछ भी नहीं बताती। बुद्धि हमें यह बता सकती है कि लक्ष्य को कैसे अर्जित किया जा सकता है परन्तु इसे मानवीय भावनाओं एवं संवेदनाओं पर आधारित होना चाहिए। बुद्धि अकेले क्रिया को उद्दीप्त नहीं कर सकती है। ह्यूम का तर्क है कि नैतिकता भावनाओं से उद्‌भूत होती है परन्तु यह बुद्धि द्वारा विज्ञ है या इसे बुद्धि द्वारा विज्ञ होना चाहिए। इसका आशय यह है कि बुद्धि हमें सूचना देने में समर्थ हो सकती है परन्तु अंततोगत्वा कर्म, भावनाओं या सम्वेगों द्वारा चालित होते हैं। बुद्धि एक उपकरण है जो किसी के कर्मों के तथ्यों का निर्धारण कर के उन संवेगों की सहायता करता है। उदाहरण के तौर पर, बुद्धि यह निर्धारित कर सकता है कि अनवरत मिथ्यावादन (झूठ बोलना) एक अप्रसन्न

जगत को निर्मित करता है परन्तु यह हमें यह नहीं बता सकता है कि हमें झूठ नहीं बोलना चाहिए। यह मात्र भावनाएं हैं जो हमें सत्य बोलने के लिए अभिप्रेरित करती हैं।

ह्यूम की मान्यता है कि नैतिकता अपने भीतर पाई जा सकती है। जब आप एक अनैतिक कर्म को देखते हैं और जब आप मात्र उस कर्म में शामिल वस्तुओं से सरोकार रखते हैं तो आप उस परिस्थिति के विषय में उचित या अनुचित नहीं खोज सकते हैं। उस परिस्थिति के विषय में उचित या अनुचित आपको तभी मिलेगा "जब आप चिंतन को परिवर्तित कर अननुमोदन की भावना को पाएंगे"। ह्यूम का कहना है कि यह सिर्फ एक भावना या मनोसंवेग है। अतः नैतिकता हमारे बुद्धि पर आधारित नहीं है, क्योंकि अपनी बुद्धि के द्वारा उस परिस्थिति के परीक्षण से हमें शुभ/उचित या अशुभ/अनुचित प्राप्त नहीं होता है। हमारी बुद्धि हमें मात्र तथ्यों के विषय में बताती है कि क्या घटित हुआ और कैसे घटित हुआ। तब नैतिकता अनुभूति या भावना होनी चाहिए। ह्यूम रंग, ऊष्मा तथा ऐसे "गुणों" के दार्शनिक मत का उदाहरण देते हैं। ह्यूम का कहना है कि आधुनिक दर्शन रंग, ऊष्मा तथा ध्वनि जैसी चीजों को सिर्फ प्रत्यक्ष मानता है ना कि किसी वस्तु का सुनिश्चित गुण। निश्चित तौर पर रंग और ऊष्मा हमारे प्रेक्षण की वस्तुएं हैं परन्तु निश्चित तौर पर यह नहीं कहा जा सकता है कि ऐसी चीजें किसी वस्तु के गुणधर्म हैं। उदाहरण के तौर पर एक सेब को लेते हैं। हम लाल रंग को देखते हैं परन्तु लालिमा हमारा प्रत्यक्ष है और अनिवार्यतः सेब का वास्तविक गुण नहीं है। अगर इस बात को आगे बढ़ाएं तो हम तथ्यतः यह भी नहीं कह सकते कि सेब अस्तित्ववान है, और अगर सेब अस्तित्ववान नहीं है तो निश्चित तौर पर लालिमा उसका गुण नहीं हो सकती है। हम मात्र इतना जानते हैं कि हम सेब का प्रत्यक्ष करते हैं और हमारे प्रत्यक्ष में वह लाल है। यह सेब के अस्तित्व अथवा गुणों को आपादितत नहीं करता है। ह्यूम इस तरह के विचारों कि तुलना नैतिकता से करते हैं। ह्यूम यह दर्शाने की कोशिश कर रहे हैं कि रंग तथा ऊष्मा के प्रेक्षणों की भांति नैतिकता भी किसी वस्तु में प्राप्त नहीं हो सकती है वरन नैतिकता एक ऐसी चीज है जो हमारे जगत में अस्तित्ववान होती है और हमारी भावनाओं से उदभूत होती है।

ह्यूम की यह उद्घोषणा उचित प्रतीत होती है कि इन्द्रियों से नैतिकता की परख नहीं हो सकती है। हम केवल वही जान सकते हैं जो इन्द्रियों द्वारा प्रदत्त है और हमारी इन्द्रियां यह नहीं बताती हैं कि कब कोई चीज उचित या अनुचित है। कोई चीज तभी उचित या अनुचित होती है जब कोई व्यक्ति देखे या सुने कर्मों के प्रति अपनी भावनाओं को प्रयोग करता है। इसका साक्ष्य है लोगों के नैतिक विश्वासों का अन्तर। जो कर्म एक व्यक्ति की नैतिक संवेदनाओं को आहत करता है वह अनिवार्यतः दूसरे व्यक्ति की नैतिक संवेदनाओं को भी आहत नहीं करता है। जहाँ एक ओर अनेक लोगों का यह विश्वास है कि किसी भी स्थिति में आत्महत्या करना नैतिकता का उल्लंघन है परन्तु वहीँ दूसरी तरफ अनेक संस्कृतियों में युद्ध में पराजय स्वीकार करने की अपेक्षा आत्मघात करना अधिक सम्माननीय माना जाता है। यह

लोग वैसी परिस्थिति में आत्मघात को अनैतिक नहीं मानते हैं। नैतिकता ऐसी चीज नहीं है जो किसी वस्तु या कर्म में अन्तर्निहित हो क्योंकि आत्महत्या के कर्म के विषय में दो भिन्न लोग दो भिन्न निष्कर्ष निकालते हैं। ह्यूम कहते हैं कि नैतिकता हमारे अंदर व्यक्तिगत मनोसंवेगों के रूप में निहित होनी चाहिए। ह्यूम के अनुसार, मूल्य तथ्य से निगमित नहीं की जा सकती है।

12.5 सारांश

नैतिक विषयिनिष्ठवाद एक अधिनैतिक सिद्धान्त है जिसका मानना है कि नैतिक निर्णयों के सत्यता मूल्य वक्ता की भावनाओं एवं मतों पर निर्भर करते हैं। हालाँकि इसे सम्वेगवादी सिद्धान्त से विभ्रमित नहीं करना चाहिए। नैतिक विषयिनिष्ठवादियों के लिए व्यक्ति के मनस से स्वतंत्र अर्थात् अभिवृत्तियों, संवेगों तथा भावनाओं से स्वतंत्र कोई नैतिक तथ्य नहीं होते हैं। नैतिक विषयिनिष्ठवाद के चार प्रकार हैं; सरलविषयिनिष्ठवाद, वैयक्तिक विषयिनिष्ठवाद, आदर्श दृष्टा या प्रेक्षक सिद्धान्त तथा दैवीय समादेश या आदेश सिद्धान्त। डेविड ह्यूम का नैतिक सिद्धान्त नैतिकविषयिनिष्ठवाद का एक उदाहरण है क्योंकि वह मानवीय संवेगों को नैतिकता की बुनियाद मानते हैं। वस्तुनिष्ठवादियों के विपरीत, वह बुद्धि विवेक के ऊपर संवेगों को वरीयता देते हैं। उनके अनुसार बुद्धि–विवेक संवेगों को प्रशासित करने का एक उपकरण मात्र है किन्तु संवेग कर्म के वास्तविक अभिप्रेरक हैं।

बोध–प्रश्न III

ध्यातव्यः क) उत्तर हेतु दिये गये रिक्त स्थान का प्रयोग कीजिए।

ख) अपने उत्तर का मिलान इकाई के अंत में दिये गये उत्तर से कीजिए।

1. डेविड ह्यूम के अनुसार चार महत्वपूर्ण आधारभूत सिद्धान्त क्या हैं?

.....

.....

.....

.....

2. "विवेक भावावेशों का गुलाम है "– इस कथन का आशय क्या है ?

.....

.....

.....

.....

12.6 कुंजी शब्द

नैतिक प्रति–यथार्थवाद (Moral anti-realism): नैतिक प्रति–यथार्थवाद मत है जो मानता है कि मानवीय अभिवृत्तियों, भावनाओं, विश्वासों इत्यादि से स्वतन्त्र कोई वस्तुनिष्ठ मूल्य नहीं होते हैं।

भावावेश (Passion) : यह बुद्धि–विवेक का विलोम एवं सम्वेग और भावनाओं या अनुभूतियों का समानार्थी है।

12.7 अन्य सहायक अध्ययन–सामग्री एवं सन्दर्भ

ग्रायेफ, फेलिक्स. *ए शार्ट ट्रीटाइज ऑन एथिक्स.* लंदनः डकवर्थ, 1980.

रोजेन, मार्क वान. *मेटा एथिक्सः ए कन्टेम्परेरी इंट्रोडक्शन.* लंदनः रूटलेज, 2015.

डेविड फेट नार्टन (एड.). *द कैम्ब्रिज कम्पेनियन टू ह्यूम.* कैम्ब्रिजः कैम्ब्रिज यूनिवर्सिटी प्रेस, 1993.

वालेंचाओ, विल्फ्रेड जे. *द डाइमेंशन ऑफ एथिक्स.* ब्रॉडव्यू प्रेस, 2003.

ह्यूम, डेविड. *ट्रीटाइज ऑन ह्यूमन नेचर.* लंदनः लॉगमैन, ग्रीन एण्ड क., 1739.

MAADHYAM IAS
'way to achieve your dream'

12.8 बोध प्रश्नों के उत्तर

बोध प्रश्न ।

1. नैतिक प्रति–यथार्थवाद या नैतिक अयथार्थवाद मानता है कि अभिवृत्तियों, भावनाओं, विश्वासों इत्यादि से स्वतन्त्र कोई वस्तुनिष्ठ मूल्य नहीं होते हैं। नैतिक विषयिनिष्ठवाद नैतिक प्रति–यथार्थवाद का एक प्रकार है।

नैतिक प्रति–यथार्थवाद के 4 प्रकार हैं – नैतिक विषयिनिष्ठवाद, असंज्ञानवाद, नैतिक उच्छेदवाद या नैतिक शून्यवाद तथा नैतिक संशयवाद।

बोध प्रश्न ।।

1. वैयक्तिक विषयिनिष्ठवाद – यह स्वार्थवाद का एक प्रारूप है जिसका मानना है कि मनुष्य को मात्र अपनी स्वार्थसिद्धि करना चाहिए। नैतिक कथन वक्ता की अभिवृत्तियों के विवरण मात्र हैं। जब मैं कहता हूँ कि गर्भपात गलत है तो मेरा आशय और कुछ नहीं है बस इतना है कि

मैं गर्भपात का अननुमोदन करता हूँ। ठीक वैसे ही जैसे अ उचित/शुभ/स्वीकार्य है= मैं अ का अनुमोदन करता हूँ तथा अ अनुचित/अशुभ/अस्वीकार्य है=मैं अ का अननुमोदन करता हूँ।

2. नैतिक विषयिनिष्ठवाद के विरूद्ध दो सशक्त आपत्तियाँ हैं । वे हैं–

(क) यदि नैतिक विषयिनिष्ठवाद सत्य है तब प्रत्येक व्यक्ति अपने नैतिक विश्वासों के बारे में अभ्रांत होगा। किन्तु मनुष्य अपने नैतिक विश्वासों के बारे में अस्ख्लनीय/अभ्रांत नहीं है । हम अपने विचार बदलते रहते हैं। किसी एक समय मैं कह सकता हूँ कि "भ्रूणहत्या नैतिक रूप से स्वीकार्य है" और किसी दूसरे समय मैं अपना विचार परिवर्तित कर सकता हूँ और कह सकता हूँ कि "भ्रूणहत्या नैतिक रूप से अस्वीकार्य है" ।

(ख) यदि नैतिक विषयिनिष्ठवाद सत्य है तब प्रत्येक व्यक्ति अपने नैतिक विश्वासों के बारे में सही होगा। किन्तु हम कभी–कभी गलत हो सकते हैं। यहाँ नैतिक असहमति हो ही नहीं सकती। सरल शब्दों में नैतिक विषयिनिष्ठवाद नैतिक असहमति का समर्थन कर ही नहीं सकता है। उदाहरण के लिए यदि कहता है कि शिशुहत्या कभी कभी उचित है तो इसका आशय है कि कुछ परिस्थितियों में शिशुहत्या का अनुमोदन करता है । यदि ब कहती है कि शिशुहत्या अनुचित है तो इसका आशय है कि वह प्रत्येक परिस्थिति में शिशुहत्या का अननुमोदन करती है अर्थात् अनुमोदन नहीं करती है। परन्तु अ का अनुमोदन तथा ब का अननुमोदन दोनों सत्य हैं।

MAADHYAM IAS
'way to achieve your dream'

बोध–प्रश्न ।।।

1. ह्यूम का नैतिक सिद्धान्त उनके अनुभववादी मनस के सिद्धान्त पर आधारित है। अपने अनुभववादी सिद्धान्त में वह 4 सिद्धान्तों का विधान करते हैं, (1) विवेक अकेले संकल्प का अभिप्रेरक नहीं हो सकता वरन वह भावावेशों का गुलाम है। (2) नैतिक मतभेद विवेक से व्युत्पन्न नहीं होते हैं। (3) नैतिक मतभेद नैतिक मनोभावों से व्युत्पन्न होते हैंय उस अवलोकन कर्ता की अनुमोदन या अननुमोदन की भावनाओं से जो किसी कर्म या चरित्रगतलक्षण का चिन्तन–मनन करता है। (4) कुछ गुण या अवगुण प्राकृतिक होते हैं और कुछ कृत्रिम यथा न्याय। उनका मानना था कि मानवीय बुद्धि या विवेक मूल्यों सम्बन्धित प्रश्नों का उत्तर नहीं दे सकता है।

2. "बुद्धि या विवेक भावावेशों का गुलाम होता है", डेविड ह्यूम ने यह वक्तव्य अपनी पुस्तक ट्रीटाइज ऑफ ह्यूमन नेचर में दिया है। उनका आशय है कि भावावेश हमें विभिन्न चीजों के लिए अभिप्रेरक शक्ति प्रदान करते हैं। और बुद्धि–विवेक हमें विभिन्न चीजों के विषय में सूचना प्रदान करते हैं। बुद्धि–विवेक एवं भावावेशों में कोई विवाद नहीं है। भावावेश नियंत्रक हैं

क्योंकि वह बुद्धि विवेक द्वारा प्रदान किये गए विचारों को कार्यान्वयित करते हैं और लक्ष्यों को पूर्ण करते हैं। हालाँकि भावावेशों के बिना बुद्धि विवेक शक्तिहीन हैं। बुद्धि–विवेक स्वयं किसी कर्म को उत्पन्न नहीं करता और ना ही सम्वेगों को उत्पन्न करता है। भावावेश ही मौलिक अस्तित्व हैं और अस्तित्व के विकार हैं। उदाहरण के लिए जब कोई भूखा होता है तो वह भावावेश से ग्रसित होता है और उस भावना में उसके पास इससे इतर किसी अन्य चीज का सन्दर्भ नहीं होता है।

MAADHYAM IAS
'way to achieve your dream'

इकाई 13 सम्वेगवाद : चार्ल्स स्टीवेन्सन*

रूपरेखा

13.0 उद्देश्य

13.1 परिचय

13.2 परिभाषा

13.3 नैतिक दर्शन में सम्वेगवाद का महत्त्व

13.4 दार्शनिक मत

13.5 सारांश

13.6 कुंजी शब्द

13.7 अन्य सहायक अध्ययन–सामग्री एवं सन्दर्भ

13.8 बोध–प्रश्नों के उत्तर

13.0 उद्देश्य

इस इकाई का उद्देश्य है,

- नैतिक दर्शन में सम्वेगवाद की परिचयात्मक समझ और महत्व को दर्शाना,
- पाश्चात्य दर्शन के इतिहास में दार्शनिकों ने सम्वेगवाद के विविध आयामों को ढूंढा, यद्यपि यह इकाई चार्ल्स स्टीवेन्सन द्वारा प्रस्तुत सम्वेगवाद के संस्करण पर केन्द्रित है।

13.1 परिचय

* श्री बंशीधर दीप, व्याख्याता (तर्कशास्त्र एवं दर्शनशास्त्र), जवाहर महाविद्यालय, पटनागढ़, ओड़ीसा,
अनुवादक– सुश्री शिल्पी श्रीवास्तव

सम्वेगवाद नैतिक दर्शन का एक अधिनीतिशास्त्रीय सिद्धान्त है। इसे अमरीकी दार्शनिक चार्ल्स स्टीवेन्सन (1908–1978) द्वारा विकसित किया गया था। उनका जन्म 1908 में ओहायो के सिनसिनाटी नामक शहर में हुआ था और वही वे पले–बढे भी। उन्होने जी. ई. मूर, ब्रोड एवं विटगेन्स्टाइन से दर्शन की शिक्षा प्राप्त की परंतु सबसे अधिक प्रभावित वे विटगेन्स्टाइन से हुए। 1933 से आरम्भ कर और युद्ध के उपरांत उन्होंने हावर्ड विश्वविद्यालय में सम्वेगवाद को विकसित किया। स्टीवेन्सन का लेखन मुख्यतः अधिनीतिशास्त्र के क्षेत्र में ही था। युद्ध के बाद का नीतिशास्त्रीय वाद–विवाद दर्शन में 'लिंग्विस्टिक टर्न' (भाषायी बदलाव) कहलाता है, इसी समय, मुख्यतः तार्किक भाववादी (लॉजिकल पॉजिटिविज्म) दर्शन के प्रभाव के कारण, दर्शन पर वैज्ञानिक ज्ञान का अवधारण (जोर) बढ़ रहा था। प्रश्न, जैसे कि क्या नैतिक विचारों/निर्णयों में वैज्ञानिक तथ्यों की कोई भूमिका होती है या नहीं? हमारे मनोविकार एवं भावनाएं किस सीमा तक हमारी नैतिकता की समझ को प्रभावित करते हैं?, महत्वपूर्ण हो उठे थे। अतः इन एवं सम्बद्ध मुद्दों का उत्तर देने के लिए दार्शनिकों ने अलग–अलग नैतिक सिद्धान्त विकसित किए। चार्ल्स स्टीवेन्सन उन दार्शनिकों में से एक हैं जिन्होंने उस समय में अपने सिद्धान्त को प्रतिपादित किया और यह स्थापित करने का प्रयास किया कि भावनाएं एवं अन्य निर्बौद्धिक गुण हमारे नैतिक–बोध (नैतिक–समझ) और नैतिक निर्णयों को बनाते हैं (संरचित करते हैं)। तार्किक भाववाद के एक प्रमुख दार्शनिक ए. जे. एयर अपनी पुस्तक *लेंग्वेज, ट्रुथ एण्ड लॉजिक* में तर्क करते हैं कि नैतिक निर्णय सत्यापित नहीं किये जा सकते हैं, अर्थात् नैतिक निर्णय न तो विश्लेषणात्मक (तार्किक सत्य) होते हैं और न ही तथ्यात्मक कथन। अपितु वो किसी व्यक्ति विशेष द्वारा किसी कर्म के बारे में सहमति या असहमति की केवल आवेगपूर्ण एवं भावनात्मक अभिव्यक्ति है। इसी मत को चार्ल्स स्टीवेन्सन ने अपनी पुस्तक *एथिक्स एण्ड लैंग्वेज* (1944) में और विकसित किया और सम्वेगवाद का आधार तैयार किया। उन्होंने सम्वेगवाद की चर्चा अपने आलेखों 'इमोटिव मीनिंग ऑफ एथिकल टर्म्स (1937) एवं 'परसुएसिव डेफिनेशन' (1938) में भी की है।

13.1 परिभाषा

सम्वेगवाद पद हमारे नैतिक निर्णयों, वाक्यों, शब्दों एवं वाक्–कर्म को सन्दर्भित करता हैय यह इन क्षेत्रों, मुख्यतः, कि क्या इन क्षेत्रों (नीति–दर्शन आदि) में हमारे निर्णय तथ्यात्मक हैं या नहीं?, के बारे में हमारे निर्णयों के मूल्यांकन की प्रकृति के सम्बन्ध में प्रश्न करता है।

सम्वेगवाद एक अधिनीतिशास्त्रीय सिद्धान्त है जो 'शुभ' जैसे नैतिक शब्दों को परिभाषित करने का प्रयास करता है। 'द इमोटिव मीनिंग ऑफ एथिकल टर्म' में स्टीवेन्सन का लक्ष्य "शुभ" की एक प्रासांगिक परिभाषा देना था। वह दावा करते हैं कि समुचित परिभाषा होने का अर्थ है इसे व्यापक/सर्व–समावेशी होना चाहिए तकि कोई पद वह सबकुछ उल्लिखित कर पाये जो

इसके बारे में कहना आवश्यक हो; यह असंदिग्ध होना चाहिए; इसे एक की बजाय अनेक परिभाषित अर्थों को सम्मिलित करना चाहिए, और इस तात्पर्य में सभी अर्थों को 'शुभ' पद की समझ/बोध के लिए प्रासंगिक माना जायेगा (स्टीवेन्सनः 1937)। स्टीवेन्सन पारम्परिक 'नीतिशास्त्रीय हित–सम्बन्धी सिद्धान्तों' को नकारते हैं, जोकि उनके अनुसार नैतिक समस्या को या तो, क्या यह मेरे द्वारा इच्छित है (हॉब्स) या फिर, क्या यह सभी लोगों द्वारा अनुमोदित है (ह्यूम)? के पदों में वर्णित करती है। इन सिद्धान्तों को नकारने के लिए, स्टीवेन्सन इंगित करते हैं कि संशोधित सिद्धान्त को तीन सामान्यबोध (लोकानुभव) मानदण्डों का पालन करना चाहिए। इन तीन मानदण्डों का 'हित–सम्बन्धी सिद्धान्त' पालन नहीं करते हैं। प्रथम, कोई चीज शुभ है, इस सम्बन्ध में लोग संज्ञानात्मक रूप से असहमति जताने के लिए योग्य होने चाहिए, और यह मानदण्ड हित–सम्बन्धी सिद्धान्त के प्रथम रूप; मेरे द्वारा इच्छित, की सम्भावना को समाप्त कर देता है। द्वितीय, "शुभ" केवल इसी हेतु (इसकी खातिर) लोगों को कार्य करने हेतु प्रेरित करना चाहिए। एक व्यक्ति को जो किसी को "शुभ" मानता है, उसे इसके पक्ष में कार्य करने के लिए प्रेरित होना चाहिए, जोकि वह अन्यथा करता, और इसीलिए यह हित–सम्बन्धी सिद्धान्त के द्वितीय रूप; सभी के द्वारा अनुमोदित, की सम्भावना को समाप्त करता है। एक व्यक्ति किसी कार्य हेतु सभी का अनुमोदन है, ऐसा जानते हुए भी उस पर कार्य नहीं करने की चाह रख सकता है। तृतीय, "शुभ" का सत्यापन केवल वैज्ञानिक पद्धति से नहीं होना चाहिए; नैतिक प्रश्नों को मनोविज्ञान अथवा लोगों की इच्छा के आनुभविक परीक्षण (जैसे, आंकड़ों को जुटाकर कि कौन क्या चाहता है; मात्रात्मक पद्धति) में अपचयित (अधीन; किसी को किसी के अन्तर्गत लाना या बदल देना, ढाल देना) नहीं किया जा सकता है। 'शुभ क्या है' यह प्रश्न वैज्ञानिक ज्ञेय अथवा परीक्ष्य सिद्धान्तों के समुच्चय में अपचयित नहीं किया जा सकता है (स्टीवेन्सनः 1937)।

पारंपरिक असंज्ञानवादी सिद्धान्त ये मानते हैं कि नैतिक निर्णय और वाक्–कर्म का प्राथमिक कार्य मनोभावों अथवा अभिवृत्तियों को व्यक्त करना है, न कि तथ्यों का वर्णन करना, उनके बारे में सूचित करना या उनका प्रतिनिधित्व करना। सम्वेगवादी, जोकि असंज्ञानवाद की परम्परा से सम्बन्धित हैं, यह भी कहते हैं कि नैतिक निर्णय तथ्यों के कथन नहीं हैं। दूसरे शब्दों में, सम्वेगवादी इस बात को नकारते हैं कि नैतिक तथ्य, या नैतिक शब्द जैसे शुभ, अशुभ, अनुचित, उचित कोई तथ्यात्मक नैतिक विधेय रखते हैं। उनके अनुसार, नैतिक दावों का मूल्यांकन सत्य और असत्य के आधार पर नहीं हो सकता है। सम्वेगवादियों के अनुसार, नैतिक निर्णयों द्वारा अभिव्यक्त किसी व्यक्ति की अभिवृत्ति प्रकृति में संज्ञानात्मक नहीं है, बल्कि यह प्रेरणात्मक तत्त्व रखती है, यह मुख्य मानदण्ड है। अतः, सम्वेगवाद दावा करता है कि नैतिक निर्णय सम्वेगों को अभिव्यक्त करते हैं और इन सम्वेगों का अनुमोदन और अननुमोदन किया जा सकता है, लेकिन उनका वर्णन या विश्लेषण उस तरह नहीं किया जा सकता है जिस तरह से तथ्यात्मक कथनों के मूल्यांकन किया जाता है। किन्तु, हम यह समझना होगा

कि सम्वेगवाद शास्त्रीय व्यक्तिनिष्ठवाद या आत्मनिष्ठवाद नहीं है। शास्त्रीय आत्मनिष्ठवाद के अनुसार, नैतिक निर्णय बनाने के समय, हम अपने सम्वेगों को अभिव्यक्त करने के साथ उनका कथन करते हैं; हमारे नैतिक अभिकथन सर्वदा सत्य नहीं होंगे (यदि हम असत्य नहीं बोल रहे हैं तो, और यह एक अलग मामला है)! यह मत नैतिक असहमतियों के लिए स्थान प्रदान नहीं करता है, जिनके साथ हमारा सामना हमेशा होता है, और अतः नैतिक मुद्दों की समझ के लिए अपर्याप्त है। दूसरी ओर सम्वेगवाद विचार करता है कि नैतिक निर्णय के बनाने के समय, हम केवल हमारे सम्वेग या मनोभाव को अभिव्यक्त करते हैं, न कि हमारे सम्वेगों का कथन करते हैं। यह भाषा के उपयोग की भिन्न समझ (कथन बनाना, आदेश देना, विस्मय प्रकट करना, इत्यादि) को तार्किकरूप से अन्तर्निहित करती है, और हमारे सम्वेगों के तथ्यात्मक अभिकथन से उनका कोई सम्बन्ध नहीं है।

13.3 नीति–दर्शन में सम्वेगवाद का महत्त्व

सम्वेगवाद को बीसवी शताब्दी का एक महत्तवपूर्ण नैतिक सिद्धान्त के रूप में देखा जाता है, जिसका विकास उपयोगितावाद एवं काण्ट के नीति–दर्शन के विकल्प के रूप में हुआ। स्टीवेन्सन के सम्वेगवाद में असंज्ञानात्मक मनोभावों को अधिक महत्व दिया गया है। यहाँ असंज्ञानवाद का विकास प्रत्यक्षवाद के विरोधी सिद्धान्त के रूप मे हुआ। सम्वादों में विज्ञान और विशेषरूप से तार्किक भाववाद (तार्किक प्रत्यक्षवाद) का आधिपत्य के कारण नैतिक निर्णयों को समझने में कठिनाई उत्पन्न हो गई। विज्ञान के आधिपत्य के अकरण, प्रत्येक क्षेत्र को वैज्ञानिक ढांचे में देखा जाना स्वाभाविक–सा हो गया। इस प्रकार, नैतिक निर्णयों, नैतिक कथनों, नैतिक शब्दों को वैज्ञानिक ढांचे के अन्तर्गत समझा जाने लगा, लेकिन स्टीवेन्सन और अन्य अनेक दार्शनिक इस बात से सहमत नहीं थे कि नैतिक निर्णय, नैतिक कथनों या नैतिक शब्दों को वैज्ञानिक ढंग से या तथ्यात्मक कथनों के द्वारा समझा जाये। अतः स्टीवेन्सन ने इस समस्या को गम्भीरता से लिया और सम्वेगवाद का अधि–नीतिशास्त्रीय सिद्धान्त विकसित किया, जहाँ उन्होंने यह सिद्ध करने का प्रयास किया कि नैतिक कथन, नैतिक निर्णय या नैतिक शब्द आनुभविक (व्यावहारिक) या वैज्ञानिक तथ्य नहीं हैं, बल्कि उनको सम्वेगात्मक अर्थ के माध्यम से समझा जा सकता है। तथ्य और मूल्य और उनके भेद के मुद्दे ने अनेक वाद–विवादों को जन्म दिया। स्टीवेन्सन ने वैज्ञानिक निर्णय और नैतिक निर्णय के मध्य अनुरूपता दिखाई। जब किसी विशिष्ट वैज्ञानिक निर्णय के बारे में असहमति होती है, तो इसका समाधान विश्वासों की सहमति के माध्यम से किया जा सकता है। नैतिक निर्णय के मामले में, इस बात की सम्भावना है कि विश्वास और अभिवृत्ति में सहमति के माध्यम से इसका समाधान किया जा सके। किन्तु, कोई भी इस बात में निश्चित नहीं हो सकता है कि लोगों के मध्य विश्वासों और अभिवृत्तियों में सहमति होने पर, नैतिक असहमति का समाधान हो

जायेगा। इस प्रकार, सम्वेगवाद नैतिक सिद्धान्त और दर्शन के इतिहास में महत्वपूर्ण स्थान रखता है। (सातरिसः1987)

बोध–प्रश्न I

ध्यातव्यः क) उत्तर हेतु दिये गये स्थान का प्रयोग कीजिए।

ख) अपने उत्तर का मिलान इकाई के अंत में दिये गये उत्तर से कीजिए।

1. नैतिक दर्शन में सम्वेगवाद के सिद्धान्त का क्या महत्व है?

.....
.....
.....
.....

2. एक अधिनीतिशास्त्रीय सिद्धान्त के रूप में सम्वेगवाद का उद्‌गम कैसे हुआ?

.....
.....
.....
.....

MAADHYAM IAS
'way to achieve your dream'

13.4 दार्शनिक मत

नैतिक सम्वेगवाद पर चर्चा चार्ल्स स्टीवेन्सन से बहुत पहले आरम्भ हो चुकी थी, इसलिए इसका इतिहास और पृष्ठभूमि को समझना महत्वपूर्ण है। प्रारम्भ में, इस पर चर्चा हमें जी. ई. मूर एवं डब्लू. डी. रॉस जैसे दार्शनिकों की पुस्तकों क्रमशः *प्रिंसपिया एथिका* और *फाउन्डेशन्स ऑफ एथिक्स* में मिलती है। मूर एक नैतिक संज्ञानवादी दार्शनिक थे। उनका मानना था कि नैतिक निर्णय किसी विश्वास को व्यक्त करते हैं, जो सत्य या असत्य का विषय हो सकता है। किन्तु, मूर एक नैतिक यथार्थवादी भी थे। वे मानते थे कि नैतिक गुण का अस्तित्व होता है एवं यही गुण किसी नैतिक निर्णय को सत्य बनाते हैं, किन्तु ये गुण वैज्ञानिक पदों या सत्यापनीय रूप में विश्लेषित नहीं किये जा सकते हैं। मूर के अनुसार, ये गुण निर्नैतिक हैं; वे अद्वितीय, सरल और तात्विक हैं, इसीलिए अपरिभाष्य और अविश्लेष्य हैं। अतः, जब हम 'शुभ' (किसी नैतिक कथन का एक गुण), के बारे में बात करते हैं, तो यह सारतः अपरिभाष्य है। यह शुभ पद की सहजज्ञान युक्त समझ है। मूर कहते हैं कि "शुभ" अपरिभाष्य और सरल है, और इसलिए केवल सहज–बोध से जाना जा सकता है।

हालांकि सम्वेगवाद पर चर्चा का आरंभ मूर द्वारा किया गया, लेकिन उनके संज्ञानात्मक मत के कारण, ए. जे. एअर ने उनकी आलोचना करते हुए सम्वेगवाद को पुनः परिभाषित किया। *लैंग्वेज, ट्रूथ, एण्ड लॉजिक* में एअर ने नैतिकता का वैकल्पिक दृष्टिकोण दिया। वे तर्क करते हैं कि नैतिक निर्णय न तो तार्किक सत्य हैं और न ही तथ्यात्मक कथन, और इसीलिए अर्थ के सत्यापनीय मानदण्ड से इसका मिलान नहीं होता है (अर्थ का सत्यापनीय मानदण्ड इस पर लागू नहीं हो सकता है)। एयर के अनुसार, नैतिक अवधारणाएं छद्मं–अवधारणाएं हैं या निरर्थकय वे कोई संज्ञानात्मक महत्व नहीं रखती हैं। वे मूल्य–आधारित निर्णय के बजाय, केवल किसी व्यक्ति की किसी कृत्य या व्यक्ति के प्रति सहमति या असहमति की संवेगात्मक अभिव्यक्तियां हैं। अनुमोदन या अननुमोदन की अभिव्यक्ति होने के कारण, वे न तो सत्य हो सकती हैं न ही असत्य, आकर्षण का लहजा (अनुमोदन दर्शाने वाली) या विकर्षण का लहजा (अननुमोदन दर्शाने वाले) से अधिक होने पर ही कुछ सत्य या असत्य कहा जा सकता है।

इस मत का पूर्ण विकास सी. एल. स्टीवेन्सन के द्वारा 'एथिक्स एण्ड लैंग्वेज' एवं अपने अन्य लेखों में किया गया। पाश्चात्य दर्शन में यह कालावधि भाषा–सम्बन्धी मुद्दों पर ध्यान केन्द्रित करने वाले और विश्लेषणात्मक पद्धति के उत्थान के समय के रूप में विशेषित किया जाता है, जिसने नीतिशास्त्र और अन्य तत्सम्बन्धी विषयों जैसे सौन्दर्यशास्त्र, धर्मशास्त्र, इत्यादि की वार्ताओं को भी प्रभावित किया। स्टीवेन्सन का कार्य इसी पृष्ठभूमि में है, और वे किसी वाक्य के तथ्यात्मक पहलू को सम्वेगात्मक पहलू से अलग करते हैं। वे तर्क करते हैं कि नैतिक निर्णय का महत्व इसके सम्वेगात्मक प्रभाव में निहित होता है। किन्तु, स्टीवेन्सन एयर से इस विचार में भिन्न हैं, कि नैतिक निर्णय न केवल किसी व्यक्ति की किसी के बारे में सहमति या असहमति को अभिव्यक्त करते हैं, बल्कि अन्यों को भी इस विश्वास सहभागी होने के लिए प्रोत्साहित करते हैं, जोकि सार्थक नैतिक संघर्षों या मतभेदों का आधार है। यही कारण है कि लोग क्यों अपने नैतिक मतों के पक्ष में तर्क करते हैं, न कि केवल सहमत होने के लिए असहमति प्रकट करते हैं। इस प्रकार स्टीवेन्सन के सम्वेगवाद का मुख्य विचार तथ्य और मूल्य के भेद से उत्पन्न मूलभूत समस्या पर आधारित है, जहाँ भाषायी प्रयोग के मुद्दे भाषा के वर्णनात्मक/वैज्ञानिक/तथ्यात्मक प्रयोग और सम्वेगात्मक/साधारणध्मूल्य–आधारित प्रयोग के मध्य विभाजित हैं। नैतिकता की समस्याएं भाषा के असंज्ञानात्मक या मूल्य–आधारित क्षेत्र से सम्बन्धित हैं, न कि भाषा के संज्ञानात्मक या तथ्यात्मक क्षेत्र से।

इन समस्याओं को समझने के लिए सम्वेगवाद के सन्दर्भ में तीन बातों को जानना आवश्यक है। पहली, सम्वेगवादी इस तथ्य की व्याख्या करते हैं कि लोग साधारणतः अपने नैतिक निर्णयों के अनुसार व्यवहार करने के लिए प्रेरित होते हैं। सम्वेगवादी नैतिक निर्णयों का तादात्म्य भावना या अभिवृत्ति (मनोभाव) से करते हैं। संज्ञानवादियों को प्रेरणात्मक सम्बन्ध की व्याख्या में कठिनाई है, क्योंकि वे नैतिक निर्णयों का तादात्मय विश्वासों से करते हैं। दूसरा,

सम्वेगवादी निर्नैतिक भूमि पर आधारित नैतिक निर्णयों की व्याख्या करते हैं। तीसरा, सम्वेगवादी नैतिक की व्याख्या अनुभवगम्य के आधार पर करते हैंय यही कारण है कि नैतिक गुण निर्नैतिक या आनुभविक ढंग से परस्पर भिन्नता रखते हैं।

हालांकि, स्टीवेन्सन ने इस पूरी समस्या का समाधान नीतिशास्त्र में 'शुभ' की समझ के माध्यम से करने का प्रयास किया। चर्चा का आरम्भ इस प्रश्न से होता है, यदि 'अ' शुभ है तो हमें ये कैसे ज्ञात होता है कि वो शुभ है? वो कौन सी पद्धति या तरीका है जिसकी सहायता से हम ये जान पाते हैं कि 'अ' शुभ है। उनके अनुसार, 'शुभ' शब्द को अकसर अनुमोदन के पदों में परिभाषित किया जाता है। किन्तु, इस मानदण्ड के माध्यम से भी शुभ की उचित समझ पाना सम्भव नहीं है, और इसीलिए, दार्शनिक विवादों में, यह इस निष्कर्ष की ओर ले जाता है, कि शुभ अपरिभाष्य (परिभाषा सम्भव नहीं) है। लेकिन सम्वेगवादियों के अनुसार, शुभ की सर्वोत्तम नैतिक समझ इसका विशुद्ध सम्वेगात्मक प्रयोग है। उनके लिए, कोई कृत्य या वस्तु शुभ है या नहीं, यह सम्वेगात्मक अनुमोदन या अननुमोदन की कोटियों के माध्यम से ही जाना जा सकता है। यह बहुधा नैतिक मूल्यों के सापेक्षात्मक मूल्यांकन की ओर ले जाता है। उदाहरणार्थ, यदि कोई किसी व्यक्ति की हत्या करता है क्योंकि वह हत्या करने के कृत्य का अनुमोदन करता है। शुभ क्या है, इसके किसी भी उत्तर को उचित ठहराना कठिनाईपूर्ण है, क्योंकि कोई अन्य इस अनुमोदित कृत्य के अशुभ या अनुचित होने को उचित ठहरा सकता है। कोई व्यक्ति या समूह किसी एक परिस्थिति में किसी कृत्य को अनुमोदित कर सकता है, जबकि कोई अन्य व्यक्ति या समूह किसी अन्य या उसी सन्दर्भ में उस कृत्य को अननुमोदित कर सकता है। अतः कृत्यों के नैतिक मूल्यांकन की सापेक्षता–सम्बन्धी समस्या बनी रहती है।

MADHYAM IAS
'way to achieve your dream'

स्टीवेन्सन इस समस्या की चर्चा अपनी पुस्तक एथिक्स एण्ड लैंग्वेज में करते हैं। "स्टीवेन्सन अनन्यतः अर्थ की उस संगत और स्थिर अवधारणा को इंगित करने पर विचार कर रहे थे, जोकि सम्वेगात्मक और इसी जाति के अन्य अर्थों को सन्दर्भित करती है, और सारतः भाषा के मनोवैज्ञानिक या प्रयोजनात्मक पक्ष से जुड़ी हुई होगी। इस सम्बन्ध में कोई भी आनुभविक दावे नहीं किये गये; यह जो ज्ञात है उसको व्यवस्थित करना है।" (सात्रिसः 1987, पृ. 80)। स्टीवेन्सन कहते हैं कि इनके बीच उलझन का कारण तथ्य और मूल्य के पदों में है, और वह भाषा के विभिन्न प्रयोगों– संज्ञानात्मक और असंज्ञानात्मक प्रयोअग– के मध्य भेद को दुहराते हैं। उनके अनुसार नैतिक निर्णय मूल्य (भाषा के असंज्ञानात्मक प्रयोग) पर आधारित है, न कि तथ्यों (भाषा के संज्ञानात्मक प्रयोग) पर। अतः, सम्वेगवादी नैतिक भाषा के मूल्य–आधारित प्रयोग और इसके नीति–दर्शन में महत्व को रेखांकित करते हैं। स्टीवेन्सन का मानना है कि शुभ का पर्याप्त विवरण विशुद्धतः वर्णनात्मक या तथ्य–आधारित नहीं हो सकता है, क्योंकि "नैतिक कथन" या "नैतिक निर्णय" दूसरों को प्रभावित करने के लिए बनाये जाते हैं, न कि किसी घटना–स्थिति के तथ्यात्मक वर्णन के लिए। सम्वेगवादियों के लिए उन नैतिक निर्णयों

के सम्बन्ध में समस्या खड़ी होती है, जो वर्णनात्मक तत्व रखते हैं, परन्तु इसका तात्पर्य यह नहीं है कि सभी नैतिक निर्णयों में वर्णनात्मक विषय–वस्तु अन्तर्निहित होती है। सम्वेगवादी, दूसरी ओर, तर्क करते हैं कि नैतिक निर्णयों का मुख्य कार्य तथ्यों को दर्शाना नहीं है, बल्कि विश्वासों और कार्यों को प्रभावित करना। लोगों की रुचियों या विश्वासों का तथ्यात्मक विवरण देने के बजाय, वे उन्हें बदलने या तीव्र करने की चाह रखते हैं। अब प्रश्न उपस्थित होता है कि किसी नैतिक वाक्य में लोगों को प्रभावित करने की शक्ति कैसे आती है– इस प्रभावकारिता का आधार क्या है? स्टीवेन्सन सोचते हैं कि नैतिक निर्णयों में दूसरों को प्रभावित करने की यह शक्ति शब्दों के "गत्यात्मक" प्रयोग से आती है, जो हमें अपनी भावनाओं की अभिव्यक्ति (विस्मयादिबोधक) में समर्थ करती है, मनोदशा बनाती है (कविता), अथवा किसी कृत्य या अभिवृत्ति के प्रति लोगों को उत्तेजित करती है (वक्तृता, वाक्–कला)। स्टीवेन्सन के द्वारा यहाँ मुख्य भेद प्रयोग और अर्थ की अवधारणाओं के मध्य किया जाता हैः अर्थ, उनके अनुसार, गत्यात्मक (गतिशील) प्रयोग के साथ नहीं बदल सकता है। स्टीवेन्सन के लिए, "अर्थ" का तादात्म्य उन मनोभाविक अर्थों/सन्दर्भों या आशयों से है जिससे किसी शब्द का उच्चारण/अभिव्यक्ति सम्बन्धित होने की प्रवृत्ति रखती है। यह प्रवृत्ति उन सभी में अनिवार्यतः होनी चाहिए जो भाषा बोलते हैं; यह अनिवार्यतः आग्रही होना चाहिए; शब्द के उच्चारण के सन्दर्भ से अधिक या कम, परन्तु स्वतन्त्र रूप में महसूस की जानी चाहिए; शब्द का अर्थ वस्तुनिष्ठ होना चाहिए, सन्दर्भ या प्रसंगानुसार परिवर्तित नहीं हो सकता है। और भाषा के गत्यात्मक प्रयोग से सम्बन्धित अर्थ का प्रकार सम्वेगात्मक अर्थ होता है।

> किसी शब्द का सम्वेगात्मक अर्थ उसके प्रयोग के इतिहास द्वारा विकसित वो क्षमता है जिससे अन्य लोगों के अन्दर भावनात्मक प्रतिक्रिया प्रवाहित होती है। ये उस शब्द के साथ जुड़ा भावनाओं का तात्कालिक प्रभाव है। लोगों में भावनात्मक प्रतिक्रिया उत्पन्न करने की क्षमता शब्दों में गहराई से जुड़ी होती है । उदाहरण के तौर पर, खुशी का इजहार करने के लिए विस्मयादिबोधक 'हाय !' का प्रयोग करना कठिन है। इस प्रकार की भावनात्मक प्रतिक्रिया उत्पन्न करने की क्षमता शब्दों के साथ (अन्य कारणों के मध्य) इतनी गहराई से जुड़ी है कि उसे "अर्थ"कहना ही उचित लगता है। (स्टीवेन्सनः1944, पृ. 23)

सम्वेगात्मक अर्थ नैतिक निर्णयों के क्रियाशील उद्देश्य का सहायक है। शुभ का, सामान्य रूप से, एक आकर्षक सम्वेगात्मक अर्थ है, जो किसी निर्णय को अनुकूल रुचि उत्पन्न करने में समर्थ बनाती है। अतः, "यह शुभ है" अन्तर्निहित करता है "मुझे ये पसंद है, आप भी ऐसा करें।"ऐसे मामलों में जहाँ "शुभ" का प्रयोग नैतिक अर्थ में हो रहा है, एक नैतिक वाक्य किसी आदेश से इस रूप में भिन्न है कि ये किसी व्यक्ति को बहुत ही सूक्ष्मता के साथ परिवर्तन करने में समर्थ बनाता है। "शुभ" का नैतिक रूप से संवेगात्मक अर्थ एवं निर्नैतिक रूप से सम्वेगात्मक अर्थ एक दूसरे से भिन्न हैं; शुभ का सम्वेगात्मक अर्थ अनुमोदन की तीव्रतर भावना से सम्बन्धित है, किसी कार्य करने की मांग भी करता है। यह श्रोता और वक्ता के मध्य केवल

सहमति के बारे में नहीं है। किसी नैतिक अनुमोदन के मामले में, उसके निर्णय के अनुसार कृत्य होने पर, व्यक्ति संतुष्टि की भावना का अहसास करता है; किन्तु, निर्णय के अनुसार कृत्य न होने पर असंतुष्टि होती है। इस प्रकार, शुभ की नैतिक सम्वेगात्मक अर्थ, लगभग इस तरह है "मैं इसका नैतिक अनुमोदन करता हूँ; आप भी ऐसा ही करो।" जब कोई व्यक्ति किसी बात के प्रति नैतिक अर्थ में सहमति जताता है तो वो उस विचार के आगे प्रसारित होने पर एक अर्थपूर्ण सुरक्षा की भावना का एहसास करता है एवं ऐसा ना होने पर क्रोधित या विरक्त होता है । अतः स्टीवेन्सन के लिए, "शुभ" का नैतिक रूप से सन्वेगात्मक अर्थ है "मैं नैतिक रूप से इसे अनुमोदित करता हूँ, आप भी ऐसा करें" ।

इस अर्थ को ध्यान में रखते हुए स्टीवेन्सन ये बताने का प्रयास करते हैं कि उनकी शुभ की परिभाषा सार्थक नैतिक असहमति के लिए सम्भावना बनाती है, जोकि साधारण आत्मनिष्ठवाद या व्यक्तिनिष्ठवाद में सम्भव नहीं है। नैतिक रुचियों में असहमतिके सन्दर्भ में, स्टीवेन्सन सर्वप्रथम "विश्वास में असहमति" और "अभिवृत्ति में असहमति" में भेद करते हैं, जहाँ "रूचि" का अर्थ मोटे तौर पर नैतिक अनुमोदनों से भी है। स्टीवेन्सन, नीतिशास्त्र के सन्दर्भ में असहमतियों को हमेशा रुचियों में असहमति बतौर देखते हैं।

> नीतिशास्त्र में यह रुचियों में असहमति है। जब क कहता है 'यह शुभ है', और ख कहता है, 'नहीं, यह अशुभ है,' तब हमारे पास सुझाव और प्रति–सुझाव का मामला है। प्रत्येक दूसरे की रुचि को पुनर्दिशा देने का प्रयास कर रहा है। यहाँ किसी प्रभुता रखने वाली की आवश्यकता नहीं है, क्योंकि प्रत्येक दूसरे के प्रभाव को सुनने का इच्छुक है; लेकिन प्रत्येक दूसरे को प्रभावित करने का प्रयास कर रहा है। इस आशय में वे असहमति रखते हैं। (स्टीवेन्सनः 1944, पृ. 27)

MADHYAM IAS
'way to achieve your dream'

स्टीवेन्सन आगे तर्क करते हैं कि जब दो व्यक्तियों के मध्य असहमति होती है, तो यदि यह मान लें कि वे आनुभविक पद्धति का सर्वांगीण रूप में, संगत ढंग से, और बिना किसी दोष के प्रयोग करने के बावजूद वे मामले के आनुभविक विचारण के मूल्यांकन की सहायता से भी असहमति का समाधान करने में समर्थ नहीं होते हैं। वह इस सम्बन्ध में एक उदाहरण देते हैं, जिसमें दो पक्ष सभी तथ्यों पर सहमत होने के बावजूद भी नैतिक असहमति रखते हैं। दृष्टान्ततः, अ संवेदनशील है, और ब का नहीं। वे बहस करते हैं कि क्या सरकार का किसी लोककल्याणकारी कार्य हेतु धन खर्चना उचित है या नहीं। मान लीजिए कि उन्होंने सरकार के खर्च के सभी तथ्यात्मक परिणामों का पता लगा लिया है। तब भी यह सम्भव है कि अ और ब खर्च सम्बन्धी नैतिक दृष्टिकोण में असहमत हों। उनकी रुचियों में असहमति का कारण सीमित तथ्यात्मक ज्ञान न होकर अ का संवेदनशील और ब का संवेदनशून्य होना है। अब पुनः, यदि इस दृष्टान्त में हम सम्मिलित व्यक्तियों के सन्दर्भ में एक विशेष विचारणा करते हैं– कि अ निर्धन और बेरोजगार है, और ब धनी। अब फिर भी हम पाते हैं कि उनके मध्य असहमति

भिन्न–भिन्न आनुभविक तथ्यों के कारण नहीं है। यह असहमति उनकी भिन्न–भिन्न सामाजिक स्थितियों, और उनके विशिष्ट स्वार्थों के कारण है। दोनों सरकार के खर्च के सम्बन्ध में स्वयं के अनुमोदन या अननुमोदन के आधार पर एक–दूसरे के विश्वासों को प्रभावित करने का प्रयास करेंगे। दोनों इस तथ्य पर सहमत हैं; किन्तु, मामले में अपनी अभिवृत्तियों में सहमत नहीं हैं। अतः, विज्ञान इनकी असहमति का समाधान नहीं कर सकता है। यह अभिवृत्तियों में असहमति, न कि विश्वासों में असहमति है। आनुभविक तथ्यों की सूचना के द्वारा उनके विश्वास समान हैं; किन्तु मामले के तथ्यों के प्रति उनकी अभिवृत्तियां भिन्न–भिन्न हैं, जोकि उनकी असहमति का कारण है। महत्वपूर्ण यह है कि, स्टीवेन्सन यह नहीं कहते कि इस तरह की नैतिक असहमति के मामलों में नैतिक सहमति या नैतिक अनुमोदन पर नहीं पहुँच सकते हैं। वास्तव में एक रास्ता है। उनके अनुसार, लेकिन यह रास्ता बौद्धिक नहीं है– बल्कि यह निर्बौद्धिक प्रेरणा का रास्ता है।

> यदि नैतिक असहमति विश्वासों में असहमति पर आधारित नहीं है, तो क्या इसके समाधान का अन्य कोई उपाय है? यदि "उपाय" से किसी का तात्पर्य बौद्धिक उपाय से है, तब कोई भी उपाय नहीं है। लेकिन किसी भी स्थिति में एक "उपाय" है। पूर्वोक्त उदाहरण को पुनः लेते हैं, जिसमें असहमति अ की संवेदनशीलता और ब की संवेदनशून्यता के कारण है। क्या उन्हें यह कहकर इसे समाप्त कर देना चाहिए कि यह तो हमारे भिन्न–भिन्न मनोभावों के कारण है? आवश्यक रूप से नहीं, अ, दृष्टान्ततः, अपने प्रतिपक्षी के स्वभाव को बदलने का प्रयास कर सकता है। वह अपने उत्साह को– निर्धनों के संघर्षों को प्रस्तुत करके– इस तरह से रख सकता है कि वह अपने प्रतिपक्षी को जीवन का भिन्न आयाम दिखा सके। वह अपनी भावनाओं के संसर्ग से, एक प्रभाव पैदा कर सकता है जो ब के स्वभाव को बदल दे, और निर्धनों के प्रति उसमें सहानुभूति पैदा कर दे, जो उसमें पहले उपस्थित नहीं थी। नैतिक सहमति प्राप्त करने का यही एक रास्ता है, यदि वास्तव में कोई रास्ता है तो। (स्टीवेन्सनः 1944, पृ. 29)

स्टीवेन्सन द्वारा नैतिक संवेगवाद के पक्ष में तार्किक निष्कर्ष प्रस्तुत करने के बाद भी उनके सिद्धांतों की मैकनटायर एवं अन्य दार्शनिकों ने आलोचना की है। सम्वेगवाद पर ये आरोप लगाया जाता है कि वो नैतिक विवेचन एवं विवादों में बौद्धिक तर्कों की महत्वपूर्ण भूमिका को समाहित नहीं करने में असमर्थ है। यद्यपि, यह इस बात पर जोर देता है कि नैतिक चर्चाओं के द्वारा किस प्रकार दूसरों के व्यवहार को प्रभावित किया जा सकता है। कभी–कभी दार्शनिक कहते हैं कि सम्वेगवाद कोई नया सिद्धान्त नहीं है, असंज्ञानवाद का विस्तारित रूप है, और इसलिए इसमें कहने को कुछ भी विशेष नहीं है। दूसरी ओर कभी–कभी इस पर व्यक्तिनिष्ठवाद का एक रूप होने का आरोप लगाया जाता है। व्यक्तिनिष्ठ पद के एक सन्दर्भ में सम्वेगवादी दार्शनिक इस आरोप को दृढ़तापूर्वक निरस्त कर सकते हैं। परन्तु ये उत्तर, व्यक्तिनिष्ठता से जुड़े मुख्य मुद्दों का उत्तर देने में सक्षम नहीं है। इस आरोप के अनुसार सम्वेगवादी के लिये अपनी वैयक्तिक भावनाओं के अतिरिक्त उचित एवं अनुचित में भेद करने

का कोई मापदण्ड नहीं है। परंतु कुछ ऐसे दार्शनिक हैं जो इस बात को ना मानते हुए वस्तुनिष्ठ सम्वेगवाद के पक्ष में तर्क देते हैं।

बोध–प्रश्न II

ध्यातव्यः क) उत्तर हेतु दिये गये स्थान का प्रयोग कीजिए।

ख) अपने उत्तर का मिलान इकाई के अंत में दिये गये उत्तर से कीजिए।

1. चार्ल्स स्टीवेन्सन का सम्वेगवाद के पक्ष में मुख्य तर्क क्या हैं?

.....

.....

.....

.....

13.5 सारांश

चार्ल्स स्टीवेन्सन का सम्वेगवाद सुदृढ़ तार्किक आधार रखता है। सम्वेगवाद के तर्क का सार नैतिक रूप से 'शुभ' शब्द की समझ पर आधारित है। अतः, सम्वेगवाद में, स्टीवेन्सन ने शुभ को परिभाषित करने के अनेक तरीके विकसित किये हैं। इस सम्वाद का आधार नैतिक निर्णयों की संज्ञानात्मक और असंज्ञानात्मक समझ के मध्य वाद–विवाद है।

MAADHYAM IAS
'way to achieve your dream'

13.6 कुंजी शब्द

निर्णय : कौन सा कर्म करना उचित है इस विषय में सही समझ होने की क्षमता।

अर्थ : वह विचार जो किसी शब्द या शब्दों के समूह, वाक्यांश से व्यक्त होता है । दूसरे शब्दों में ये वो विचार है जो कोई व्यक्ति उन शब्दों या चिन्हों के प्रयोग से व्यक्त करना चाहता है। लेकिन नीतिशास्त्र में दार्शनिकों ने इसे वस्तुनिष्ठ ना मानकर व्यक्तिनिष्ठ माना है।

तथ्य : ऐसा कुछ जो सच में अस्तित्वमान हो और यह अस्तित्व बाह्य जगत में हो।

13.7 अन्य सहायक अध्ययन–सामग्री एवं सन्दर्भ

एयर, ए. जे. *लैंग्वेज, ट्रूथ एण्ड लॉजिक.* पैंग्विन बुक, 1971.

महोन, जेम्स एडविन. "मैकिन्टायर एण्ड इमोटिविस्ट्स". इन फ्रैन ओश्रौरके (एड.), व्हाट हेपिन्ड इन एण्ड टू मोरल फिलोसॉफी इन द ट्वनटीयथ सैन्चुरी. युनिवर्सिटी ऑफ नोटरे डेम प्रेस, 2013.

मिलर, एलेक्जेन्डर. "इमोटिविज्म एण्ड द वैरिफिकेशन प्रिंसिपल". ऑक्सफॉर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस ऑन बिहाफ ऑफ द एरिस्टोटेलियन सोसाइटी, 98: 103–124.

मूर, जी. ई. *प्रिंसीपिआ एथिका.* कैम्ब्रिज यूनिवर्सिटी प्रेस, 1983.

वैलमैन, कार्ल. "इमोटिविज्म एण्ड एथिकल ऑबजैक्टिविटी". नॉर्थ अमेरिकन फिलोसॉफिकल पब्लिकेशन्स, 5/2: 90–99.

स्टीवेन्सन, चार्ल्स लेसली. *एथिक्स एण्ड लैंग्वेज.* न्यू हैवेनः येल यूनिवर्सिटी प्रेस, 1944.

स्टीवेन्सन, चार्ल्स लेसली. "द इम्मोटिव मीनिंग ऑफ एथिकल टर्मस" माइंड, 46/181: 14–31.

स्टीवेन्सन, चार्ल्स लेसली. "परसुएसिव डेफिनेशन" माइंड, 47/187: 331–350.

13.8 बोध–प्रश्नों के उत्तर

बोध–प्रश्न I

1. सम्वेगवाद ने उपयोगितावाद और काण्ट के नीति–दर्शन के विकल्प रूप में जन्म लिया। वैज्ञानिक आधिपत्य के युग में, जहाँ विज्ञान नैतिक निर्णयों स्वीकार्य हैं या नहीं, का निर्णय करने में मुख्य भूमिका निभा रहा था, सम्वेगवाद ने वहाँ तथ्य और मूल्य के भेद पर ध्यान केन्द्रित करवाने का प्रयास किया, और इस विचार को चुनौती दी कि नैतिक समस्याओं का समाधान तथ्यों पर सहमति या असहमति की पद्धति से नहीं हो सकता है।

2. सम्वेगवाद का विकास एक ऐसे अधिनीतिशास्त्रीय सिद्धान्त के रूप में हुआ है जो कुछ प्रमुख आधारभूत नीतिशास्त्रीय समस्याओं का समाधान प्रदान करता है। नीतिशास्त्र में नैतिक पदों जैसेकि शुभ को परिभाषित करना ऐसी ही एक समस्या है। ऐसा करने के प्रयास में यह नीतिशास्त्र के कुछ अन्य मुद्दें जैसे है–करना चाहिए, के विवाद, तथ्य एवं मूल्य का भेद आदि पर भी प्रकाश डालता है।

बोध–प्रश्न II

1. स्टीवेन्सन के सम्वेगवाद के कुछ मुख्य बिन्दु निम्नवत् हैं,

अ. नैतिक निर्णयों का महत्त्व उनके सम्वेगात्मक प्रभाव में निहित होता है,

आ. नैतिक मुद्दों का समाधान मुद्दे के आनुभविक विचारण के मूल्यांकन के माध्यम से नहीं किया जा सकता है,

इ. नैतिक असहमति अभिवृत्ति/मनोभाव में असहमति है, न कि विश्वासों में असहमति,

ई. नैतिक असहमति का समाधान निर्बौद्धिक प्रोत्साहन से किया जा सकता है।

MAADHYAM IAS
'way to achieve your dream'

इकाई 14 परामर्शवाद : आर. एम. हेयर*

रूपरेखा

14.0 उद्देश्य

14.1 परिचय

14.2 परिभाषा

14.3 नीति–दर्शन में परामर्शवाद का महत्त्व

14.4 दार्शनिक मत

14.5 सारांश

14.6 कुंजी शब्द

14.7 अन्य सहायक अध्ययन–सामग्री एवं सन्दर्भ

14.8 बोध–प्रश्नों के उत्तर

14.0 उद्देश्य

प्रस्तुत इकाई का उद्देश्य है,

- परामर्शवाद सम्बन्धी हेयर के नीति–दर्शन की व्याख्या करना,
- सामान्यतः नीतिशास्त्र के क्षेत्र में परामर्शवाद की भूमिका एवं विशेष रूप से नीतिशास्त्र के मूल प्रश्नों पर इसकी प्रतिक्रिया की भी व्याख्या करना।

14.1 परिचय

हम परामर्शवाद के बीज सुकरात, अरस्तु, ह्यूम, काण्ट और मिल के दर्शनों में देख सकते हैं, परन्तु इस अधि–नीतिशास्त्रीय सिद्धान्त के मुख्य विचारक दार्शनिक रिचर्ड मेर्विन हेयर (1919–2002) थे। नैतिक विचारों (संलापों) के विश्लेषण के माध्यम से, हेयर ने 'वरीय उपयोगितावाद' का औचित्य सिद्ध किया। परामर्शवाद एक नीतिशास्त्रीय या अधिनीतिशास्त्रीय

* श्री बंशीधर दीप, व्याख्याता (तर्कशास्त्र एवं दर्शनशास्त्र), जवाहर महाविद्यालय, पटनागढ़, ओड़ीसा,
अनुवादक– सुश्री शिल्पी श्रीवास्तव

सिद्धान्त है जो कि रिचर्ड मेरविन हेयर नामक दार्शनिक द्वारा प्रतिपादित किया गया था। हेयर ने द्वितीय विश्वयुद्ध के दौरान शाही तोपखाने में सेवा दी और जापान द्वारा युद्धबन्दी बना लिये गये। द्वितीय विश्वयुद्ध के अनुभव ने हेयर के जीवन और दर्शन, एवं विशेषरूप से इस विचार को कि नीति–दर्शन प्रकृति में कर्तव्य की तरह है और लोगों की सहायता करना नैतिक–प्राणी होना है, को प्रभावित किया (किंगः 2004)।

नीति–दर्शन में, दार्शनिक नैतिक समस्याओं और निर्णयों के सन्दर्भ में अपने विचार एवं मत प्रस्तुत करते हैं और इस प्रकार सभी के पास अपने विचार व्यक्त करने की स्वतंत्रता होती है। परन्तु हेयर के अनुसार, इस प्रक्रिया में अधिकांश दार्शनिक अपना मत रखते हुए दूसरों के बारे में चिंता का अभाव होता है और अपनी बौद्धिकता का भी पूर्ण प्रयोग किए बिना नैतिक निर्णयों के बारे में अपने विचार देते हैं। इसी कारण से ऐसे सभी दार्शनिकों के समूह को व्यक्तिनिष्ठवादी या संवेगवादी कहा जाता है । परन्तु हेयर कहते हैं कि दार्शनिकों का एक अन्य समूह भी है जो बौद्धिकता पर जोर देता है। दूसरे शब्दों में, उनके लिए 'है' और '(कर्तव्यपरक या कर्तव्यता) चाहिए' के भेद जैसे नैतिक प्रश्नों का उत्तर देना एक बौद्धिक कार्य है। अतः नैतिक प्रश्नों, समस्याओं और मुद्दों को समझने के लिए बौद्धिकता आवश्यक है। ऐसी परिस्थितियों में आप केवल स्वयं के बारे में नहीं सोचते, अपितु आपके मस्तिष्क में उपस्थित अन्यों के बारे में भी आपको सोचना पड़ता है। दार्शनिकों के इस समूह को वर्णनवादी और कभी–कभी प्रकृतिवादी भी कहा जाता है। प्रकृतिवादियों के अनुसार, नैतिक निर्णय वस्तुनिष्ठ प्राकृतिक तथ्यों से संवादिता रखते हैं और इसलिए उनका वर्णन किया जा सकता है।

MAADHYAM IAS

हेयर ने इन दो विरोधी विचारों को बहुत ही गंभीरता से लिया और नैतिक प्रश्नों को एक नई दिशा एवं हल देने का प्रयास किया। इन दोनों सिद्धांतों से जुड़ी समस्याओं से जूझते हुए उन्होंने परामर्शवाद नामक एक वैकल्पिक नैतिक सिद्धान्त को विकसित किया (हेयरः 1965)। हेयर के अनुसार, नैतिक निर्णयों इनके वर्णनात्मक अर्थ या तत्त्व की बजाय को इनके मानकीय एवं परामर्शात्मक अर्थ या तत्त्व के रूप में समझा जाना चाहिए।

आर. एम. हेयर ने परामर्शवाद को अपनी रचनाओं, मुख्यतः, *दि लैंग्वेज ऑफ मॉरल्स* (1952), *मॉरल थिंकिंग* (1981), *फ्रीडम एण्ड रीजन* (1965) में चित्रित और विकसित किया। हेयर दावा करते हैं कि कोई भी नैतिक पद या विधेय (जैसेकि, शुभ, अशुभ, उचित, अनुचित, इत्यादि) दो सिद्धान्तों के आधार पर समझे जा सकते हैं, एक है परामर्शात्मकता और दूसरा सार्वभौमिकता। कोई नैतिक निर्णय (सामान्यतः, नैतिक निर्णय वह वाक्य या कथन जिसका विधेय कोई नैतिक पद होता है।) प्रकृति में सार्वभौमिक और परामर्शात्मक होता है। यदि कोई वाक्य एक नैतिक पद रखता है, जोकि सार्वभौमिक और परामर्शात्मक नहीं हो, तो इसका तात्पर्य है कि इस वाक्य को नैतिक निर्णय के रूप में नहीं लिया जा सकता है। इसे दूसरे ढंग से इस तरह कहा जा सकता है कि यदि हम चाहते हैं कि हमारे नैतिक निर्णय नैतिक कृत्य में बदलें, तब हमारे

नैतिक निर्णय में सार्वभौमिक और परामर्श की सामर्थ्य होनी चाहिए। हेयर तर्क करते हैं कि यदि हम सार्वभौमिकता और परामर्शात्मकता की अवधारणाओं को मिला दें, तो हम वरीय उपयोगितावाद को प्राप्त करते हैं। वरीय उपयोगितावाद कहता है कि हमारे कृत्य का परिणाम (या प्रतिफल) लोगों की वरीयताओं (पसंदों, तरजीहों) के संतोष का अधिकतम होना चाहिए।

अपनी पुस्तक *फ्रीडम एण्ड रीजन* में उन्होंने दो पक्ष लिए, एक परामर्शवादी युक्ति और दूसरी उपयोगितावादी युक्ति। इन विचारों का आगे हम और गहराई से अध्ययन करेंगे। अपनी इस पुस्तक के अध्याय 6 में उन्होंने अपने मूलभूत विचारों को एक ऐसी परिस्थिति के सन्दर्भ में बताया है जहाँ कि मात्र दो व्यक्तियों की रुचि (तरजीह) का प्रश्न निहित है। इसी पुस्तक के सातवें अध्याय में वे उपयोगितावाद के सन्दर्भ में तर्क प्रस्तुत करते हुए ऐसे मामलों की चर्चा करते हैं जहाँ दो से अधिक समूहों की रुचियों का प्रश्न निहित हो।

14.2 परिभाषा

परामर्शवाद दावा करता है कि नैतिक कथनों में अर्थ का एक ऐसा तत्त्व निहित रहता जो नैतिक कथनों को परामर्शकारी बनाता है। दूसरे शब्दों में, परामर्शवाद एक ऐसा सिद्धान्त जिसके अनुसार जब नैतिक पदों का प्रयोग नैतिक निर्णय बनाने में होता है तो यह तार्किक निगमन है कि वे सार्वभौमिक परामर्श देते हैं। नैतिक कथन दो तत्त्व रखते हैं, एक वर्णनात्मक और दूसरा परामर्शात्मक। परामर्श का अर्थ है किसी व्यक्ति को (स्वयं या किसी अन्य को) कोई कार्य करने के लिए परामर्श देना, कि वह व्यक्ति इस परामर्श को कृत्य में बदल दे। किसी कार्य के लिए परामर्श देने का अर्थ है स्वयं और किसी अन्य को इस आदेश के प्रति सहमति देना कि यह कार्य किया जाना चाहिए। यहाँ आदेश के प्रति सहमति व्यक्त करने का अर्थ है कि व्यक्ति उस कार्य को करने के लिए स्वतः प्रेरित है। सार्वभौमिक परामर्श सार्वभौमिक आदर्शों पर आधारित होते हैं। सार्वभौमिक परामर्श न केवल यह कहता है कि अमुक कार्य करो, बल्कि उस कार्य को करने की सलाह भी देता है। सलाह का अर्थ है कि यहाँ बौद्धिकता का समावेश है और यह बौद्धिकता सदा सार्वभौमिक आदेशों के रूप में व्यक्त होती है। सार्वभौमिक परामर्श किसी कार्य को करने का इसलिए कह पाता है क्योंकि यह कुछ विशेषताएं धारण करता है, अतः उस कृत्य करने का परामर्श, उन सभी कृत्यों का परामर्श है, जो उन विशेषताओं को रखते हैं। हम यदि "करना चाहिए" को कोई नैतिक निर्णय देने के लिए इस कथन–रूप, "अ को कृत्य क करना चाहिए", तो यह इस नियम, "परिस्थिति स में किसी भी व्यक्ति को कृत्य क करना चाहिए" को पूर्वमान्यता के रूप में लेता है, अतः अ का कृत्य क को करना परिस्थिति स में कृत्य क को करने की एक घटना–विशेष माना जायेगा। इस प्रकार, इस सिद्धान्त के अनुसार, "यदि आप परिस्थिति स में है, तो आपको कृत्य क करना चाहिए और यदि मैं परिस्थित स में हूँ, तो मुझे कृत्य क करना चाहिए"। इस पश्चातवर्त्ती कथन का निहितार्थ यह

होगा कि "परिस्थित स में कृत्य क करो" और "परिस्थिति स में मुझे कृत्य अ करने दो"। यदि हम इस पर सहमत हैं तब इसका आगामी निहितार्थ यह है कि कोई इस बात का इच्छुक है कि यह कृत्य स्वयं उसके द्वारा और दूसरों के द्वारा किया जाना चाहिए। इस प्रकार, जब 'कर्तव्यपरक चाहिए–कथनों' के द्वारा नैतिक निर्णय दिये जाते है, तब इन कथनों की सहायता से यह सलाह दी जाती है कि हमें और अन्यों को कैसे कार्य करना चाहिए और ये सलाहें या परामर्श इस सामान्य सिद्धान्त पर आधारित होती हैं कि वह कृत्य स्वयं हमारे द्वारा और अन्यों द्वारा किया जाए। (डाहलः 1987)

नैतिक कथनों का वर्णनात्मक तत्त्व संस्कृति और व्यक्ति–सापेक्ष होता है (प्रत्येक संस्कृति और प्रत्येक व्यक्ति के मामले में अलग होने की सम्भावना वाला)। यह तत्त्व व्यक्ति–समय–स्थान–विशिष्ट या सापेक्ष होता है। दूसरी ओर, नैतिक कथनों का परामर्शात्मक तत्त्व स्थिर प्रकृतिवाला होता है। यही कारण है कि, परामर्शवाद नैतिक–असहमतियों और नैतिक निर्णयों के लिए आधारभूमि तैयार करता है।

हेयर के परामर्शवाद के अनुसार, नैतिक निर्णय मात्र वर्णनात्मक या भावनाओं की अभिव्यक्ति ना होकर परामर्शात्मक होते हैं। आगे वे ये भी तर्क देते हैं कि नैतिक परामर्श निर्नैतिक परामर्श से इस रूप में भिन्न हैं कि नैतिक परामर्शों को सार्वभौमिक बनाया जा सकता है। यदि कोई व्यक्ति किसी कार्य को उचित मानता है तो उसे उसके समान अन्य कार्यों को भी उचित मानना होगा। सार्वभौमिकता के इस विचार पर काण्ट के दर्शन का प्रभाव हो सकता है। हेयर का यह मानना था कि परामर्शवाद को सबसे बेहतर तरीके से इस तरह समझा जा सकता है कि नैतिक निर्णय नैतिक–सापेक्षतावाद को नजरन्दाज करते हुए कृत्यों का पथ–प्रदर्शन करते हैं और नैतिक दावों के बौद्धिक सत्यापन के लिए आधार प्रदान करते हैं। इस प्रकार उन्होंने नैतिक विचार की दो मुख्य धाराओं काण्ट की नैतिकता (सार्वभौमिकता के सिद्धान्त से जुड़ी) एवं उपयोगितावाद का मेल किया। उनके सभी कार्यों में हम गंभीर चिंतन, धाराप्रवाह लेखन, और नैतिकता एवं बौद्धिक जिज्ञासा के प्रति उनकी प्रतिबद्धता पाते हैं।

14.3 नीति–दर्शन में परामर्शवाद का महत्त्व

हेयर का परामर्शवाद बहुत महत्वपूर्ण सिद्धान्त है विशेष तौर पर इसलिए कि ये नैतिक निर्णयों को सार्वभौमिक और बौद्धिक रूप में समझने में लोगों की सहायता करता है। उन्होंने परामर्शवाद इसलिए विकसित किया क्योंकि ये बड़े जनसमूह को केन्द्रित करता है। निश्चित तौर पर परामर्शवाद कुछ बड़ी नैतिक समस्याओं से सम्बन्धित है जैसे, नैतिक निर्णयों का आधार बुद्धि है या व्यक्ति विशेष की पसंद अथवा मत। हेयर ने 'है' और 'होना चाहिए' के प्रश्न पर भी विचार किया। उन्होंने परम्परागत सिद्धान्तों का अनुसरण नहीं किया, यद्यपि अपने समय के सभी सिद्धांतों के प्रति आलोचनात्मक रुख अपनाया। इसीलिए हम पाते हैं कि वे सम्वेगवाद,

वर्णनात्मकवाद, उपयोगितावाद और काण्ट की कर्तव्यपरक नीतिशास्त्र के आलोचक थे। हेयर ने इन सभी नैतिक सिद्धांतों पर गहन चिंतन किया एवं इन सिद्धान्तों में कुछ प्रश्नों का उत्तर ढूंढने में असफल रहे। इसीलिए उन्होंने इन सिद्धांतों के कुछ उचित भाग को लेकर परामर्शवाद का सिद्धान्त विकसित किया। उदाहरण के तौर पर उन्होंने अपनी लेखनी में सम्वेगवाद के कुछ भाग को समर्थन दिया परन्तु कुछ अन्य मामलों में असहमति व्यक्त की। हेयर यह मानते हैं कि नैतिक कथन/निर्णय ना तो तथ्यों का विवरण देते हैं और ना ही मनोभावों की अभिव्यक्ति हैं। उनके अनुसार, नैतिक निर्णय परामर्शात्मक होते हैं।

बोध–प्रश्न I

ध्यातव्यः क) उत्तर हेतु दिये गये स्थान का प्रयोग कीजिए।

ख) अपने उत्तर का मिलान इकाई के अंत में दिये गये उत्तर से कीजिए।

1. नैतिक दर्शन में परामर्शवाद का क्या महत्त्व है?

.....

.....

.....

.....

2. परामर्शवाद को अधि–नीतिशास्त्रीय सिद्धान्त क्यों कहा जाता है?

.....

.....

.....

.....

MAADHYAM IAS
'way to achieve your dream'

14.4 दार्शनिक मत

हेयर मूर के बाद सबसे उल्लेखनीय दार्शनिकों में से एक हैं। वे ह्यूम, काण्ट, मूर, रसेल आदि दार्शनिकों से प्रभावित थे। ह्यूम के दर्शन से वे तथ्य एवं मूल्यों के भेद के विचार से प्रभावित हुए, मूर एवं रसेल का विचार कि दर्शन का प्रमुख कार्य प्रत्ययों का गहन विश्लेषण है उन्हें प्रभावित करता है और काण्ट से उन्होंने नैतिक विचारों में सार्वभौमिकता और बौद्धिकता के विचारों को अनुग्रहित किया। वे उपयोगितावाद से भी प्रभावित थे । अन्य शब्दों में कहें तो, हेयर का परामर्शवाद, तीन प्रमुख नैतिक विचारों पर आलोचनात्मक–चिंतन एवं मतभेद से जन्म लेता है, जो कि हैं – सम्वेगवाद, उपयोगितावाद एवं काण्ट का नैतिक दर्शन। उन्होंने अपनी पुस्तक, लैंग्वेज ऑफ मॉरल्स में विवरणात्मक/वर्णनात्मक एवं परामर्शात्मक अर्थ में भेद किया

और साथ ही नैतिक निर्णयों और प्रत्ययों को बौद्धिक रूप से समझने का प्रयास किया। परामर्शात्मक अर्थ को आदेशों/विधानों के सन्दर्भ में परिभाषित किया जाता है।

> कोई कथन परामर्शात्मक होता है यदि यह तार्किकरूप से कम से कम एक आदेश अन्तर्निहित करता हो, यदि विशुद्ध तथ्यात्मक कथनों के संयोजन में आवश्यक हो और किसी आदेश को स्वीकृति देने का तात्पर्य है किसी कृत्य का परामर्श। वर्णनात्मक अर्थ सत्यता–मूल्य के सम्बन्ध में परिभाषित किया जाता है अर्थात् एक कथन उस सीमा तक वर्णनात्मक होता है कि इसके उचित अनुप्रयोग हेतु तथ्यात्मक शर्तें इसके अर्थ को परिभाषित करती है। (हेयरः 1952)

लेकिन बाद में अपनी पुस्तक *फ्रीडम एण्ड रीजन* (1965) में उन्होंने अनेक मुद्दों पर अपने मत को स्पष्ट किया और अपने दृष्टिकोण को संशोधित किया। बेन (2002) हेयर के संशोधित दृष्टिकोण को इस तरह दर्शाते हैंः

1. हेयर स्वीकारते हैं कि नैतिक विधेय (उदाहरणार्थ शुभ, अशुभ, उचित, इत्यादि) वर्णनात्मक अर्थ रखते हैं,

2. वर्णनात्मक अर्थ नैतिक विधेयों के लिए द्वितीयक है,

3. नैतिक विधेयों का प्राथमिक अर्थ अ–वर्णनात्मक होता है, जोकि परामर्शात्मक अर्थ है,

4. हेयर तथ्य और मूल्य के मध्य भेद स्वीकारते हैं,

5. हम जगत के वर्णनात्मक (तथ्यात्मक) गुणों से नैतिक निर्णयों के बारे में कोई भी तार्किक अनुमान नहीं कर सकते हैं।

MAADHYAM IAS
"way to achieve your dream"

हालांकि, हेयर के नैतिक सिद्धान्त के ये सभी आयाम जिनकी ऊपर चर्चा की गई है उनके सिद्धान्त को बहुत ही बौद्धिक, व्यावहारिक और सभी पर समान रूप से लागू होने वाला बनाते हैं। इसीलिए, हेयर की रुचि केवल नैतिक समस्याओं की सैद्धान्तिक व्याख्या करने में ही नहीं थी, अपितु वे नैतिक कर्म एवं व्यवहार को भी बहुत गंभीरता से लेते हैं। इसका कारण द्वितीय विश्व युद्ध के समय के उनके व्यक्तिगत अनुभव हो सकते हैं। सिद्धान्त और व्यवहार के बीच ये गहरा सम्बन्ध, हेयर के नैतिक दर्शन को एक मजबूती और विशेष आयाम प्रदान करता है। हेयर के नीति–दर्शन का सबसे महत्त्वपूर्ण पक्ष, उनके दर्शन में तर्क–बुद्धि और बौद्धिकता के विशेष आयाम का होना है। हमारे नैतिक क्रिया–कलाप बुद्धि पर आधारित होते हैं अथवा उनका आंकलन भी बुद्धि, सत्यता और तर्क के आधार पर किया जाता है और इसीलिए वे परामर्शात्मक होते हैं। यही कारण हो सकता है कि हेयर परामर्शवाद के साथ सार्वभौमिकता पर भी जोर देते है। उनके लिए नैतिक निर्णय न केवल सार्वभौमिक होते हैं, अपितु परामर्शात्मक भी होते हैं। सार्वभौमिकता, हेयर के अनुसार, वर्णनात्मक वाक्यों का एक गुण है,

जिसे विधेयों में बिल्कुल समान ढंग से या जैसा है वैसे ही प्रासंगिक रूप में प्रयोग किया जाता है। (कोल्सः 1963)

नैतिक विषयों में बौद्धिकता को आसानी से समझा जा सकता है यदि हम हेयर के नैतिक निर्णयों के दो विशेष आयामों को आसानी से समझें। ये दो आयाम हैं – सार्वभौमिकता एवं परामर्शात्मकता।

यदि आप किसी विशेष परिस्थिति में ये निर्णय लेते हैं कि आपको क्या करना चाहिए अथवा किसी परिस्थिति–विशेष में आप क्या परामर्श दे सकते हैं, तो उस क्षण हम इस कृत्य को सार्वभौमकता प्रदान करते हैं। इस घटना–क्रम में, आप किसी कृत्य को करने हेतु चुनते हैं, लेकिन आप महसूस करते हैं कि जब आप इस कृत्य को सार्वभौमिक बनाते हैं, और मान लेते हैं कि यह कृत्य किसी ऐसे परामर्श को जन्म देता है जो आपको अस्वीकार्य है। इस मामले में, आप इस कृत्य को सार्वभौमिक नहीं बना सकते हैं, इसका आशय है कि इस कृत्य से उत्पन्न परामर्श "कर्तव्यकारी चाहिए (ऑट)" नहीं बन सकता है।

एक सामान्य नैतिक नियम/सिद्धान्त तो लक्षण रखता हैः परामर्शात्मकता और सार्वभौमिकता, ये दोनों लक्षण हेयर के दर्शन की मुख्य नींव है। "सामान्य या सार्वभौमिक" पद (जैसे मानव या यूनानी) "एकवाची" पद (जैसे सुकरात) से भिन्न है। लेकिन "सूत्र (मेक्सिम)" सार्वभौमिक हो सकते हैं और एकवाची या विशेष नहीं, क्योंकि सूत्र व्यक्ति–विशेषों को संदर्भित नहीं करते, वे सार्वभौमिक की श्रेणी में रखे जा सकते हैं, न कि विशिष्टों की, स्तर के भेद से कर्ता के एक वृहद समूह की पहचान की जाती है ("सदा सत्य सुबूत दो" में "सदा सत्य बोलो" से अधिक विशिष्टता है और "सदा शपथ लेने पर सत्य सबूत दो" से अधिक सामान्यता)। उनके लेख "यूनिवर्सलाइजेबिलिटी" (1954) इस बात पर जोर देता कि ये हमारा व्यक्तिगत उत्तरदायित्व है कि हम ऐसे निर्णय लें जो सैद्धान्तिक निर्णय हों। उन्होने अपना अगला महत्त्वपूर्ण विचार अपनी दूसरी पुस्तक *फ्रीडम एण्ड रीजन* (1965) में प्रस्तुत किया जहाँ परामर्शात्मकता और सार्वभौमिकता के आकारिक गुणों ने "स्वर्ण सिद्धान्त" की युक्ति को जन्म दिया। इम स्वर्ण सिद्धान्त को परामर्शात्मकता और सार्वभौमिकता के सन्दर्भ में भली भांति देखने के लिए हमें एक उदाहरण को समझना होगा जो हेयर (1965) ने अपनी रचनाओं में दिया है।

> 'अ' ने 'ब' से धन उधार लिया है और 'ब' ने 'स' से धन उधार लिया, और यहाँ यह नियम है कि उधार देने वाला उधार ना लौटाने पर देने वाला लेने वाले को कारावास में डलवा सकता है। 'ब' स्वयं से यह प्रश्न करता है कि 'क्या मैं ये कह सकता हूँ कि क्या 'अ' के विरूद्ध मुझे इस नियम का प्रयोग करना चाहिए ताकि वो मेरे पैसे लौटा दे? निस्संदेह वो ऐसा करने का इच्छुक या ऐसा करना चाहता है । अतः, यदि उसके परामर्श या निर्णय को एक सामान्य नियम बनाने का कोई प्रश्न ना होता तो वो निश्चय ही इस परामर्श के लिए सहमत होता कि "अ को कारावास में डाल दिया जाए" परन्तु जब वो इस परामर्श को एक

नैतिक निर्णय में' परिवर्तित करने का प्रयास करता है और कहता है कि, "मुझे अ को कारावास में डलवा देना चाहिए क्योंकि उसने मेरा उधार नहीं चुकाया" तो वो ये सोचता है कि इसका अर्थ होगा कि वो इस सिद्धान्त को स्वीकारे कि "कोई भी व्यक्ति जो मेरे समान स्थिति में हो उसे उधार वापस ना मिलने की परिस्थिति में लेने वाले को कारावास में डलवा देना चाहिए"। परन्तु फिर उसे ये आभास होता है कि "स" भी उसके समान स्थिति में है और यदि किसी भी व्यक्ति को उधार ना चुकाने की स्थिति में लेने वाले को कारावास में डलवा देना चाहिए तो 'स' को उसे कारावास में डाल देना चाहिए। और इस तरह ये नैतिक परामर्श कि "स को मुझे कारावास में डलवा देना चाहिए को सहमति देते ही वो बाध्य हो जाता है (क्योंकि जैसा कि हमने देखा, वो 'चाहिए' का प्रयोग परामर्श के रूप में करता है।) इस एकवाची परामर्श को मानने के लिए कि 'स को मुझे कारावास में डलवा देना चाहिए' और परन्तु ये वो स्वीकार नही करना चाहता। परन्तु यदि वो इसे स्वीकार ना करे तो वो अपना पूर्व निर्णय कि ब उधार न चुकाने के लिए अ को कारावास में डलवा दे को भी अस्वीकार करना होगा। यहाँ यह ध्यान देने योग्य है कि पूरी युक्ति निरर्थक हो जाएगी। यदि "चाहिए का सार्वभौमिकता और परामर्शात्मकता के साथ प्रयोग ना किया जाए" य क्योंकि यदि इसे परामर्श के रूप में प्रयोग ना किया गया तो स को मुझे कारावास में डाल देना चाहिए से, स मुझे कारावास में डाल दे के स्तर तक जाना संभव नही होगा। (हेयरः 1965)

पूर्वोक्त उदाहरण सार्वभौमिकता, परामर्शवाद एवं उपयोगितावाद के आधार पर नैतिक निर्णयों को समझने के लिए है। हेयर ने उपयोगितावाद के सिद्धान्त को स्वीकारा क्योंकि यह सिद्धान्त नैतिक विचारों में बौद्धिकता का समावेश करता है। उदाहरण के तौर पर हम दो अलग अलग प्रश्नों को लेते हैं – पहला "हमें कैसे कार्य करने चाहिए ?" और दूसरा "हमें यह कैसे सोचना चाहिए कि हमें कैसे कार्य करने चाहिए?" उपयोगितावादी और सार्वभौमिकता के सिद्धांतों को समझने के लिए ये वाक्य या उदाहरण अत्यन्त उपयोगी हैं क्योंकि पहले वाक्य में आपके कार्य में दूसरे व्यक्तियों के साथ सम्बन्ध की कोई स्पष्टता नहीं है परन्तु दूसरे वाक्य में है। ये हमें उस स्वर्ण सिद्धान्त को समझने में मदद करता है जो पूर्वोक्त उदाहरण में समझाया गया है। हेयर सार्वभौमिक परामर्शवाद और उपयोगितावाद (वरीय उपयोगितावाद) के मध्य तार्किक सम्बन्ध बनाते हैं। अगर हम ये मानते है कि नैतिक निर्णय लेने में दूसरों को हमारी रूचियों का ध्यान रखना चाहिए तो हमें ये भी मानना होगा कि नैतिक निर्णय लेने में हमें दूसरों की रूचियों पर ध्यान देना चाहिए। इस विचार में यह अन्तर्निहित है कि एक नैतिक विचारक को नैतिक निर्णय बाने में सभी की रुचियों पर इस तरह चिंतन करना चाहिए जैसेकि वे रुचियां उसकी अपनी ही हों। हेयर सम्वेगवाद का पूरी तरह खण्डन नहीं करते। परन्तु वह मानते हैं कि परामर्श नैतिक भाषा का केन्द्रीय तत्त्व है। वह वर्णनात्मकवाद का विरोध करते हैं, जिसके अनुसार नैतिक विधेय (जैसेकि, शुभ, अशुभ, उचित, करना चाहिए, इत्यादि) वस्तुसत् के नैतिक गुणों या लक्षणों का वर्णन हैं।

MADHYAM IAS

उन्होंने यह तर्क देते हैं कि परामर्शात्मक भाषा जो कि आदेशों, प्रशंसाओं एवं उपदेशों को सम्बन्धित है उसका अपना एक तार्किक स्वरूप है और वो तर्क के बौद्धिक ढांचे का पालन करती है। बतौर उदाहरण, तथ्यात्मक अनुमानों की तरह, आदेशात्मक अनुमान भी हो सकते हैं। नैतिक परामर्श आदेशों को तार्किकतः अन्तर्निहित करते हैं। लेकिन नैतिक परामर्श इससे अधिक है किय वे न केवल प्रकृति में आदेशात्मक हैं, अपितु सार्वभौमिक भी किए जा सकते हैं। उदाहरणार्थ, यह कहना, "आपको पशुओं की हत्या नहीं करना चाहिए" यह कहना भी है कि "पशुओं की हत्या मत करो।"

पीयर्स बेन अपने आलेख "आर एम हेयर" सार्वभौमिक परामर्श में इच्छाशक्ति या संकल्प की महत्ता को रेखांकित करते हैं। बेन के शब्दों में,

> नैतिक निर्णयों की परामर्शात्मकता हेयर को इच्छाशक्ति की दुर्बलता के सन्दर्भ में एक बहकावपूर्ण खिंचाव की स्थिति में ले आती है। यदि कोई व्यक्ति पूरी निष्ठा के साथ स्वयं को एक चाहिए वाला नैतिक निर्णय देता है (उदाहरण के लिए – मुझे समय समय पर दान देते रहना चाहिए) तो हेयर के सिद्धान्त के अनुसार उसे इस निर्णय के अनुरूप कार्य करना चाहिए। परन्तु यदि ऐसा करने की इच्छा ना हो (जिसे लोग इच्छाशक्ति की दुर्बलता कहते है) तो इसका अर्थ है कि या तो कोई सार्वभौमिक परामर्श सम्भव नहीं है या फिर इस परामर्श पर मानसिकरूप से असम्भव है। ऐसे दार्शनिक जो कि इस प्रकार की कठोर सैद्धान्तिक निश्चितता में विश्वास नही रखते, उनके अनुसार इच्छाशक्ति की दुर्बलता (अकरासिया) वास्तविक है और इसलिए कोई भी ऐसा सिद्धान्त जिसमें इसका निषेध निहित हो, स्वयं ही त्रुटिपूर्ण है। (बेनः 2002)

MAADHYAM IAS
'way to achieve your dream'

बोध–प्रश्न II

ध्यातव्यः क) उत्तर हेतु दिये गये स्थान का प्रयोग कीजिए।

ख) अपने उत्तर का मिलान इकाई के अंत में दिये गये उत्तर से कीजिए।

1. हेयर के परामर्शवाद के सिद्धान्त में बौद्धिकता, परामर्शात्मकता एवं उपयोगितावाद किस प्रकार एक महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाते है ?

.....

.....

.....

.....

14.5 सारांश

परामर्शवाद एक अधिनीतिशास्त्रीय सिद्धान्त है क्योंकि यह नीतिशास्त्र के कुछ मूलभूत प्रश्नों का उत्तर देने का प्रयास करता है । जैसे – क्या नैतिक निर्णयों को बुद्धि के आधार पर समझना चाहिए या व्यक्ति–विशेष की अभिरूचि और मत के आधार पर?; नीतिशास्त्र में 'है' और "होना चाहिए" के मध्य क्या अन्तर है? आदि। हेयर का नैतिक दर्शन तीन मुख्य स्तम्भों पर आधारित है – सार्वभौमिकता, परामर्शात्मकता एवं उपयोगितावाद।

14.6 कुंजी शब्द

बौद्धिकता : यह विश्वास या सिद्धान्त जिसका मानना है कि हमारे कार्य और मत बुद्धि पर आधारित होने चाहिए ना कि भावनाओं और व्यक्तिगत मतों पर।

सार्वभौमिकता : एक सैद्धान्तिक एवं दार्शनिक प्रत्यय, जिसके अनुसार कुछ विचारों को सामान्य या सार्वभौमिक रूप से सभी जगह प्रयोग किया जा सकता है।

उपयोगितावाद : एक दार्शनिक और नीतिशास्त्रीय सिद्धान्त जिसके अनुसार कोई कार्य नैतिक रूप से शुभ है यदि वो अधिकतम व्यक्तियों के अधिकतम सुख का कारण हो।

14.7 अन्य सहायक अध्ययन–सामग्री एवं सन्दर्भ

कोलश्स एन. "मिस्टर हेयर ऑन फ्रीडम एण्ड रीजन ". ट्रीनिटी कॉलेज डबलिन, 97: 66–74.

ग्रीफिथ्स, ए. फिलिप्स. "हेयरश्स मोरल थिंकिंग",. रॉयल इन्स्टीट्यूट ऑफ फिलोसॉफी, 58 / 226: 497–511.

बेन पीयरस, "आर. एम. हेयर (1919–2002)", फिलॉस्फी नाऊ, 35,

एस्सेस्ड http://philosophynow-org/issues/35/RM_Hare_1919–2002.

मैडेल, जिओफ्रे, "हेयर'स प्रिस्क्रिप्टिविज्म. द एनालिसिस कमिटी, 26 / 2: 37–41.

डेल, नॉरमेन ओ. "ए प्रोग्नोसिस फॉर यूनिवर्सल प्रिस्क्रिप्टिविज्म". स्प्रिंगर, 51 / 3: 383–424.

जिंक, सिडनी. "ऑबजेक्टीवीजम एण्ड मिस्टर हेयर'स लैंग्वेज ऑफ मॉरल्स". माइंड, 66 / 261: 79–87.

हेयर, आर. एम. *द लैंग्वेज ऑफ मॉरल्स.* ऑक्सफोर्ड: क्लैरेन्डन प्रेस, 1952

हेयर, आर. एम. *फ्रीडम एण्ड रीजन.* ऑक्सफोर्ड: क्लैरेन्डन प्रेस, 1965

MAADHYAM IAS "way to achieve your dream"

हेयर, आर. एम. *मोरल थिंकिंग : इटस लेवल, मेथड एण्ड प्वॉइन्ट.* ऑक्सफोर्डः क्लैरेन्डन प्रेस, 1981

14.8 बोध–प्रश्नों के उत्तर

बोध–प्रश्न I

1. हेयर का सिद्धान्त एक अति महत्त्वपूर्ण सिद्धान्त है क्योंकि इसने सार्वभौमिक और बौद्धिक दृष्टिकोण से नैतिक निर्णयों को समझने में दार्शनिकों की मदद की है। उन्होंने परामर्शवाद को विकसित किया क्योंकि ये एक बड़ी संख्या में लोगों को प्रभावित करता है। निश्चित तौर पर ये कहा जा सकता है कि परामर्शवाद नीतिशास्त्र की कुछ महत्त्वपूर्ण समस्याओं का हल ढूंढने का प्रयास करता है जैसे नैतिक निर्णयों का आधार बुद्धि है या किसी व्यक्ति की निजी पसंद और मत। हेयर 'है' और 'होना चाहिए' के भेद को भी सम्बोधित करते हैं। सबसे महत्त्वपूर्ण बात ये है कि उन्होंने किसी भी पारंपरिक नैतिक सिद्धान्त का अनुसरण ना कर के अपने समय के सभी सिद्धांतों की आलोचनात्मक परीक्षा की है।

2. परामर्शवाद एक अधिनीतिशास्त्रीय सिद्धान्त है क्योंकि ये महत्त्वपूर्ण नैतिक समस्याओं को सम्बोधित करता है जैसे कि नैतिक निर्णयों का आधार बुद्धि है या व्यक्ति की अपनी रूचि अथवा मत। हेयर 'है' और 'होना चाहिए' के भेद की भी चर्चा करते है ।

MAADHYAM IAS
"way to achieve your dream"

बोध–प्रश्न II

1. नैतिक विषयों में बौद्धिकता को आसानी से समझा जा सकता है यदि हम हेयर के नैतिक निर्णयों के दो विशेष आयामों को आसानी से समझे । ये दो आयाम हैं – सार्वभौमिकता एवं परामर्शात्मकता। हेयर जब किसी कार्य के सन्दर्भ में सार्वभौमिक सिद्धान्त और परामर्शात्मकता की बात करते है तो वो ये मानते है कि यह सभी व्यक्तियों और सभी परिस्थितियों में लागू होना चाहिए। अतः, हेयर के नीति–दर्शन का अन्यों के बारे समावेशी पक्ष बौद्धिकता और वरीय उपयोगितावाद दोनों को सम्मिलित करता है।

सहायक अध्ययन–सामग्री (हिन्दी भाषा)

सहायक–ग्रन्थ

आत्रेय, भीखनलाल. *भारतीय नीति–शास्त्र का इतिहास.* लखनऊः हिन्दी समिति, 1964.

गुलाबराय. *कर्तव्यशास्त्र.* बनारसः काशी नागरी प्रचारिणी सभा, 1976.

पाठक, दिवाकर. *भारतीय नीतिशास्त्र.* पटनाः बिहार ग्रंथ अकादमी, 1994.

मिश्र, नित्यानन्द. *नीतिशास्त्रः सिद्धान्त और व्यवहार.* नई दिल्लीः मोतीलाल बनारसीदास, 2017.

नैटलशिप, रिचर्ड लुई. *प्लेटो के रिपब्लिक का विवेचन*, अनुवाद– गौरी शंकर लहरी. भोपालः मध्यप्रदेश हिन्दी ग्रन्थ अकादमी, 1973.

वर्मा, वेद प्रकाश. *दर्शन–विवेचना.* दिल्लीः हिंदी माध्यम कार्यान्वयन निदेशालय दिल्ली विश्वविद्यालय, 1989.

वर्मा, वेद प्रकाश. *नीतिशास्त्र के मूल सिद्धान्त*, चतुर्थ संस्करण. नई दिल्लीः अलाईड पब्लिशर्स, 2012.

वर्मा, वेद प्रकाश. *अधि–नीतिशास्त्र के मुख्य सिद्धान्त.* नई दिल्लीः अलाईड पब्लिशर्स, 2016.

शर्मा, केदार नाथ. *नीतिशास्त्र की रूपरेखा.* मेरठः केदार नाथ राम नाथ, 1965.

MADHYAM IAS
'way to achieve your dream'

मूल ग्रन्थ (अनुवादित)

अरस्तू. *निकोमाचियन नीतिशास्त्र,* अनुवाद– आलोक कुमार. सेन्टर फॉर इनोवेटिव लीडरशिप, 2020.

मूर, जी. ई. *प्रिंसिपिया एथिका.* दिल्लीः हिंदी माध्यम कार्यान्वयन निदेशालय दिल्ली विश्वविद्यालय,

प्लेटो. *रिपब्लिक*, अनुवाद– लखनऊः उत्तर प्रदेश सूचना विभाग